ओ३म्

अथर्ववेद

(द्वितीय भाग)

काव्यार्थ

कवि

वीरेन्द्र कुमार राजपूत

प्रकाशक

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन

देहरादून (उत्तराखण्ड)

पिन‘२४८००८

अथर्ववेद (द्वितीय भाग) काव्यार्थ

कवि - वीरेन्द्र कुमार राजपूत
८ वसन्त कुंज ३६८/1 वसन्त विहार,
फेज-१, देहरादून (उत्तराखण्ड)
पिन- २४८००६
मो० ६४१२६३५६६३

प्रकाशक - वैदिक साधन आश्रम, तपोवन, देहरादून
(उत्तराखण्ड) पिन- २४८००८

प्राप्ति स्थान - पं. वेदवसु शास्त्री, आर्यसमाज, लक्ष्मण
चौक, देहरादून।
मो० ६८६७०२७८७२

सर्वाधिकार सुरक्षित

संस्करण - वि.सं. २०७१ सन् २०१४

मूल्य - रुपये २००

टंकण - सुधीर थापा 'निखिल'

मुद्रक - वाणी प्रिन्टर्स
८० घोसी गली, देहरादून (उत्तराखण्ड)

दिशा निर्देश

		पृ. सं.
प्रकाशकीय		४
पुरोवाक्		५
कवि की ओर से		१०
	मंत्र संख्या	
मातृभूमि वन्दना	६३	११
काण्ड - ६	४५४	४०
काण्ड - ७	२८६	१७२
काण्ड - ८	२६३	२६५
काण्ड - ९	३१३	३५३
काण्ड - १०	२४५	४२६
मंत्र योग	१६५४	

प्रकाशकीय

कविवर श्री वीरेन्द्र कुमार राजपूत ने सृष्टि के आदि में परमात्मा प्रदत्त चारों वेदों का अर्थ सरल एवं सुललित काव्य में करने का शिव संकल्प लिया है, जिसे प्रभु की कृपा ही कहना चाहिए। वेदों की काव्यार्थ शृंखला में अथर्ववेदीय काव्यार्थ के प्रथम खण्ड के प्रकाशन के बाद द्वितीय खण्ड का प्रकाशन इस विश्व प्रसिद्ध वेदाधारित 'वैदिक साधन आश्रम, तपोवन' द्वारा किया जा रहा है।

यदि हम वर्तमान काल पर विचार करें, तो पायेंगे कि वेदों के पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने और वेद मार्ग पर चलने चलाने से दूर रहने के कारण मनुष्य ने अपने जीवन, अपनी बुद्धि व कर्म को प्रदूषित बना लिया है। उसने स्वयं के जीवन को ही नहीं अपितु अपने परिवार, समुदाय, समाज, राष्ट्र तथा धरती पर सम्पूर्ण वायु मण्डल को प्रदूषित बना दिया है। इस प्रदूषण को दूर करने के लिए इस वैदिक साधन आश्रम ने मुहिम छेड़ी हुई है। अथर्ववेद (प्रथम खण्ड) के प्रकाशन के बाद द्वितीय खण्ड का प्रकाशन उसी मुहिम की एक कड़ी है।

गत वर्ष कवि ने देहरादून के इस वैदिक साधन आश्रम के वेद प्रचार कार्यों को संज्ञान में लाते हुए, यहां के अधिकारियों से अपने ग्रन्थ के प्रकाशन की इच्छा प्रकट की थी। हम इसे अपना सौभाग्य समझते हुए उनके ग्रन्थ का प्रकाशन कर रहे हैं। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी इस विषय में लिखते हैं -

"धनवान समाजों को तथा श्रीमन्तों को इस ग्रन्थ की एक-एक सौ प्रतियाँ लेकर उपयुक्त अवसरों पर, पर्वों पर सुपठित युवक-युवतियों और भक्तजनों को भेंट स्वरूप देनी चाहिए।" ऐसी ही हमारी कामना है। सुधी पाठकों पर हमारा पूर्ण विश्वास है। प्रभु अपनी कृपा से इसे पूर्ण करे।

विद्वानों का अनुचर

महात्मा उत्तम मुनि

पुरोवाक्

जनश्रुति है कि १९वीं सदी के उत्तरार्ध में (१८७७) ग्रामोफोन के आविष्कारक टॉमस अल्वा एडिसन अपने प्रथम रेकार्ड में किसी विश्रुत विद्वान् की उच्चरित वाणी को रेकार्ड करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने उस समय के प्रसिद्ध ब्रिटेन वासी जर्मन विद्वान मैक्समूलर की वाणी को रेकार्ड किया और लोढ़े की तरह गोल उस सिलेण्डर रेकार्ड को उसी शाम विशेष रूप से आमंत्रित विद्वानों के बीच प्रस्तुत किया। सभी श्रोता इस आविष्कार से चमत्कृत तो हुए, मगर उस संवाद का कोइ अर्थ नहीं लगा पाये, क्योंकि वह ग्रीक- लैटिन से पृथक् अपरिचित भाषा 'वैदिक संस्कृत' में था। मैक्समूलर से जब उसका अर्थ और प्रयोजन पूछा गया तो उन्होंने सगर्व कहा कि वह वाक्य विश्व का प्रथम आप्त वाक्य है ऋग्वेद का प्रथम मंत्र- 'अग्निमीड़े पुरोहितम् यज्ञस्य देव मृत्विजम्, होतारं रत्नधातमम्' उन्होंने कहा कि 'मानव सभ्यता के प्राचीनतम काल में जब पृथिवी के अन्य भागों में लोग गुफाओं में रहते थे, शिकार करके पेट पालते थे और प्रायः नग्न रहते थे, तब भारतीय ऋषि-मुनियों ने वेद के रूप में सार्वभौम दर्शन प्राप्त किया था।

इस प्रकरण की सत्यता का प्रामाणिक अभिलेख तो नहीं मिलता है, परन्तु सम्पूर्ण विश्व में अन्तर्जाल पर यह खूब चर्चित घटना मानी जाती है। वैसे, यदि फोनोग्राफ के (ग्रामोफोन का पुराना नाम) प्रथम रेकार्ड में प्रथम वैदिक मंत्र 'अग्निमीडे पुरोहितम्' प्रो. मैक्समूलर के स्वर में रेकार्ड हुआ, तो यह भी ऐतिहासिक अनिवार्यता ही थी, क्योंकि तपस्वी ब्राह्मणों के कण्ठ में हजारों-हजार वर्ष से बसे वेदांग को मुद्रित कर सार्वजनिक कराने का प्रथम प्रयास मैक्समूलर ने ही किया था। बाद में आर्य समाज और सातवलेकर ने किया। यह दीगर बात है कि सर्वथा अपरिचित वैदिक-संस्कृत और अत्यन्त गूढ़ भारतीय संस्कृति का ज्ञान न होने तथाअपना मूल प्रयोज ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार होने के कारण मैक्समूलर अपौरूषेय वेद को 'चरवाहों के गीत' से अधिक नहीं समझ पाये

और उनके द्वारा उत्पन्न भ्रांतियां आज भी अंग्रेजी शिक्षा माध्यम वाले भारतीय विद्वानों को दिग्भ्रमित करती रहती है और वे अपढ़-निरन्तर ग्रामीणों से भी अधिक अज्ञानी और दयनीय दिखते रहे हैं। उनका संस्कार इतना प्रदूषित होता है कि उन्हें 'ऋषयो मंत्र द्रष्टारः' का निहितार्थ समझ में नहीं आयेगा।

विश्व की प्राचीनतम कविता वेद की ऋचा है, जो अपनी दिव्य प्रकृति के कारण अजर-अमर हैं- "देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।" पृथिवी को स्वरवती बनने का प्रथम सौभाग्य वेदों से ही मिला- "ज्योतिष्मतीय अदितिं धारयत् क्षितिं स्वरवतीम्" इस दिव्य गीति-कविता को महर्षि अरविन्द मानव अन्तरात्मा अथवा संवेदना के अमृतारोहण का प्रगीतात्मक महाकाव्य मानते हैं। ऋग्वेद के 'वाक्' सूक्त के अनुसार जो इस दिव्य काव्य का अनुशीलन करते हैं, वे सर्वज्ञ, ऋषि, मनीषी हो जाते हैं-

यं कामये तं तमुग्र कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।

अथर्ववेद में आधिदैविक, अधिभौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान है, लेकिन इसका मूल स्वर ब्रह्म चिन्तन ही है। यज्ञ में चार ऋत्विकों की आवश्यकता होती है, उसमें अथर्व का ऋत्विक ही ब्रह्मा अर्थात् यज्ञ का पुरोधा बनता है। यज्ञ के विधि-विधान का निरीक्षण और संभावित त्रुटि का मार्जन करने में ब्रह्मा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। स्तवन, यजन, गायन से ब्राह्य रूप निर्मित होता है जो वेद त्रयी (ऋक्-यजु-साम) करता है। लेकिन मन में आध्यात्मिकता का आलोक अथर्ववेद से ही आता है। इसीलिए ब्राह्मण ग्रन्थ में अथर्व को वेदत्रयी का शुक्र (सार तत्व) माना गया है। अथर्ववेद में बीस काण्ड है, जिनमें ७३१ सूक्त और ५९७७ मंत्र है। यह वेद जीवन की विविधिता का वेद है।

अथर्व का भैषज सूक्त आयुर्वेद शास्त्र का मूल है। इस सूक्त में काय-चिकित्सा, शल्य-विधान, औषधि-रसायन, अंगद तंत्र (विष हरण), वाजीकरण आदि वर्णित है। इसमें वनस्पति का गुणगान भी है। उदाहरण के लिए अपामार्ग

(चिरचिरी) की प्रशंसा में उसे भूख-प्यास मारक और निर्धनता व निस्सन्तानता निवारक कहा गया है-

क्षुधा मारं तृष्णा मारमगोतामनपत्यताम।

अथर्ववेद का सबसे महत्वपूर्ण अंश है, बारहवें काण्ड का पृथिवी सूक्त, जिसमें कुल ६३ मंत्रों में पृथिवी की महिमा अत्यन्त उदात्त रूप में गायी गई है। इसका 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या' वाक्य तो समस्त भूमि पुत्रों का आदर्श वाक्य हो गया है। इसे पढ़कर अनुभव होता है कि हमारे पूर्वज ऋषि मुनियों को भारत-भूमि से कितना प्रगाढ़ प्रेम और श्रद्धा भाव था। आश्चर्य है कि उन पूर्वजों को बाहर से आया सिद्ध करने के लिए धूर्त पाश्चात्य विद्वानों ने आकाश-पाताल एक कर दिया था। यहां का षड्ऋतु, यहां की विविध वनस्पति, यहां का जलवायु, धूलि, पंक, लोहे, पत्थर के प्रति जो आत्मीयता इस पृथिवी सूक्त में है, वह उन धर्मान्ध मिशनरियों को नहीं दिखाई पड़ी।

अथर्ववेद में ब्रह्मविद्या का विश्लेषण विस्तार से हुआ है। ब्रह्म का यही सर्वव्यापी सनातन रूप इस्लाम पंथ के अल्लाह और ईसाई पंथ के गॉड में सन्निहित है। ईसाई GOD के तीनों वर्ण वैदिक परमेश्वर त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) के सृष्टिकर्ता, पालन कर्ता, संहार कर्ता पर आधारित है। G= Generator (सृष्टा), O= Operator (पालक) और D = Destroyer (संहारक)।

मेरा सौभाग्य है कि मैं जिस स्थान पर रहता हूं, वह स्थान श्री वीरेन्द्र कुमार राजपूत जैसे तपस्वी आर्य की तपश्चर्या से आलोकित है। वे ब्रह्मवेत्ता है, उच्चकोटि के साधक है और वेदों के मर्मज्ञ मनीषी हैं। इन्होंने अथर्ववेद जैसे विराट् वेद के सभी मंत्रों का काव्यानुवाद करने का जो शिव संकल्प लिया था, उसी के फलस्वरूप इसका प्रथम भाग ग्रंथ रूप में प्रकाशित हो चुका है और द्वितीय भाग आज सुधी पाठकों के समक्ष है। राजपूत जी पर ईश्वर की कृपा है कि इनकी काव्यमयी लेखनी ने दो वेद यजुः और साम का काव्यानुवाद प्रस्तुत किया, जिसे विद्वान् पाठकों ने हाथों हाथ लिया। अपनी पारिवारिक समस्याओं

से जूझते हुए कठिन और गूढ़ वेद-मंत्रों का काव्यानुवाद करना वस्तुतः दुष्कर कार्य है, जिसमें राजपूत जी दिन-रात संलग्न हरते हैं यह विराट् साधक जब विनम्रता की मिसाल प्रस्तुत करते हुए मेरे घर आता है, तो प्रांगण की सारी वनस्पतियां ऊर्जस्वित हो उठती हैं। अत्यन्त मितभाषी, मुख पर सात्विक मुस्कान, सदैव मनन चिन्तन में रत राजपूत जी आज भी दधीचि की त्याग परम्परा को जीवित रखने वाले अंतिम साधक हैं। इनके सामने मेरा व्यक्तित्व बौना है, निःसन्देह आयु, साधना, विद्वता सभी में मुझसे श्रेष्ठ होते हुए भी राजपूत जी ने इसका प्राक्कथन लिखने का अग्रह जब मुझसे किया, तो मैं संकोच में पड़ गया। मैंने इस द्वितीय भाग के मंत्रों और काव्यानुवाद को पढ़ा तो स्तब्ध रह गया। मंत्रों को सहज रूप में व्याख्यायित करना अत्यन्त कठिन और उसे काव्य रूप देना तो असंभव है। मगर राजपूत जी उस असंभव कार्य को अपनी अविरल साधना से संभव बना रहे हैं।

इन्होंने कवित्त, सवैया, दोहा आदि हिन्दी के प्रचलित छन्दों के सांचे में मंत्रों के भावार्थ को ढालने का भरसक प्रयास किया है। कुछ गीत भी रचे हैं, कुछ पद भी। इनकी भाषा में लोक-भाषा की लोच है, जिसके कारण शब्दों की मात्रा ह्रस्व से दीर्घ और दीर्घ से ह्रस्व हो गयी है। इसे खड़ी बोली में कविता पढ़ने से अभ्यासी पाठक त्रुटि न समझें। यह लोक भाषा हिन्दी का पुराना स्वरूप है। जिस पर खड़ी बोली खड़ी है। अपनी बात स्पष्ट करने के लिये मैं एक मंत्र का उदाहरण देता हूँ-

शतेना पाशैराभिधेहि वरूणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ्नृचक्षः। आस्तां जाल्म उदरं श्रंसयित्वा कोशश्वाबन्धः परिकृत्यमान।(४.१६.७)

इसका सवैया छन्द में किया गया काव्यानुवाद पठनीय है-

नर जो करता बहु पाप उसे,
शत पाश लिये प्रभु बांध रखे;

उसको भी प्रभू नहीं छोड़ता जो,
कर्मों से सदैव असत्य भखो।
भरने के लिए निज पेट को जो,
दुसरों को सताने में नाहि थके,
वह पाप भरा द्रुत ही अपना,
कर नाश सदा परिणाम चखे।।

कितनी सरलता से इन्होंने मंत्र के मर्म को समझा दिया है। सचमुच मैं चकित हूं। द्वितीय भाग के तमाम मंत्रों और उनके काव्यानुवादों को गौर से पढ़ने के बाद अक्सर मुझे यह लगा कि राजपूत जी की काव्य भाषा उस धेनु गाय की तरह है जो थन में दूध के भार से चल नहीं पाती।

अनेक प्रकार के आधिभौतिक, आधिदैहिक तापों में तपते हुए राजपूत जी जो सम्प्रति निःश्रेयस कार्य कर रहे हैं, उसका मूल्यांकन करने की क्षमता शायद वर्तमान भारत में नहीं है। मगर भविष्य का भारत इनके तेजोदीप कवि का आलिंगन करने के लिए दोनों हाथ बढ़ा सीमान्त पर खड़ा है। मैं राजपूत जी को नमन करता हूं और इनके चिरायु की कामना करता हूं। मैं इस पुस्तक के प्रकाशक वैदिक साधन आश्रम को भी धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने आर्थिक दृष्टि से लाभकर न होते हुए भी इस महत्कर्म को सम्पन्न करने का संकल्प लिया। मुझे पूरा विश्वास है कि आज नहीं तो कल, इस पुस्तक को पढ़ने वाली आंखें करोड़ों की संख्या में होगी।

दिनांक १.७.१४

डॉ० बुद्धिनाथ मिश्र
वरिष्ठ साहित्यकार
अध्यक्ष-स्वयंप्रभा, देवधा हाउस
५/२ वसन्त विहार एन्क्लेव, देहरादून-२४८००६

कवि की ओर से

सबसे प्रथम धन्यवाद है प्रभु को, जो कि-
मम तन, मन, बुद्धि नित्य स्वस्थ रखते;
राजेन्द्र जिज्ञासु जी को धन्यवाद, जो कि-
देने में बढ़ावा मुझे रंच नहीं थकते।
उत्तम मुनि जी को है धन्यवाद, जो कि मुझे,
नेह भरे अपने, वचन दे, महकते;
इस ग्रन्थ के समस्त मंत्रों के काव्यार्थ,
का सप्रेम स्वाद जो सदैव रहे चखते।।

दोष जहां पाया, दिखलाया और सुझाव दिया,
पंक्तियों का सौन्दर्य आपने बढ़ा दिया;
श्रद्धेय, बड़े भाई, हितकारी, पिता तुल्य,
आपने मुझे है सून दून में खड़ा किया।
विद्वत् जनों को धन्यवाद है, कृपालु बन,
जिन्होंने मुझे वेद-शृंग पर चढ़ा दिया;
दानियों को धन्यवाद, काव्यार्थ छापने को,
जिन्होंने मुझे बहु दान से मढ़ा दिया।।

कवि- वीरेन्द्र कुमार राजपूत

मातृभूमि वन्दना

मंत्र -सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु।।१।।

काव्यार्थ–

हे मातृभूमि! जो रहे सदैव सत्य प्रिय तथा-
यथार्थ- ज्ञान, ब्रह्मशक्ति, दक्षता को धारते;
बने रहे तपस्वी जो, अतुल्य तेज को लिये,
सदैव ही हृदय में त्याग भावना बिठारते।
हे मातृभूमि! जैसे वह स्वराष्ट्र को है धारते,
स्वराष्ट्र को है जैसे पालते तथा संभारते;
तथैव हम समस्त उक्त सद्गुणों से पूर्ण हो,
सदैव पालते तुझे, सुरक्षना न टारते।
हे मातृभूमि! हमको निज आधार से सदैव ही,
तू भूत औ भविष्य, वर्तमान में है पालती;
विनय है हमें प्राप्त तू करा अति विशाल थल,
हमारी कीर्ति रख दसों दिशाओं में बिठालती।

मंत्र- असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु। नानावीर्या औषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः।।२।।

काव्यार्थ–

जिस हमारी मातृभूमि के सामान्य औ-
अग्रणी मनुष्यों बीच द्रोह नहीं है;
सभी में समता, प्रेम और एक्य भाव है,
मित्रता सभी के बीच सोह रही है
जो मातृ भू हमारे हेतु रोग-हर तथा,
अतीव पुष्टिकर अनेक औषधि जने;
नाना प्रकार की वनस्पति प्रदान कर,
हमें सदैव रक्षती व पोसती घने।

हमारी ऐसी मातृभूमि सुख-प्रदायिनी,
हमारे हित के हेतु हमेशा बनी रहे;
हमारे यश तथा हमारी कीर्ति को सदा,
दिशाओं में प्रसार की कारण बनी रहे।

मंत्र- यस्या समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः। यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।।३।।

काव्यार्थ-

जिसमें समुद्र, सिन्धु औं झरने हैं अनेकों,
जिसमें अनेक ताल-तलैया व झील हैं;
जिसमें विविधि प्रकार के अन्नदि उपजते,
जिसमें विविध सजीव प्राणी कर्मशील हैं।
जिसमें सदैव संगठित रहते हैं, उद्यमी,
कृषि-कर्म में लगे मनुष्य, शिल्प के ज्ञाता;
ऐसी हमारी अति उदार मातृ-भू बने,
हमको समस्त भोग औं ऐश्वर्य की दाता।

मंत्र- यस्याश्चतस्र प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्न कृष्टयः संबभूवुः। या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत्सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु।।४।।

काव्यार्थ-

हमारी जिस मातृभूमि में परिश्रमी,
तथा स्व धर्म में प्रवीण लोग रहे हैं;
कर-कर के कृषि कर्म, कला-कौशलादि को,
करते सदैव दूर रोग-सोग रहे हैं।
जिसका चतुर्दिशाओं और विदिशाओं तक,
नाना प्रकार का विपुल धन-धान्य उपजता;
जो पालती व पोसती, सुरक्षती रहती,
जिससे कि प्राणिमात्र का जीवन रहा सजता।
ऐसे हमारी मातृ-भू अतीव ही हित्
हम सबको धारती, सदैव पोसती रहे;
हम सबके लिए गाय और अन्न आदि को,
निज कोष बीच रखाती हमें तोषती रहे।

मंत्र- यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु।।५।।

काव्यार्थ-

जिस मातृभूमि में हमारे पूर्वज रहे,
जिनका प्रसिद्ध शौर्य, ऐश्वर्य रहा;
उन धर्मनिष्ठ अपने पूर्वजों में बुद्धि बल,
अरू ज्ञान-बल के बीच साहचर्य रहा।
जिस मातृभूमि बीच विज्ञ, वीर, दिव्य जन,
पौरूष विहीनता का थे करते विलय रहे;
अरू आसुरी प्रवृत्ति, राक्षसी स्वभाव के-
बहु आततायी लोगों पर पाते विजय रहे।
जो मातृभूमि गाय, अश्व, पक्षियों को भी
विशेष सुख व मोद को देने की थली है;
वह हमको ऐश्वर्य, वीर्य, शौर्य प्रदाने,
पुत्रों को दान देने में कब मात टली है।

मंत्र- विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी। वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु।।६।।

काव्यार्थ-

जो मातृभूमि सबको पालती व पोसती,
अपने में सब प्रकार के ऐश्वर्य धारती;
सब ही पदार्थों की है आधारभूत जो,
निज वक्ष में सुवर्ण आदि को बिठारती।
जगती में जीव-जन्तु औं जितने पदार्थ हैं
उन सब ही को अपने में बसाती है जो सदा;
है पूर्ण भांति-भांति के मानव समूह से,
उनको जो धारती है, मिटाती है आपदा।
वह मातृभूमि, अग्रगामी नेता हमारे,
अरू ज्ञानियों को ज्ञान-सम्पदा का दान दे;
शत्रु-विनाश-कर्ता शूर वीरों पर, एवं -
हम पर सभी प्रकार के ऐश्वर्य तान दे।

मंत्र- यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवां भूमिं पृथिवीप्रमादम्! सा नो मधु प्रियं दुह्रामथो उक्षतु वर्चसा।।७।।

काव्यार्थ-

हमारी प्यारी मातृभूमि जो हमें सदैव ही,
सभी प्रकार के पदार्थों का दान दे रही;
हमारी प्यारी मातृभूमि जो कि दुहे जाने पर,
मधुर प्रिय पदार्थ कर प्रदान, हमें से रही।
हमारी ऐसी विस्तार युक्त मातृभूमि को,
सदैव ही सुरक्षते प्रमाद हीन विज्ञ जन
आलस्य, निद्रा, तन्द्रा आदि दोषों से विहीन जो,
सदैव जागरूक जो, सदैव दृढ़-प्रतिज्ञ मन।
सदैव शूरवीरों की सुरक्षणा में रह रही,
हमारी मातृभूमि हमें तेज को दिया करे;
हमें अपार वीरता व ऐश्वर्य दान कर,
हमारी बुद्धियों में वृद्धि ज्ञान की किया करे।

मंत्र- यार्णवेधि सलिलमग्र आसीद्यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिणः। यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः। सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे।।८।।

काव्यार्थ-

जिस भूमि के अमृत समान हृदय बीच में,
आकाश के समान परमेश व्याप्त है।
जो सत्य-स्वरूप रक्षता सभी को है,
न जन्मता कभी, नहीं होता समाप्त है।
वह भूमि पूर्व में समुद्र-गर्भ में रही,
निकली शनैः शनैः तथा आकार में बनी;
वह है महत् आकाश बीच, बीच अधर में,
सेवा विचार-वान् उसकी करते हैं घनी।
वह भू हमारे श्रेष्ठ राष्ट्र में सदैव ही,
तेजस्विता व शूरता विकासती रहे;

सदैव शक्तिमत्ता को बढ़ाए राष्ट्र की,
जनों के बीच विज्ञता प्रकाशती रहे।

मंत्र- यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादंक्षरन्ति। सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।६।।

काव्यार्थ-

जैसे गगन में मेघ बरसते हैं जिस समय,
तब प्राणियों को एक समान जल प्रदानते;
वैसे ही परोपकारी सन्यासी सभी को,
देना समान रूप से उपदेश जानते।
थिरता को त्यागते हुए गतिशील हुए वह,
जिस भूमि पर प्रमादहीन होते विचरते;
शुभ आचरण कभी नहीं वह छोड़ते तथा,
नित ही सुधारते उन्हें, जो रहते बिगड़ते।
जो मातृभूमि अति उदार, सब प्रकार के-
भरपूर अन्न और जल जिससे लिया करें;
वह हमको पालती व पोसती रहा करे,
तेजस्विता में वृद्धि दे, रक्षा किया करे।

मंत्र- यामश्विनाममिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे। इन्द्रोयां चक्र आत्मनेऽनामित्रां शचीपतिः। सा नो भूमिर्वि सृजता माता पुत्रा मे पयः।।१०।।

काव्यार्थ-

जो शत्रुओं का करते हनन शूर हैं,
जो पोषण जनों का करने में तूर हैं;
वह जिसका निर्माण किया करते हैं सदा,
वह जिसको मापने में रहे मशहूर हैं।
पालक बली, भली प्रकार जिसके लिये,
सदैव ही पराक्रम महान् करते;
ज्ञान-कर्म-प्रज्ञा-धनी नित्य ही जिसे,
शत्रु-विहीन कर विहान करते।

वह माता के समान मातृ-भूमि हमारी,
हमको सभी प्रकार के पदार्थ दिलाए;
ज्यों माता अपने पुत्र को पिलाती दूध है,
त्यों अन्न को खिलाए अरू दूध पिलाए।

मंत्र- गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु। बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्। अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्।।११।।

काव्यार्थ-

मातृभूमि! तेरे सब हिमवान गिरि और-
पर्वत, अरण्य, सुख-दायक रहा करें;
शत्रु-हीन होकर भरण सबका तू करे,
नाना रूप धारे, कृषि लायक रहा करे।
उपजाऊ, थिर और आश्रय सभी का बने,
तव हेतु वीर, कर सायक गहा करे;
होकर के अक्षत, अहत औ अजेय हम,
राष्ट्र अपने के शुभ नायक रहा करें।।

मंत्र -यत्तेमध्यं पृथिवी यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः। तासु नो धेह्यभि नः प्रवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।।१२।।

काव्यार्थ-

पृथिवी! जो तेरे मध्य भाग में पदार्थ हैं,
अरू नाभि भाग में जो उपजती है वस्तुएं,
बल की प्रदायिनी तथा ऊर्जा प्रदायिनी,
तेरे शरीर से जो उपजती है वस्तुएं।
उन सब ही वस्तुओं को तू हमें प्रदान कर,
हम सबके बीच सच्चरित्रता प्रकाम भर;
तू माता है हमारी, हमें तू सुरक्षा अरू-
हम सबको तू माता की सुरक्षा प्रधान कर।
तुझको कभी दिया करें न कष्ट, अरू तेरे-
कारण मरा करें, तेरे कारण जिया करें;

जल-वृष्टि से पोषण को करते मेघ, पिता है,
वह अन्न आदि द्वारा सुरक्षा दिया करें।

मंत्र- यस्यो वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः। यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्या पुरस्तात्। सा नो भूमिर्वर्धयद्वर्धमाना।।१३।।

काव्यार्थ-

जिस मातृभूमि में सुकर्मी विश्वकर्मा जन,
नित परोपकार मार्ग पर करते गमन मिलें;
वह सर्वदा ही वेदी का करके परिग्रहण,
यज्ञस्थली पर नित्य ही करते हवन मिलें।
जिस भूमि पर आहुति से पूर्व ऊर्ध्व उज्ज्वल-
वर्णों के स्वर से नित्य ही गुंजित भवन मिलें;
वह वर्द्धमान मातृ-भू ऐसी कृपा करे
सर्वत्र ही सुकर्मों के उन्नत चमन मिलें।

मंत्र- यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान्मनसा यो वधेन। तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि।।१४।।

काव्यार्थ-

हे मातृभूमि! जो हमारा हृदय से सदा-
अनिष्ट चाहते हैं, जो सदैव डाहते;
जो शत्रु हमारे अपार सैन्यबल लिये,
करके चढ़ाई हमको जीतना हैं चाहते।
हे मातृभूमि! चाहते जो दास बनाना,
उन शत्रुओं के दिल में तू अतुल्य त्रास भर;
उन शत्रुओं का पूर्व ही विनाशकारिणी,
हे मातृभूमि! शत्रुओं का पूर्ण नाश कर।

मंत्र- त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः। तमेव पृथिवी पंच मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति।।१५।।

काव्यार्थ-

हे मातृभूमि! हम सभी संसार के व्यक्ति,
जिन्होंने तुझी से यहां पर जन्म है पाया,
तेरे ही सहारे जो विचरते हैं, मातृ-भू,
तेरे ही सहारे जिन्हें व्यवहार है आया।
सम्पूर्ण जिन द्विपद तथा चतुष्पदों को तू-
देकर आधार पालती व पोसती सदा;
जिनके लिये आकाश का उगता हुआ सूरज,
अमृतमयी किरणों को गिराता है ज्योति-दा।
वह पांच श्रेणियों के रहे व्यक्ति हम सभी,
विद्वान् ज्ञानी, क्षत्रिय वीरत्व को गहें,
व्यापारी, कारीगर व व्यक्ति सेवावृत्ति के,
सब चाहते हैं सेवकाई में तेरी रहें।

मंत्र- ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम्।।१६।।

काव्यार्थ-

हे मातृभूमि! मेरी मधुर वाणी तू बना,
मधु रूप दुग्ध से सदा रूरित रहा करें;
हम सब तेरी प्रजा हैं, हमें तू मिठास दे,
वाणी सदैव प्रेम से पूरित रहा करे।

मंत्र -विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमि पृथिवीं धर्मणा धृताम्। शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा।।१७।।

काव्यार्थ-

औषधियों वनस्पतियों को जनती जो मातृभू,
विस्तार को धारे हुए, स्थिर सदा रहे;
जिसकी कि देश-भक्त वीर, धर्म परायण,
रक्षा किया करते हैं, दूर आपदा रहे।
जो मातृभूमि सर्वदा कल्याण दायिनी,
जिस मातृभूमि से सभी सुख सर्वदा झरते;
उस प्यारी मातृभूमि, सुखदायिनी की हम,
श्रद्धा व भक्ति पूर्वक सेवा सदा करते।

मंत्र- महत्सधस्थं महती वभूविथ महान्वेग एजथुर्वेपथुष्टे। महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम्। सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन।।१८।।

काव्यार्थ-

अत्यन्त ही महान् हे हमारी मातृ-भू,
फैला हुआ है क्षेत्र तेरा दूर-दूर तक;
हम सब जनों के एक साथ वास को विस्तृत,
स्थान दिया करती है, रखती सदैव ढक।
हे मातृभूमि! आश्चर्य बीच डालता,
अविराम तेरा सूर्य के चहुं ओर का भ्रमण;
निज कीली पर सदैव तेरा घूमते रहना,
करना कभी न अपने मार्ग का अतिक्रमण।
हे स्वर्ग के समान तेजपूर्ण मातृ-भू,
हमको भी स्वर्ग के समान तेजवान कर;
हम एक दूसरे से कभी द्वेष ना करें,
हमको विभिन्न फूलों की माला समान कर।

मंत्र- अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु। अग्निरन्तः पुरूषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः।।१९।।

काव्यार्थ-

यह मातृ-भू हमारी तेज पूर्ण अग्निमय,
औषधियां, वनस्पतियां अतुल अग्नि धारती;
इस ही से सभी भाोज्य पचा करता हमारा,
औषधि इसी से रोग को तन के निवारती।
बहते हुए जल भूमि के अग्नि को धारते,
विद्युत् की शक्ति इन जलों के बीच छिपी है;
इसके सभी मनुष्य अतुल वीर है, उनमें-
ब्रह्मचर्य तेज पूर्ण छिपी अग्नि दिखी है।
गौवों में अग्नियां हैं, इनका दुग्ध पान कर,
हम शक्ति धारते हैं, बुद्धि को प्रकाशते;
अरू अश्व अग्निपूर्ण हैं, करते सहायता,
हम युद्ध-क्षेत्र बीच शत्रु-दल विनाशते।

मंत्र- अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम्। अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं धृतप्रियम्।।२०।।

काव्यार्थ-

द्यु लोक से अग्नि हमारी मातृभूमि पर,
आकर के शान्त भाव से तप करता दीखता;
हम सब जनों के राष्ट्र के विस्तृत आकाश पर,
है दिव्य गुणी अग्नि व्याप्त, धार तीखता।
धृत चाहने वाले अगनि को जीवनों में ला,
करते हमारे राष्ट्र के मनुष्य यज्ञ हैं;
घृत आहुति को प्रज्ज्वलित करते सुगन्ध से
वह पूर्ण रूप व्योम भरा करते सद्य हैं।

मंत्र- अग्निवासाः पृथिव्यऽसितज्ञ्रस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु।।२१।।

काव्यार्थ-

हमारी मातृभूमि जो कि असित वर्ण की,
जो कान्तिपूर्ण अग्नि-परिधान ओढ़ती;
वह ज्ञान, कीर्ति, यज्ञ को बढ़ाए, औं मुझे-
करती रहे सतेज, रहे अन्ध तोड़ती।

मंत्र- भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम्। भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः। सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु।।२२।।

काव्यार्थ-

जिस मातृभूमि पर हमारे राष्ट्र के व्यक्ति,
यज्ञों की मुदित-भाव आवृत्ति किया करें;
देवों के लिए श्रेष्ठ रीति से बने हुए,
हव्य पदार्थों की आहुति दिया करें।
यज्ञों के फलस्वरूप जिस मातृभूमि पर,
बरसाया करते मेघ अत्यन्त स्वस्थ जल;
उससे उपजते स्वास्थ्यप्रद अन्न आदि हैं,
जो भरते हैं तन, मन, व बुद्धि में अतीव बल।
ऐसी हमारी मातृ-भू सबका भला करें
सब ही के प्राण पुष्ट करे, आयु बढ़ाए;

सब रह रहे जनों का बना दीर्घ हो जीवन,
मुझको भी मातृभूमि दीर्धजीवी बनाए।

मंत्र- यस्तेगन्धःपृथिवी संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः। यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन।।२३।।

काव्यार्थ-

हे मातृभूमि! तुझमें जो उत्पन्न गन्ध है,
औषधियां उसी गन्ध को निज में बिठारती;
जल धारते उसी को, उसे धारते युवा,
अरू युवतियां उस गन्ध को अपने में धारती।
हे मातृ-भू! उत्पन्न जो तुझमें सुगन्ध है,
उस ही सुगन्ध से तू मुझे पूर्ण बना दे;
हम लोगों में कोई किसी से द्वेष ना करे,
हृदयों के बीच मित्रता के भाव जगा दे।

मंत्र- यस्तेगन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे। अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन।।२४।।

काव्यार्थ-

हे मातृभूमि! तेरी बेमिसाल गन्ध है,
वह गन्ध समाई है तड़ागों के कमल में;
सूर्या के शुभ विवाह बीच, अमर शक्तियां,
लाती हैं वहीं गन्ध प्रथम बार चमन में।
हे मात! अपनी गन्ध से गन्धित हमें करो,
हम लोग तेरी गन्ध के कारण जिया करें;
हृदयों के बीच द्वेष भावना कभी न हो,
मानव समाज का सदैव हित किया करें।

मंत्र- यस्ते गन्धः पुरूषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रूचिः। यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु। कन्यायां वर्चो यद् भूमि तेनास्मां अपि सं सृज। मा नो द्विक्षत कश्चन।।२५।।

काव्यार्थ-

हे मातृभू तेरी जो गन्ध व्यक्तियों में है,
जो गन्ध स्त्रियों के बीच वर्तमान है;

जो गन्ध मृगों, घोड़ों और हाथियों में हैं,
जो गन्ध लिये वीर जन, समर्थवान हैं।
जो तेज ब्रह्मचारिणी कन्याओं में रहा,
जो तेज ब्रह्मचारी गात मांह धारते;
हे मात वही तेज अरू गन्ध दे हमें,
नित प्रेम बढ़े, द्वेष रहें दूर डारते।

मंत्र- शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता। तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः।।२६।।

काव्यार्थ-

जिस हमारी मातृभूमि का शरीर सब,
पत्थर व शिला-खण्ड और धूल युक्त है;
जो हम जनों के ज्ञान, कर्म शौर्य के द्वारा;
संरक्षणा पाए हुए, शत्रु से मुक्त है।
बहु-मूल्य वस्तुओं का है रखती भण्डार जो,
स्वर्णादिकों की खानें जहां पर अपार है;
जिसका हिरण्यमय सदैव वक्ष रहा है,
उस मातृ-भूमि को नमन अनेक बार है।

मंत्र- यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा। पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि।।२६।।

काव्यार्थ-

हमारी जिस मातृभूमि के पटल, विविध-
प्रकार की वनस्पति द्वारा जड़ें हुए;
पर्वत व घाटियों तथा मैदानों में जहां,
बहु वृक्ष पंक्ति-बद्ध हो स्थिर खड़े हुए।
इन सबको आदि काल से जो धारती, तथा
हम लोग जिसको धारते आए सदैव से;
उसको ही पूजते तथा करते उसे नमन,
उस पर ही प्राण वारते आए सदैव से।

मंत्र- उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः। पदभ्यां दक्षिणसव्यसाभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम्।।२८।।

काव्यार्थ-

हम लोग हों उठते हुए या बैठते हुए,
प्रत्येक काल ध्यान रहे मातृभूमि का;
गतिवान रहे पैरों से, या हम खड़े रहें,
अधरों पे सदा गान रहे मातृभूमि का।
मर्यादा मातृभूमि की रखाते सदा रहें,
खोने नहीं दे स्वाभिमान मातृभूमि का;
अपनी ये मातृभूमि व्यथा को न प्राप्त हो,
करते रहें सदैव त्राण मातृभूमि का।

मंत्र- विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमा भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम्। ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं धृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे।।२९।।

काव्यार्थ-

यह धरती जिसे सर्वशक्तिमान प्रभू ने,
अपनी अन्तशक्ति से धारण किया हुआ;
सब कुछ जो सहन करती है, सब कुछ प्रदानती,
हम सबका जिसने कष्ट-निवारण किया हुआ।
जो धरती खोजने के योग्य है विशेषकर,
जो बल को बढ़ाती है तथा पुष्टियां देती;
विस्तार और ख्याति दिलाती जो सभी को,
घृत, अन्न आदि धारती है, तुष्टियां देती।
बढ़ती प्रभू से, ब्राह्मणों से, वेद-ज्ञान से,
उस मातृ-भू धरा से हमारी है प्रार्थना,
हमको सदैव अपनी शरण में रखा करे,
यह विनती हमारी कहीं जाए अकार्थ ना।

मंत्र- शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः। पवित्रेण पृथिवि मोत्पुनामि।।३०।।

काव्यार्थ-

हे मातृभूमि! शुद्धता प्रदायिनी, सदा-
निर्मल जलों की धार बहाती रहा करो;

करती रहो पवित्र, स्फूर्तिमय हमें,
तन की अशुद्धताएं ढहाती रहा करो।
व्यवहार हमारा अनिष्टकारी रहे जो,
हम उसको अप्रिय सदैव जानते रहें;
उस कर्म से सदैव दूर रहने के लिये,
मन बीच में संकल्प सुदृढ़ तानते रहें।
हे मातृभूमि! मैं पवित्र आचरण करूं,
निज को पवित्र, शुद्ध बनाता रहा करूं;
मन और वचन, कर्म से सत्कर्म ही करूं,
दुष्कर्म-शत्रुओं को हनाता रहा करूं।

मंत्र- यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्याश्च पश्चात्।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः।।३१।।

काव्यार्थ-

हे मातृ-भू! तेरी दिशा पश्चिम व पूर्व की,
उत्तर की दिशा और जो दक्षिण की दिशा है;
अथवा तेरी कोणीय सभी उपदिशाएं, औ
जो पृष्ठ भाग की तथा नीचे की दिशा है।
यह दूर-दूर तक लिये विस्तार दिशाएं,
मुझको करें निर्भय तथा सुखदायिनी होवें;
मैं नित्य ही उन्नति करूं अरू लक्ष्य को पाऊं,
यह सब दिशायें, सब मेरे बाधा, कलुष धोवें।
हे मातृ-भू तव क्षेत्र जो विस्तार में फैला,
जिसका मैं सहारा लिये, विचरण किया करता,
इसकी ये दिशाएं, मेरा रोकें अधः पतन,
दुष्कर्म को तजता, रहूं सद्मार्ग को वरता।

मंत्र- मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत। स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन्परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम्।।३२।।

काव्यार्थ-

हे मातृ-भू! अत्यन्त ही हितकारिणी, हमको-
रचना तेरी कल्याण का मधु-सोम पिलाये,

तेरी सभी सुखदायिनी समृद्ध दिशाएं,
हमको किसी प्रकार की हानि न दिलायें।
हे मातृ-भूमि! क्लेश औ पीड़ा विनाशिनी,
तव पश्च भाग नाश न करता हो हमारा;
निर्बाधता पूरब गहे, उत्तर का भाग भी,
दक्षिण कभी सुख ग्रास न करता हो हमारा।
जो शत्रु मार्ग रोक कर करते प्रहार, वह
जाने हमें न रंच, रहें उनको भुलाएं;
उनके हनन को अपने सर्वश्रेष्ठ अग्रणी,
करते रहें प्रयत्न, कभी चैन न पाएं।

मंत्र- यावत्तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना। तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम्।।३३।।

हे मातृ-भू! जब तक सनेही सूर्य-ज्योति से,
आंखें तेरे वैभव व रूप राशि को पाएं;
तब तक ये उत्तरोत्तर वर्षों रहें जगती,
देखा करें तुझको ही, नहीं नाश को जाएं।

मंत्र- यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यनमि भूमेपार्श्वम्। उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत्पृष्टीभिरधिशेमहे। मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि।।३४।।

काव्यार्थ-

हे मातृ-भू! फैली हुई ये दूर दूर तक
धरती मुझे सुखदाई एक शय्या समान है;
मेरे लिये बनाया है भगवान ने इसे,
तब तक रहेगी साथ में, जब तक जहान है।
हे सबको ही सुख से सुलाने वाली मातृ-भू
तुझ पर मैं नींद लेने को जिस काल से लेटता;
करवट लिया करता हूं दाहिने को या बाएं
इस भांति दिन भर की हूं थकान मेटता।
अथवा मैं चित्त होकर, पीठ नीचे किये जब,

तुझ शय्या के समान पड़ी पर हूं लेटता,
तब तू मुझे अतीव सुख करती प्रदान है
देती है गहरी नींद, मैं सपनों से लौटता।
हे मातृ-भूमि! हम सभी जन तेरे पुत्र हैं
सोने के लिए हमको सहारा प्रदान कर;
सोते पर हम पर कोई शत्रु घात न करे
हमको तू ऐसा श्वान की निद्रा प्रधान कर।

मंत्र- यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपिरोहतु। मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्।।३५।।

काव्यार्थ-

हे मातृ-भू! फसलों को उगाने की चाह ले,
मैं हल को चलाया करूं तुझ पर जहां जहां;
उस काल मैं बोया करूं जो जो भी बीज, वह-
तब उर्वरा-शक्ति से उग चलें वहां-वहां।
तू है विशेष खोजने के योग्य मातृ-भू,
हम तेरे मर्म को नहीं हिंसित किया करें;
तेरे खनिज को प्राप्त करें, किन्तु लोभवश,
तेरे खनन का काम न निन्दित किया करें।

मंत्र- ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्त शिशिरो वसन्तः। ऋतवस्ते विर्हिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम्।३६।।

काव्यार्थ-

हे मातृ-भू! तुम्हारी ग्रीष्म, वर्षा और शरद,
हेमन्त, शिशिर औ वसन्त ऋतुएं सुहानी;
करती हैं बारी बारी से शृंगार तुम्हारा,
आकर सुनाया करतीं हमें अपनी कहानी।
हे मात! व्यवस्थानुसार ऋतुएं तुम्हारी,
हमको प्रभु-प्रदत्त है उपहार सलोना,
नाना प्रकार के भरे फल-फूल हैं इसमें,
ध्वनियों में पक्षियों की ये बजता सा खिलौना।

हे मातृभूमि! ऋतुओं के दिन रात सदा ही,
हम सब जनों के हेतु सुहाने रहा करें;
देते रहें हमको विभिन्न सुखदा पदारथ,
हममें उमंग पूर्ण उठाने रहा करें।

मंत्र- याप सर्व विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः परा दस्यून्ददती देवयीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवीन वृत्रम। शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे।।३६।।

काव्यार्थ-

वह मातृभूमि जो पवित्र करती सभी को,
अन्वेषणीय ज्ञानियों के द्वारा रही है;
जिसको कि कुटिल चाल के चलने में सर्प सम,
पापी जनों की रंच भी भाती न छंही है।
वह मात-भू जो शत्रुओं के नाश में लगे-
वीरों का वरण करती है, रखती संभारते;
अरू नाश किया करती है उन दुष्ट जनों का,
जो सज्जनों, धर्मात्माओं को संहारते।
जिसके जलों में अग्नियों का वास है रहता,
हम इसके ही विज्ञान से बिजली बना रहे;
भौतिक प्रगति का मूल यही बिजली हमारी,
हम इससे ही हर बात जो बिगड़ी बना रहे।
ऐसी हमारी मातृ-भूमि ऊर्जा भरे,
बलवान व्यक्तियों को सदा तारती रहे;
निज शक्तियों का अन्यों पर वर्षण में लगे जो,
निज में सदा ऐसे जनों को धारती रहती।

मंत्र- यस्यां सदोहविर्धाने यूपे यस्या निमियते। ब्रह्मज्ञणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदा यज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे।।३८।।

काव्यार्थ-

जिस मातृभूमि पर निवास हेतु सदन हैं,
अरू हव्य सुरक्षित रहे, इस भांति के थल है;

है यज्ञ के स्तम्भ, यज्ञ सूचना हेतु,
ब्राह्मण हैं, जानते यजु रहस्य सकल हैं।
ऋग्वेद के ज्ञाता अतीव श्रेष्ठ ब्राह्मण,
अरू ब्राह्मण जो साम के मंत्रों के हैं ज्ञाता;
बनकर के ब्रह्मा, पूत वेद मंत्रों के द्वारा,
करते हैं प्रभु-अर्चना द्वारा मधुर बाता।
जिसमें समय समय पर काम करते ऋत्विज,
होते नियुक्त भांति-भांति कामों के लिये;
वह इन्द्र को कराते रहते सोम पान हैं,
ऐसी हमारी मातृभूमि यज्ञों से जियें।

मंत्र- यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः। सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह।।३९।।

काव्यार्थ-

जिस मातृभूमि बीच हुए पूर्व काल में,
ऐसे ऋषि जिन्होंने भूतकाल को रचा;
जो तप प्रधान होके, श्रेष्ठ वाणी बोलकर,
प्रभु-स्तुति करते थे, लिये वेद की ऋचा।
मन और वचन कर्म से पावन अतीव ही,
जीवन चलाते अपना सप्त होताओं द्वारा;
विज्ञान से करते थे जो रचनाएं नित नई,
सत्पुरूषों को जो पालते, देते थे सहारा।

नोट - सप्त होता- पांच इन्द्रियां, मन और आत्मा

मंत्र- सा नो भूमिरादिशनु यद्धनं कामयामहे। भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरागवः।।४०।।

काव्यार्थ-

जिस जिन भी धन की कामनाएं हम करें, वही-
हमको प्रदान अपनी मातृ-भू किया करें
ऐश्वर्य प्राप्ति की रहे मन बीच कामना,
ऐश्वर्य को बढ़ाते काम कर लिया करें।

वीरों की करने के लिए सहायता सदा,
धनिकों के कोश का बहु धन धान्य लदा हो;
अरू वीर हो धुरीण, अत्यन्त धैर्य से-
शत्रु-विनाश हेतु अग्रगामी सदा हो।

मंत्र -यस्या गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलवाः। युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः। सा नो भूमिः प्रणुदतां सतत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु।।४१।।

काव्यार्थ-

जिस मातृभूमि पर विभिन्न वाणियों वाले-
मनुष्य गाते, नाचते, खुशियों को मनाते;
रक्षार्थ जिसकी युद्ध किया करते वीर जन,
हय, शस्त्र, दुन्दुभी सभी आकाश गुंजाते।
वह मातृ-भू सदैव रहे वीरों से भरी
रखाती रहे वीरों में देश-प्रेम जगायें,
हमको सदैव करती रहे शत्रुओं रहित,
हमारे लिये शत्रुओं को मार भगाये।

मंत्र- यस्यामन्नं ब्रीहियवौ यस्या इमाः पंच कृष्टयः। भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।।४२।।

काव्यार्थ-

वह हमारी मातृभूमि जिसकी धरा पर
चावल तथा जौ आदि बहु अन्न उपजते,
इन पुष्टिदायी अन्नों को खाकर समस्त जन
उत्साह से भरे हुए रहते हैं उमगते।
जिस मातृभूमि पर नियम से मेघ बरसते,
बरसात से रहता जहां स्निग्ध धरातल;
चहुं ओर लहलहाते हुए खेत देखाकर,
होते मुदित मनुष्य, नहीं रहता कपट छल।
विद्वान, शूरवीर, वैश्य, कारीगर तथा-
सेवक जहां निर्विघ्न रहा करते मगन हैं;

इस भांति की सुन्दर अतीव मातृभूमि को,
अति प्रेम से हमारा बार-बार नमन हैं।

मंत्र - यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते। प्रजापतिः पृथिवीं-विश्वगर्भामाशां रण्यां नः कृणोतु।।४३।।

काव्यार्थ-

जिस हमारी मातृभूमि बीच शिल्प पटु,
विज्ञान-वान शिल्पी किया करते वास हैं;
रचते सभी प्रजाजनों के हेतु जो नगर,
जिसमें निवास कर सभी करते विकास हैं।
जिस मातृभूमि बीच अपने ,खेतों में कृषक,
कृषि-कर्म करते दीखते नाना प्रकार के;
दिन रात शीत, ताप व वर्षा को सहन कर,
उपजाया करते अन्न हैं, सुख को प्रसारते।
जिस मातृभूमि गर्भ में सब कुछ ही छिपा है,
पैदा जो किया करती है सब कुछ दिवा-निशा;
ऐसी हमारी मातृभूमि को परमपिता,
सुषमा भरी रमणीय बनाए दिशा-दिशा।

मंत्र- निधिं बिभ्रती बहधा गुहा बसु मणिं हिरयं पृथिवी ददातु मे। वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना।।४४।।

काव्यार्थ-

हमारी मातृभूमि जो खानों की खान है,
सम्पत्तियाँ छिपाए जो नाना प्रकार की;
वह हमको विविध हीरा, पन्ना आदि और रतन,
सोना व चांदी आदि रहे नित प्रदानती।
दिव्य गुणों से पूर्ण वह हमारी मातृ-भू
नाना धनों का दान दिया करती है सदा;
वह हमको हो प्रफुल्लचित्त, धन प्रदान कर,
सुख को प्रदान करती, करे दूर आपदा।

मंत्र- जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्। सहस्रं धरा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेर धेनुरनपस्फुरन्ती।।४५।।

काव्यार्थ-

जिस मातृभूमि बीच विविध भाषा-भाषी औ-
नाना धरम के लोग हैं नाना प्रकार के;
एक घर में रहने वाले लोगों के समान वह,
इन सबको धारती है, पालती है प्यार से।
मेरे लिये वह थिर खड़ी गति-शून्यता लिये-
एक दूध दुहाती हुई गौ के समान हो;
धन रूप दुग्ध की सहस्र धार वह मुझको,
करती हुई प्रदान, कहाती महान् हो।

मंत्र- यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंशमा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहाशये। क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि मद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोपद्यच्छिवं तेन नो मृड।।४६।।

काव्यार्थ-

ज़हरीले सांप और बिच्छू आदि जीव जो-
हैं काट लेते, तब अतीव प्यास बढ़ते;
या जिनसे थिरता नष्ट होती, बढ़ती व्यग्रता,
या काटने पर कीट जो कि ताप चढ़ाते।
या प्राणी जो कि जब अतीव शीत हो पड़ता,
सो जाते हैं तब अपने बिलों बीच में जाकर;
आता है पुनः ग्रीष्म-काल तब वही प्राणी,
बिल से निकल आते हैं सुखद ताप को पाकर।
या वर्षा ऋतु बीच बहु कीट विषैले-
चलते हैं रेंग करके जो कम्पन प्रधान बन;
हे मातृभूमि! हमसे ऐसे कीट दूर रख,
कल्याण कर हमारा, हमें सुख प्रदान कर।

मंत्र- ये ते पन्थानो बहवोजनायना रथस्यवर्त्मानसश्च यातवे। यैःसंचरन्त्युभये भद्र पापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड।।४७।।

काव्यार्थ-

हे मातृभूमि। शासकों व दिव्य जनों के
रथ के लिए सुखदायी मार्ग जो भी बने हैं;

जो मार्ग बैलगाड़ियों के आने जाने के,
कच्चे तथा सामान्य रहे धूल सने है।
हे मातृभूमि! अन्न औ अन्न पदार्थों-
के ढोनें योग्य मार्ग जो तुझ पर बने हुए;
अरू मार्ग वह जिन पर है चलते सद्गुणी तथा-
पापी व दुष्ट जो कि स्वार्थ में सने हुए।
हे मातृभूमि! इनमे जो कल्याण-पथ रहा,
उसको तू हमें प्राप्त करा, सुख प्रदान कर;
हम उसको करें चोर तस्करों से हीन, अरू
पाएं सदैव जीत ही उस पर प्रयाण कर।

मंत्र- मल्वंबिभ्रती गुंरूंभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः। वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय।।४८।।

काव्यार्थ-

धारण-सामर्थ्य पूर्ण है हमारी मातृ-भू,
निज वक्ष पर अनन्त गुरू पदार्थ धारती;
मीलों लिये विस्तार, उच्च पर्वतादि को,
अपने पर थापती, कभी दिल में न हारती।
धर्मात्मा, पापात्मा दोनों ही जनों को,
यह धारती रहती तथा सहती मरण को है;
मेघों को पूत करते, किरणों युक्त सूर्य की-
करने परिक्रमाएं, यह जाती भ्रमण को है।
जो सर्वदा ही अपने आचरण से स्वयं को,
अरू दूसरों को करते ही रहते पवित्र हैं;
उन व्यक्तियों को यह सदा मंगल प्रदानती,
उनके सदैव ही अमर रहते चरित्र हैं।

मंत्र- ये ते अरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरूषादश्चरन्त। उलं वृकं पृथिवि दुच्छु-नामितऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत्।।४९।।

काव्यार्थ-

हे मातृ-भू तेरे वनों के जंगली पशु,
रख देते हैं जो अन्य प्राणियों को मार कर;

जंगल के सिंह, व्याघ्र जो बनवासी जनों को
खाने के हेतु मारते, उन पर प्रहार कर।
अति दुष्ट-चाल रीछनी व हिंस्र भेढ़िये,
अरू छिप प्रहार करते जीव जो कि सताते;
हे मातृभू। इन प्राणियों से हमको तू बचा,
उनको यहां से, हम से अति दूर हटा दे।

मंत्र- ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमदिनः। पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय।।५०।।

काव्यार्थ-

हे मातृभूमि व्यक्ति जो हिंसक बने हुए,
प्राणों का हरण करने में करते न देर है,
जो व्यक्ति विलासी व अकर्मण्य बने हैं,
जिनको सदैव ही रहा आलस्य घोर है।
जो व्यक्ति हैं उद्योग हीन, धन से हीन है,
पर-द्रव्य पर जो लोभ भरी दृष्टि डालते;
जो है अनात्मवादी, धूर्त ठग बने हुए,
अपनी कुचेष्टायें नहीं रंच टालते।
जो व्यक्ति राक्षसी प्रवृत्ति के, सदैव घर-
अभक्ष्य वस्तुओं से रखा करते पूर कर;
नित मांसाहार आदि किया करते, मातृ-भू-
तू ऐसे हीन व्यक्तियों से हमको दूर कर।

मंत्र- यो द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि। यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृष्वंश्च्यावश्च वृक्षान् वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चि।।५१।।

काव्यार्थ-

हमारी प्यारी मातृभूमि जो सदैव ही,
दो पैरों वाले पक्षियों की वास थली है;
नित हंस, गरूड़, गिद्ध आदि की पंक्तियां,
उड़ती हुई आकाश बीच लगती भली है।

आंधी को लाते, धूल को उड़ाते, वृक्षों को-
उखाड़ते हुए, तथा बरसाते मेघ को,
नाना फसल उगाते हुए मातृभूमि पर;
बेरोक-टोक वायु धारता है वेग को।
होती है वायु में प्रसार संकुचन गति,
इस गति के ही अनुरूप हो चलता प्रकाश है;
अरू इनके ही अनुरूप प्यारी मातृभूमि का,
होता समस्त ही दिशाओं में विकास है।

मंत्र- यस्या कृष्णमरूणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि। वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि।।५२।।

काव्यार्थ-

जिस भूमि पर दिन-रात अरूण-कृष्ण वर्ण के,
निर्मित किये गये हैं परस्पर मिले हुए;
एक वर्ष में सूर्य की जो करती परिक्रमा,
ऋतुएं बदलतीं, लगती है जैसे खिले हुए।
सब ही का जो सदैव ही आश्रय स्थान है,
रखाती हमें विस्तार तथा ख्याति से ढके;
वह मातृभू हमारी, श्रेष्ठ रीति से सभी-
रमणीय प्रिय थलों में हमें धारती रखे।

मंत्र- द्यौश्च में इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः। अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः।।५३।।

काव्यार्थ-

मेरे विकास को करें द्यौ, अन्तरिक्ष, भू,
जल अग्नि, सूर्य, विज्ञ दिव्यता अनूप के;
यह सब मेरी मेधा को बढ़ाया करें, जिससे
व्यापक रहे चतुर्दिशाओं कीर्ति-रूप से।

मंत्र- अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्। अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः।।५४।।

काव्यार्थ-

मैं मातृ-भू के शत्रुओं का नाश करूंगा।।
मैं वीर्यवान, साहसी, पराक्रमी, तथा-
अत्यन्त ही प्रशंसनीय कीर्ति धारता;
उर बीच अपनी प्यारी मातृभूमि के लिये,
श्रद्धा, अतीव प्रेम-भाव को संचारता।
मैं उसके दुःख निवारणार्थ, सब प्रकार के-
कष्टों तथा कठिनाईयों में वास करूंगा।।
मैं हूं विनाशकर्ता सभी शक्तियों का, जो-
मम मातृ-भूमि के विरूद्ध सिर को उठाती,
पुरूषार्थ से प्रत्येक दिशा उनको कुचलता,
प्राणो को देकर, द्रोह का वह मूल्य चुकाती।
जीवित न रहने दूंगा कोई शत्रु कहीं पर,
प्रण है मेरा, न मात को हताश करूंगा।।

मंत्र- अदो यद्‌दवि प्रथमाना पुरस्ताद्‌दे वैरूक्ता व्यसर्पो महित्वम्। आ त्वा सुभूतम विशत्तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः।।५५।।

काव्यार्थ-

हे मातृभूमि! पहले के मेधावी विज्ञ जन,
जो नीतिवान् और व्यवहार कुशल थे;
तेरी सदैव ही किया करते थे स्तुति,
तव भक्ति-भाव उनमें रहा करते प्रबल थे।
उस काल तेरी कीर्ति और तेरे तेज की-
किरणें दसों दिशाओं में फैली हुई रहतीं;
हे मातृ-भू! अब भी उसी प्रकार सर्वदिशि,
तब कीर्ति औ तव तेज की किरणें रहें बहती।

मंत्र- ये ग्राम्या यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम्। ये संग्रामा समितयस्तेषु चारू वदेम ते ।।५६।।

काव्यार्थ-

समस्त पुत्र मात-भू! तेरे हितू रहा करें।।
हे मातृभूमि! तेरे जो नगर तथा जो गांव हैं,

वहां के निवासी तेरी प्रशस्तियां किया करें;
तेरी ही बात हो वहां सभाओं औ समितियों में,
तेरे ही हित की योजनायें हस्तियाँ किया करें।
कभी न जंगलों का हो कटाव, हों हरे भरे,
अतीव सुख प्रदायिनी सभी ऋतु रहा करें।।
सदैव आततायी शत्रुओं विरूद्ध युद्ध हों,
तेरे समस्त वीर हों सदा कमर करते हुए;
बढ़ाते मान को रहा करें, विजय को प्राप्त कर,
तेरे प्रति हृदय में भक्ति भाव हो बसे हुए।
किया करें प्रभू से एक मात्र यही प्रार्थना,
"हमारी मातृभूमि पर कृपा विभू महा करें।।"

मंत्र -अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान्य आक्षियन्पृथिवीं यादजायत।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधरनाम्।।५७।।

काव्यार्थ-

अरि दल विनाशकारिणाी हमारी मातृ-भू,
दुष्टों को दण्ड देने में करती न देर है।।
अपने बदन पर आई हुई धूल को जैसे
एक अश्व झाड़कर तुरन्त दूर डालता;
वैसे ही मातृभूमि उसे दूर फेंकती,
जो बनता उसका शत्रु, वैर भाव पालता।
बच पाता नहीं रंच मात्र उसके क्रोध से,
अविलम्ब घेर मारती, कर देती ढेर है।।
हमारी मातृभूमि अग्रगामी सदा ही,
उन्नति दिशा में शीघ्रता से पैर बढ़ाती;
उत्पन्न जो होते पदार्थ, रक्षती उन्हे,
औषधियों वनस्पतियों को करती है अढ़ाती।
रहती हमारी मातृभूमि हर्ष से भरी,
जन-जन को हर्ष देने में रहती सुमेर है।।

मंत्र- यद्वदामि मधुमत्तद्वदामि यदीक्षे तद्वनन्ति मा। त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान्हन्मि दीक्षतः।।५८।।

काव्यार्थ-

मैं अपनी मातृभूमि का रक्षक, महाबली,
नित अग्रगामी, तेजवान, बुद्धिमान हूँ;
जो कुछ भी बोलता हूं, बोलता सदा मधुर,
सबको सुनाता रहता मातृभूमि-तान हूं।
जो कुछ भी देखता हूं, हुआ करता लाभप्रद,
हर ओर मातृभूमि का लखता विहान हूं;
जो शत्रु मातृभूमि के दोहन की सोचता
मैं उसके नाश हेतु रूद्र के समान हूं।

मंत्र- शांतिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती। भूमिरधि ब्रवीतु में पृथिवी पयासा सह।।५६।।

काव्यार्थ-

नाना गुणों से पूर्ण मेरी मातृ-भू सदा,
बातें मेरी सुरक्षा की करती रहा करे।।
माता है शान्ति दाता, शान्त गाय समान,
निज स्तनों को दूध से पूरित किये हुए;
अत्यन्त सहनशीलता धारे हुए, निज को-
वत्सलता तथा त्याग से रूरित किये हुए।
माता समस्त ऐश्वर्यों पूर्ण है मेरी,
मम हेतु ऐश्वर्यों को वरती रहा करे।।
माता सुखों की दाता, अन्न दाता मेरी है,
नाना पदार्थों से, अतुल जल से पूर्ण है,
आश्रय थली समस्त जीवधारियों की है,
विस्तार और ख्याति को दिलाती तूर्ण है।
माता मेरी सब भोग्य पदारथ, समस्त जल,
रत्नादिकों से कोश को भरती रहा करे।।

मंत्र- यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम्। भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भयः।।६०।।

काव्यार्थ-

जिस मातृभूमि बीच उसके सभी प्रजा जन,
उद्योग भांति-भांति के करने में कुशल हैं;
सेवार्थ मातृभूमि के कटिबद्ध रहते हैं,
इसको ही मानते सदा जीवन का सुफल हैं।
अति गुप्त थली बीच रखो मातृभूमि में,
भोज्य-पदार्थों से भरा थाल स्वयं आ;
उन मातृभक्तों सामने कहता है कहानी,
माता के हृदय बीच में कितनी छिपी ममता।

मंत्र- त्वमस्यावपनी जनाना मदितिःकामदुग्घा प्रपाथाना। यत्त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य।।६१।।

काव्यार्थ-

सब कामनाएं पूर्ण करने वाली मातृ-भू,
स्तुति सभी जनों की धरने वाली मातृ-भू;
तू ख्यातियां विस्तृत प्रदान करती सभी को,
जन द्वारा बीज बोने की एक मात्र पात्र तू।
हे मातृ-भू ममतामयी, वात्सल्य से भरी,
जन-जन को पालती है औ सुरक्षती है तू;
जन-जन को तू प्रदानती समस्त सुख, तथा-
उनके सभी दुःखो को सदा भक्षती है तू।
प्रभु, जो प्रथम उत्पत्ति-कर्ता सत्य का रहा,
प्रभु, जो अकेला सबको सुरक्षा दिया करे;
हे मातृभूमि। तुझमें है जो कुछ भी न्यूनता,
वह प्रभु उसे अविलम्ब ही पूरी किया करे।

मंत्र- उपस्थास्ते अनमीवा अयक्षमा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः। दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।।६२।।

काव्यार्थ-

हे मातृ-भू! तुझ पर निवास कर रहे सभी-
हम व्यक्तियों को रोग से विहीन तू बना;

भोगा न करें, यक्ष्मादि रोगों को कभी,
हमको सुदीर्घ आयु का प्रवीन तू बना।
तेरे लिए निज स्वार्थ सभी छोड़ते रहे,
कर भार को देते हुए अभिमान करें हम;
तव शत्रुओं से लड़ते हुए युद्ध भूमि में,
रक्षार्थ तेरे प्राण भी बलिदान करें हमं।

मंत्र- भूमे मातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम। संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्।।६३।।

काव्यार्थ- -

कल्याणकारी मेरी मातृभूमि, तू मेरी-
स्थापना सुमार्ग पर भली प्रकार कर,
मम ज्ञान, कर्म औ उपासना पवित्र हों
मन बीच मेरे तू सदैव शुभ विचार भर।
हे सूर्य और चन्द्र के प्रकाश से मिली,
मुझको सदैव निज कृपालु कोर साथ लख;
हे ज्ञानवान, क्रान्तदर्शी, गतिशील मां,
मुझको अतुल्य शोभा ऐश्वर्य बीच रख।

काण्ड ६

सूक्त १

मंत्र- दोषो गाय बृहद्, गाय द्युमद्धेह्याथर्वण। स्तुहि देवं सवितारम्।।१।।
काव्यार्थ-

निश्चल रहे ब्रह्म के ज्ञाता, हे अनुयायी अथर्वा के,
सविता देव प्रभु को गा तू? पार तुझे वह करवा दे;
रात्रि-काल में भी गा उसको? पाप सभी वह जरवा दे,
बृहत् रीति से गा, झोली में सकल सुखों को धरवा दे;
उसी तेज युत को धारण कर, भक्त उसे धर गर्वाते,
स्तुति वन्दन से वह तेरे, प्रबल शत्रु को हरवा दे।

मंत्र- तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धो सुनूः सत्यस्य युवाजम्। अद्रोघवाचं सुशेवम्।।२।।
काव्यार्थ- **गीत**

करो उस ईश्वर का गुणगान।
जो अपने भक्तों को करता सुख भरपूर प्रदान।।
जो भवसागर बीच सत्य की सदा प्रेरणा देता,
सदा तरूण रहता, भक्तों के कष्ट सभी हर लेता,
हिंसा रहित वेद-वाणी से देता सबको ज्ञान।।

मंत्र- स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि उभे सुष्टुती सुगातवे।।३।।
काव्यार्थ- **सवैया**

वह जो कि प्रकाश स्वरूप रहा,
सबको नित प्रेर प्रकाश भरे;
नित ही अपने शरणागत में,
शुभ आतम-शक्ति प्रकाम भरे।
हम सायं प्रातः सुवाणि सदा,
तद् स्तुति गान प्रधान करें;

अरू वह इस हेतु हमें नित ही,
अक्षय सुख-राशि प्रदान करे।।

सूक्त २

मंत्र- इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावतः। स्तोतुर्यो वचः शृणवद्धवं च मे।।१।।

काव्यार्थ-

हे भिन्न-भिन्न ऋतुओं अनुकूल यज्ञ करते,
हे याज्ञिकों! जो प्रभु है परमेश्वर्यवान;
उसके लिये निचोड़ो तुम तत्व-ज्ञान अमृत,
उसको भली प्रकार शोधों, करो विहान;
हम सब ही स्तुतिकर्ताओं के वचन को सुनता,
एवं पुकार सुनता, प्रभुवर दयानिधान।

मंत्र- आ यं विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः। विरप्शिन्वि मृधो जहि रक्षस्विनीः।।२।।

मंत्र- सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे। युवा जेतेशानः स पुष्टुतः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रभु! तुझमें आकर रहें बहु ऐश्वर्य विशेष।
यथा अन्न के वृक्ष में पक्षी करें प्रवेश।।
वह तू महनीय गुणी धारक अतुल प्रकाश।
असुर वृत्ति अरि वर्ग का कर नाना विधि नाश।।

काव्यार्थ- **दोहा**

व्रजधारी, ऐश्वर्य के रक्षक प्रभु के हेतु।
विज्ञ! निचोड़ो तुम सदा अमृत रस है जेतु।।
महाबली, विजयी, युवा वह प्रभुवर आदित्य।
स्तुतियां पाता रहा है जन-जन से नित्य।।

सूक्त ३

मंत्र- पातं न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरूतः। अपां नापान्सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरूत द्यौः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विद्युत् अरू वायु सुखद निज रक्षा को होय।
प्रकृति अदीन, विज्ञ जन होवें रक्षक दोय।।
जो न गिराती जीवों को वह ऊर्जा हितकार।
अरू सातों सागर महत् रक्षक होंय हमार।।
ज्योतिमान बुद्धि सतत रक्षक बनकर सोय।
तथा सर्वव्यापक प्रभु रक्षा करता होय।।

मंत्र -पातां नो धावापृथिवी अभिष्टये पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः। पातु नो देवी सुभगा सरस्वती पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हम सब जन की अभीष्ट सिद्धि के लिये,
रक्षक गुणों को सूर्य, पृथिवी गहा करें;
मेघ अरू जल हमें कष्ट से बचायें सदा,
नित्य ही विपत्तियों के भक्षक रहा करें।
श्रेष्ठ ऐश्वर्यदाता वेद-विद्या की देवी,
रक्षणा के हेतु नित वाणी में बहा करें,
रक्षा में सदैव रहे अग्नि सुखदायक औ-
उसके समस्त गुण रक्षक रहा करें।।

मंत्र- पातां नो देवाश्विना शुभस्पती उषासानक्तोत न उरूष्यताम्। अपां नपादभिह्रुती गयस्य चिद्देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

व्यवहार-पटु, निज कर्मों में व्याप्ति वाले-
मातु-पितु पालक भी रक्षक रहा करें;
अरू जीव को जगाने, नींद में सुलाने वाली,
उषा रात्रि संकटों की भक्षक रहा करें।
जीवों को गिराता नहीं जो समर्थ परमेश,
विश्वकर्मा, ज्योति-दा सुरक्षक रहा करें;
घर की समस्त दुर वस्था को दूर कर,
प्रत्येक भांति सुख-वर्धक रहा करें।।

सूक्त ४

मंत्र- त्वष्टा में दैवयं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः। पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः।।१।।

काव्यार्थ- कवित्त

वह अविनाशी ब्रह्म सबका बनाने वाला,
जो कि ब्रह्माण्ड रच रक्षण दिया करे,
निर्माण करता जो अरू सींचता है सदा,
जो कि सर्वव्यापक हो सबमें ठिया करे।
वह मम पुत्रों अरू भ्राताओं सहिल, मम-
देव-हित कारक वचन में हिया करें,
अरू हम सबके ही सर्वदा अजेय औ-
दयालु बल की सदैव रक्षणा किया करे।।

मंत्र- अंशो भगो वरूणो मित्रो अयंमादितिः पान्तु मरूतः। अप तस्य द्वेषो गमेद भिह्रु तो यावयच्छत्रुमन्तितम्।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

मित्र, अंश, भग, अर्यमा अदिति, मरूत षट् देव।
मम रक्षण की यह सभी रंच न छोड़ें टेव।।
कुटिल, हिंस्र की दुष्टता को कर देवें चूर।
तथा निकट आये अरि को कर देवें दूर।।

मंत्र- धिये समश्विना प्रावतं न उरूष्या ण उरूज्मन्नप्रयुच्छन्। द्यौ३ष्पितर्यावय दुच्छुना या।।३।।

काव्यार्थ- प्रार्थना

हे मातु-पितु हमारे! सद्बुद्धि हित हमारी,
मिलकर भली प्रकार रक्षा सदैव करिये।
विस्तीर्ण गति के धारक परमात्म-देव प्यारे,
बिन चूक के, हमारी रक्षा का भार धरिये।
द्युलोक के हे पालक परमेश्वर! हमारी-
दुर्गति को दूर करिये, विपदायें सारी हरिये।

सूक्त ५

मंत्र- उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत। समेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहुं कृधि।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

घृत आहुति पा, होती ज्यों, अग्नि तेजवान।
वैसे ही प्रभु! आप हैं अतुल तेज की खान।।
प्रभु! इस नर को, कीजिये अतुल तेज से युक्त।
अधिक-अधिक ऊंचा उठा करो भयों से मुक्त।।

मंत्र- इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद्वशी। रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नथ।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

परमैश्वर्य युत प्रभो हे मेरे जगदीश।।
अधिक-अधिक ऊंचा उठा इस नर को जग बीच।।
प्रभुवर! इसको दीजिए धन अरू पुष्टि अजेय।
यह स्वजनों के बीच में सबको वश कर लेय।।
इसे दीर्घ जीवन मिले दुःख को रखे विदार।
इसको वृद्धावस्था तक सुखपूर्वक बैठार।।

मंत्र- यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धयात्वम्। तस्मैं सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मण्डस्पतिः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अग्नि रूप प्रभु! जिस पुरूष के घर हम सब लोग।
लेन-देन व्यवहार को करते, हरते सोग।।
तू इसको आगे बढ़ा अरू ऐश्वर्यवान्।
तथावेद-रक्षक, करें तत् प्रशस्ति का गान।।

सूक्त ६

मंत्र- यो३स्मान्ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते। सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे रक्षक ब्रह्माण्ड के कर मम हित तत नाश।
मेरे पतन की चाह जिस नास्तिक हृदयाकाश।।
प्रभु! करते जो तत्व का मन्थन ज्ञानी लोग।
वह पाते तुझसे सदा ही आदर का भोग।।

मंत्र- यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति। वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अगर म्लेच्छ कोई, तथा सजातीय नर नीच।
हमको रखना चाहता विपद दासता बीच।।
प्रभो! महत् ऐश्वर्य अरू धारे महत् प्रकाश।
बड़ा ज्योतिमय सूर्य ज्यों करे अंध का नाश।।
वैसे लेकर आप निज वध-साधन विकराल।
उसका बल नीचे गिरा दीजेगा तत्काल।।

सूक्त ७

मंत्र- येन सोमादितिः यथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः। तेना नोऽवसा गहि।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जिस पथ से यह सूर्य औ पृथिवी आदि समस्त।
द्रोह हीन बन परस्पर चलते रहते व्यस्त।।
प्रभो! महत् ऐश्वर्यमय निज रक्षा के साथ।
उस पथ से वह प्राप्त हों हमको, कहते गाथ।।

मंत्र- येन सोम साहन्त्यासुरान्रन्धयासि नः। तेना नो अधि वोचत।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विजयी शक्ति युक्त हे वैभवधारी ईश।
हम हित असुर शक्ति तू रख देता है पीस।।
जिस विधि से तू असुरों का नित करता है नाश।
उस विधि से हम हेतु तू कर आशीष प्रकाश।।

मंत्र- येन देवा असुराणामोजांस्यवृणीध्वम्। तेना नः शर्मयच्छत।।३।।

काव्यार्थ-

विजयी देवताओं से - **दोहा**

जिस शक्ति से असुर बल तुम देते हो रोक।
उसी शक्ति से तुम हमें सुख का दो आलोक।।

सूक्त ८

मंत्र- यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं पषिस्वजे। एव परिष्वजस्व मां यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः।।१।।

काव्यार्थ-

जैसे कि वृक्ष के चारो ओर बेल लिपटे,
वैसे तू लिपट मुझसे बनकर के बेल डाली,
जिससे किया करे तू मेरी ही कामना, औ-
मुझसे बने न किंचित भी दूर होने वाली।

मंत्र- यथा सुपर्णः प्रपतन्पक्षौनिहिन्ति भूम्याम्। एवा नि हन्मि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः।।२।।

काव्यार्थ-

उड़ने को हुआ पक्षी भू पर जमाता डैने,
वैसे मैं अपने मन को तुझमे जमाता आली;
जिससे किया करे तू मेरी ही कामना, औ
मुझसे बने न किंचित भी दूर होने वाली।

मंत्र- यथेमे द्यावापृथिवी सद्यः पर्येति सूर्यः एवा पर्येमि ते मनोयथामां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः।।३।।

काव्यार्थ-

ज्यों सूर्य तेज व्यापे द्रुत भू आकाश बीच
मन त्यों ही तुझमें अपना व्यापित किया मराली;
जिससे किया करे तू मेरी ही कामना, औ-
मुझसे बने न किंचित भी दूर जाने वाली।

सूक्त ९

मंत्र- वांच्छ मे तन्वं १पादौ वान्छाक्ष्यौ३वान्छ सक्थ्यौ। अक्ष्यौ वृष्ण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु।।१।।

मंत्र- मम त्वा दोषणिश्रियं कृणोमिहृदयश्रिषम्। यथा मम क्रताबसो मम चित्तमुपायसि।।२।।

कवित्त

चाहकर, मेरे तन पैरों दोनों नेत्रों की,
मन को सदैव भर कामना प्रकाम से;
चाह लिये ऐश्वर्यवान् नर की, तेरी दो-
आंखें, केश तुझको सुखायें शुभ काम से।
अपनी भुजाओं पर आश्रित तुझे मैं करूं
धरूं उर बीच तुझे आश्रित के नाम से,
जिससे तू मेरे कर्म और बुद्धि बीच रहे,
मेरे चित्त पहुंचे सदैव प्रातः शाम से।।

मंत्र- यासां नाभिरारेहणं हृदि संवननं कृतम्। गावो घृतस्य मातरोऽमूं सं नानयन्तु मे।।३।।

काव्यार्थ-

दोहा

जिस पत्नी-उर प्रेम की सेना पलती होय।
जिसके मिलने से अतुल आनन्द मिलता मोय।
जो गौएं दे दूध धृत वंचित रहे न कोय।
वह मम संग उस पत्नी का मिलन करातीं होय।।

सूक्त १०

मंत्र- पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्योऽग्नयेऽधिपतये स्वाहा।।१।।
मंत्र- प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेऽधिपतये स्वाहा।।२।।
मंत्र- दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा।।३।।

काव्यार्थ-

कवित्त

हम पृथिवी, वनस्पति, श्रवण-शक्ति हेतु,
करते हैं अधिपति अग्नि की स्तुति;
प्राण, अन्तरिक्ष, अन्न आदिक पदार्थों के-
हेतु अधिपति वायु मगनी की स्तुति।
दृष्टि-शक्ति और नक्षत्रों के लिये, प्रकाश-
अधिपति सूर्य की हमारी शुभ स्तुति;

करते हैं इनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ हम,
स्तुति के कर्म में न रंच रखाते त्रुटि।।

सूक्त ११

मंत्र- शमीमश्वात्थ आरूदस्त्र पुंसुवनं कृतम्। तदै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वा भरामसि।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जब सबलों में थिर पुरूष धारक शक्ति गूढ़।
शान्त स्वभाव नारी प्रति हो चुकता आरूढ़।।
कर्म पुंसवन उस घड़ी होता है सम्पन्न।
पुत्र रत्न इस कर्म से होता है उत्पन्न।।
हम कल्याणी नारियों में पहुंचा तत् कर्म।
पालन करवाते सदा उनसे नारी धर्म।।

मंत्र- पुंसि वै रेतो भवति तत्स्त्रियामनु ष्षिच्यते। तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पुरूषों में पुरूषत्व का द्योतक वीर्य कहाय।
स्त्री में अनुकूल विधि जिसको सींचा जाय।
संतति पाने हेतु है यह ही कर्म उपाय।
प्रजापति परमेश ने जिसको दिया बनाय।।

मंत्र- प्रजापतिरनुमतिः सिनी वाल्यऽचीक्लृपत्। स्त्रैषूयमन्यत्र दधत्पुमांसमु दधदिह।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अनुकूल मति, अन्नमय जन-पालक जो शक्ति।
ऐसे प्रभु ने प्रदानी संतानोत्पादक शक्ति।।
स्त्री-रज की जिस समय प्रभू अधिकता पाय।
कन्या-गर्भ नारि में स्थापित कर जाय।
पुरूष-वीर्य की अधिकता जब होती बत्तीस।
पुत्र नारि के गर्भ में जनता है जगदीश।।

सूक्त १२

मंत्र- परिद्यामिव सूर्योऽहीनां जनिमागमम् रात्री जगदिवान्यद्धंसात्तेना ते वारये विषम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ज्यों द्यु-लोक जानता सूर्य, उसी प्रकार।
जन्म-वृत्त मैं सर्पों का जानूं भली प्रकार।।
यथा सूर्य से भिन्न जग करती रात्रि अदृष्ट।
त्यों मैं तेरा विष करूं निष्प्रभावी, निकृष्ट।।

मंत्र- यद् ब्रह्मभिर्यदृविषामिर्यद्देवैर्विदितं पुरा। यम्द्भूतं भव्यमासन्वत्तेना ते वारये विषम्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ऋषियों, देवों, ब्राह्मणो ने जो ज्ञान प्रगाढ़।
मेधा-बल से पूर्व में जाना भली प्रकार।।
भूत, भविष्य में बना रहता जो भरपूर।
उसी ज्ञान से विष तेरा करता हूं मैं दूर।।

मंत्र- मध्वा पृंचे नद्य१ः पर्वता गिरयोमधु। मधुपरूष्णी शीपाला शमास्ने अस्तु शं हृदे।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अमृत द्वारा मैं तुझे सिंचित करूं प्रकाम।
सरिता, पर्वत, गिरि सभी अमृत करें प्रदान।।
अमृत होवे परूष्णी शीपाल सुखादेतु।
तब मुख हित हो शांति, शांति हृदय के हेतु।।

(नोट-परूष्णी तथा शीपाल औषधियों के नाम हैं)

सूक्त १३

मंत्र- नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः। अधो ये विश्यानां वधास्तेभ्यो मृत्यो नमाऽस्तुते।।१।।

मंत्र- नमस्ते अधिवाकाय परावाकाय ते नमः। सुत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं नमः।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दिव्यगुणी ब्राह्मणों के शस्त्रों को नमस्कार,
अरू वीर क्षत्रियों के शस्त्रों को नमन है;
धनवान वैश्यो के शस्त्रो को नमस्कार,
अरू बलवान मृत्यु तुझको नमन है।
तेरे अनुग्रह के वचन को नमस्कार
वचन अतीव प्रतिकूल को नमन है;
मृत्यु! तेरी उत्तम मति को है नमस्कार,
तेरी दुर्भति के लिये भी यह नमन है।।

मंत्र- नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः। नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

नमस्कार तव पीर के दाता रोगों हेतु।
नमस्कार उन सबन को वैद्य रहे हैं जेतु।।
नमस्कार है मृत्यु के मूल कारणों हेतु।
तथा ब्राह्मणों को नमन पार लगावन सेतु।।

सूक्त १४

मंत्र- हस्थि संस्र परूसंसमोस्थितं हृदयामयम्। बलासं सर्वंनाशयाङगेष्ठाश्च पर्वसु।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

नर शरीर के बीच जो रहता है हृदरोग।
अरू सब बल देता गिरा ऐसा जो क्षय रोग।।
गला देता जो हड्डियां शिथिल जोड़कर जाय।
अंग-अंग जो बैठता पर्व पर्व को खाय।।
हे ज्ञानी सद्वैद्य! हे धारक औषध-पाश।
उस नर-शत्रु रोग का कर दे पूर्ण विनाश।।

मंत्र- निर्बला सं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा। छिनद्भ्यस्य बन्धनं मूलभूर्वार्वाइन।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मैं समर्थ वैद्य, करता हूं रोग का विनाश,
रोग-ग्रस्त जन को सदैव ही संभालता;
जिस भांति राजा द्वारा दूर किया जाता उसे,
चोरी करता जो दुष्ट धारे विकरालता।
वैसे रोगी के शरीर बीच रहे क्षय रोग,
को उखाड़ नष्ट करता मैं, नहीं टालता;
जैसे ककड़ी की जड़ को है काट देते, वैसे-
बन्धन को इस रोग के मैं काट डालता।।

मंत्र- निर्बला सेतूः प्रपताशुङ्गः शिशुको यथा। अथो इटइव हायनोप द्राह्यवी रहा।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

शीघ्र भाग क्षय रोग तू बल नाशन में पूर।
छोटा बछड़ा भागकर जैसे जाता दूर।।
वीर विनाशन में विवश भाग, न रूक इस ठाय।
जैसे प्रतिवर्ष उगे घास, नष्ट हो जाय।।

सूक्त १५

मंत्र- उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः। उपस्तिरस्तु सो३स्माकं यो अस्मा अभिदासति।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे प्रभु! सब औषधियों में सर्व-श्रेष्ठ प्राचीन।
जग की उत्तम वस्तुएं सब तेरे आधीन।।
दास बनाकर जो हमें चाहे हमरा नाश।
उसे करें आधीन हम देवें बहु दुःख राश।।

मंत्र- सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति। तेषा सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो अरि दल निज बन्धु संग या बिन अपने बन्धु।
हमें सताकर नित्य ही देवे दुःख का सिन्धु।।

मेरा उनके बीच हो अति उत्तम स्थान।
जैसे श्रेष्ठ पदार्थों में है लक्ष्मी का मान।।

मंत्र- यथा सोम ओषधीना मुत्तमो हविषां कृतंः तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

ज्यो औषधियों बीच है उत्तम औषधि सोम।
ग्राह्य पदार्थों में यथा वह ही शुभ गुण तोम।।
आश्रय प्रापक लक्ष्मी ज्यो शुभ वस्तु बीच।
वैसे होऊं स्वयं को सद्गुण-जल से सींच।।

सूक्त १६

मंत्र- आबयो अनायो असस्त उग्र आबयो। आ ते करम्भमद्मसि।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

हे गतिमय गतिहीन प्रभु! हे दाता सुख-शांति।
कान्तिपूर्ण! धारण किये चारो ओर कान्ति।।
तेरा रस अति उग्र है नाशक तन-मन रोग।
उस रस का पेय बना हम करते हैं भोग।।

मंत्र- विहल्हो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता। स हिन त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

पालक गुण तेरा प्रभो हे निधनी का निद्ध।
जो कि रहा आश्चर्य का दाता नाम प्रसिद्ध।।
जनन कर्मतेरा प्रभो करता हर्ष प्रदान।
रक्षण, करता आत्मा की रक्षा हर काल।।

मंत्र- तौविलिकेऽवेलयावायमैलब ऐलयीत्। बभ्रूच बभ्रूकर्णश्चापेहि निराल।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

इन पृथिवीस्थ पदार्थों में व्यापक प्रभु मोर।
तूने बढ़ाया ऋषिजनों को आगे की ओर।।
तद्रीति आनन्द-दा प्यारे प्रभुवर मोर।
हमें प्रगति पथ पर बढ़ा नित आगे की ओर।।

नित मिल पोषक रूप में प्रभुवर सर्वव्याप्त।
अरू पतवार रूप में नित्य हमें हो प्राप्त।।

मंत्र- अलसालासि पूर्वा सिलाँ जालास्युत्तरा। नीलागलसाला ।।४।।

काव्यार्थ- दोहा

प्रभु! प्रधान तू शक्ति है धरे दिव्य आलोक।
सदा सदा ही आलसी जन को देती रोक।।
तू कण-कण को प्रकटने वाली है इक शक्ति।
तुझसे प्रेरित व्यक्ति हो करता है तव भक्ति।।
यह ब्रह्माण्ड जो कि घर सब लोकों का एक।
उसमें तू व्यापक तथा उसकी शक्ति, टेक।।

सूक्त १७

मंत्र- यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे। एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

अति विशाल यह पृथिवी ज्यों अपने गर्भ बीच।
पंच महाभूत किये हैं धारण सद्रीत।।
वैसे ही अनुकूलता से सुन्दर सन्तान।
जनने हित तव वीच यह गर्भ पाय स्थान।।

मंत्र- यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान्वनस्पतीन्। एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सतुंसवितवे।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

जैसे नाना वनस्पति वृक्ष आदि सप्रीति।
यह विशाल पृथिवी किये हैं धारण सद्रीति।।
वैसे ही अनुकूलता से सुन्दर सन्तान।
जनने हित तव वीच यह गर्भ पाय स्थान।।

मंत्र- यथयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान्गिरीन्। एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

जैसे बहु पर्वत तथा गिरि समूह सप्रीति।
यह विशाल पृथिवी किये हैं धारण सद् रीति।।

वैसे ही अनुकूलता से सुन्दर सन्तान।
अपने हित तव वीच यह गर्भ पाय स्थान।।

मंत्र- यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत्। एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतं सवितवे।।४।।

काव्यार्थ- दोहा

विविध भांति स्थित बने जग को ज्यों सप्रीति।
यह विशाल पृथिवी किये है धारण शुभ रीति।।
वैसे ही अनूकूलता से सुन्दर सन्तान।
जनने हित तव वीच यह गर्भ पाय स्थान।।

सूक्त १८

मंत्र- ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमा प्रथमस्या उतापशम। अग्निं हृदय्यं१ शोकं तं ते निर्वापयामसि।।१

काव्यार्थ- दोहा

तव ईर्ष्या की प्रथम अरू आगे की गति दृष्ट।
अरू उरस्थ शोकाग्नि को करते हैं हम नष्ट।।

मंत्र- यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा। यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योमृतं मनः।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

ज्यों भूमि निज कांध, निज मरा हुआ मन ढोय।
अथवा मरे हुए से भी अधिक मरे मन होय।।
जैसे मरने वाला नर अपने मन को खोय।
वैसे ही ईष्यालु का मरा हुआ मन होय।।

मंत्र- अदो यत्तेहृदि श्रितं मनस्कं पतयिसष्णुकम्। ततस्तईर्ष्यां मुंचामि निरूष्माणं दृतेरिव।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

जो मन रहता है सदा तेरे हृदय के बीच।
पतित न होता है कभी रहता कभी न नीच।।
उससे तेरी ईर्ष्या बाहर करूं सकाल।
ज्यों वायु को धौंकनी बाहर देय निकाल।।

सूक्त १९

मंत्र- पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया। पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा।।१।।

मंत्र- पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे। अथो अरिष्टतातये।।२।।

काव्यार्थ- **सवैया**

मुझको करो पावन देव जनो,
धिय धारक आप पवित्र करें;
सब प्राणी प्रदाने सुपावनता,
प्रभु पावन पूत चरित्र करें।
प्रभु पावनता के प्रदाता बड़े,
मुझ में बल, वीर्य विचित्र भरें;
शुभ कर्म, सुदीरध आयु तथा
कल्याण के हेतु पवित्र करें।।

मंत्र- उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च। अस्मान् पुनीहि चक्षसे।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभु जी! हमें करिये आप पवित्र।
जिससे दर्शन करें आपका बनकर गहरे मित्र।।
सबके सत्कर्मों के प्रेरक, दानशील प्रभुवर जी,
शुभाचरण में, ऐश्वर्यों में, चले आपकी मरजी;
दोनों ही द्वारा प्रभु हमरा, पावन करो चरित्र।।

सूक्त २०

मंत्र- अग्नेरिवास्य दहत एति सुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्नपायति। अन्यमस्मदिच्छु कं चिद्व्रतस्तपुर्वधाय नमाअस्तु तक्मने।।१।।

काव्यार्थ-

ज्वर व्यापता दहकती बली अग्नि-ताप सम,
अरू भागता उन्मत्त सम विलापता हुआ,
व्रतहीन, तप्त अस्त्रधारी ज्वर को नमन हो,
हमको तजे, अन्यों को फिरे टापता हुआ।

मंत्र- नमो रूद्राय नमोअस्तु तक्मने नामो राज्ञे वरूणाय त्विषीमते। नमो दिवे नमः पृथिव्यै नम औषधीभ्यः।।२।।

काव्यार्थ-

दुखः नाशकर्ता वैद्य को पहुंचे नमन तथा-
ज्वर को भी नमन होवे, जो जीवन दुःखी करे;
सबके ही राजा ज्योतिमान् श्रेष्ठ प्रभु को-
होवे नमन जो भक्तों को नित ही सुखी करे;
तेजस्वी सूर्य, पृथिवी को नमन व औषधि;
को नमन जो कि रोग को अधोमुखी करे।

मंत्र- अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि। तस्मै तेऽरूणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने।।३।।

काव्यार्थ-

सब रूपों को पीला तथा निस्तेज बनाता,
यह तू जो बहुत शोक बीच डालने वाला;
उस लाल, भूरे और बनैले रहे तुझे,
हे ज्वर! हैं नमस्कार, तू है सालने वाला।

सूक्त २१

मंत्र- इमा यास्तिस्र पृथिवीस्तासां ह भूमिरूत्तमा। तासामधित्वचो अहं भेषजं समु जग्रभम्।।१।।

काव्यार्थ-

द्युलोक, पृथिवी लोक अरू अन्तरिक्ष लोक-
नामक अतीव विस्तृत त्रिलोक दीखते है;
उनमें सभी का आधार ब्रह्म सर्व उत्तम,
उससे ही रहा करते सब लोक ठीक से है;
उस ब्रह्म को यथावत् मैंने ग्रहण किया है,
उस भय के विनाशक से भय सर्व झीखते हैं।

मंत्र- श्रेष्ठमसि भेषजां वसिष्ठ वीरूधानाम्। सोमो भगइव यामोषु देवेषु वरूणो यथा।।२।।

काव्यार्थ-

हे ब्रह्म-भय-विनाशक जग के पदार्थ एवं
उगती प्रजाओं का यह जितना भी अहाता है,
तू उनमें सर्वश्रेष्ठ अरू तारकों के बीच,
शशि ऐश्वर्यवान् को तू ही डहाता है,
तू ही है सर्वश्रेष्ठ जैसे प्रकाशमान-
जग के पदार्थों में नभ-सूर्य कहाता है।

मंत्र- रेवतीरनाधृषः सिषासवः सिषासथ। उतस्थ केशदृंहणींरथो ह केशवर्धनीः।।३।।

काव्यार्थ-

अत्यन्त ही सुदृढ़ता से ज्योतियों की धारक,
ज्योति बढ़ाने वाली, ज्योति जुड़ी प्रजाओं;
तुम दान देने वाली, धन वाली कहाती हो,
सेवा की भावना की दिशि में मुड़ी प्रजाओं;
तुम दान और सेवा करने को नित्य चाहो,
हिंसा कभी न करने वाली गुणी प्रजाओं।

सूक्त २२

मंत्र- कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्यतति। न आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्यूदुः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

रवि-किरणें जो होती है अति उत्तम गतिशील।
अरू रहतीं रस खींचने में अत्यन्त हठील।।
पवन द्वारा जल ओढ़, जा गमन थली आकाश।
रवि-मण्डल अति ज्योतिमय पर जा चढ़े सकाश।।
फिर आकाश जल सदन से वह नीचे आय।
पृथिवी का सिंचन करें जल से बहु उमगाय।।

मंत्र- पयस्वीः कृणुथाप ओषधीः शिवा यदेजथा मरूतो रूक्मवक्षसः। ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिवन्त यत्रा नरो मरूतः सिंचथा मधु।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वायु-गणों! तव हृदय है अतुल तेज से पूर्ण।
जग को जल से सींच कर संकट हरते तूर्ण।।
वायु-गणों तुम चलते जब वेग पूर्ण गति लाय।
तब जल औषधियाँ सकल सरस हितू हो जांय।।
हे नायक वायु गणों जहां तुम सीचों धाय।
वहां अन्न ऊर्जा भरा सुमति उपजती जाय।।

मंत्र- उदप्रतो मरूतस्तां इयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति। एजाति ग्लहा कन्ये वतुन्नैरूं तुन्दाना पत्येव जाया।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जल-प्रेषक वायु-गणों वह वर्षा दो भेज।
जिससे भर कर निम्न थल बन जॉय सुख सेज।।
सबके उर में मेघों का गर्जन कम्पना लाय।
ज्यों दुखिता कन्या, पिता को कंपित कर जाय।।
यह शब्द यों मेघों को प्रेरण दे अधिकाय।
ज्यों पत्नी गृहस्थी का जग प्रेरित कर जाय।।

सूक्त २३

मंत्र- सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं व सुस्रुषीः। वरेण्यक्रतुरहमपो देवी रूप ह्ये।।१।।

काव्यार्थ-

विस्तृत व्यापक रहे ब्रह्म की नाना व्यापक शक्ति रहें।
दिन-रात्रि जल-धाराओं में बहें न किंचित त्यक्ति गहें।।
श्रेष्ठ कर्म के कर्ता मेरे मन की यह विज्ञप्ति रहे।
मेरे पास रहें वह, मेरी उनमें नित अनुरक्ति रहे।।

मंत्र- ओता आपः कर्मण्या मुंचन्त्वितः प्रणीतये। सद्यः कृण्वन्त्वेतवे।।२।।

काव्यार्थ-

परमेश्वर की उत्तमता से बुनी हुई बहु शक्ति रहे।
व्यापक रह कर कर्मकुशलता की जिनमें विज्ञप्ति रहे।।

तद्द्वारा शुभ नीति हित हम इस पीड़ा से त्यक्ति गहें।
प्राप्त कराएं हमें प्रगति वह हम उनमें निज भक्ति चहें।।

मंत्र- देवस्य सवितुः सवे कर्म कृणवन्तु मानुशषाः। सं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवा।।३।।

काव्यार्थ-

वह प्रकाशमय प्रभु सभी का प्रेरक सदा कहाता है।
तत् शासन में रहें, सभी वह दुःख के दुर्ग ढहाता है।।
पुरूषारथ को करें, तभी वह शत उपलब्धि गहाता है।
प्राप्त करें शिव अन्नादिक का जितना रहा अहाता है।।

सूक्त २४

मंत्र- हिमवतः प्र स्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः आपो। ह मह्यं तद्देवीर्ददन्हृद्द्योत भेषजम्!।।१।।

मंत्र- यन्मे अक्षयोरादिद्योत पाष्णर्योः प्रपदोश्चयत् आपस्तत्सर्वं निष्करन्भिषजां सुभिषक्तमाः।।२।।

मंत्र सिन्धुपत्नी सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्यश्स्थन। दत्त नस्तस्य भेशजं तेना वो भुनजामहै।।३।।

काव्यार्थ-

प्रथम अर्थ

ईश्वर के गुणों का उपदेश

हे निज महिमा साथ सदा रहने वाले मानव! सुन-
जो व्यापक शक्तियाँ स्रवित होतीं गतिशील प्रभु से;
उन सबका संगम होता नित बहते हुए जगत से,
मुझको हृदय-ताप-हर औषधि वह देतीं बिन चूके।
जो दुःख प्रकट हुआ है मेरे दोनों ही नेत्रों में,
तथा ऐड़ियों दोनों, पावों के दोनों पंजों में;
वैद्यों में अति पूज्य वैद्य सम प्रभु की सभी शक्तियां,
सब दुख नाशन हित रहती हैं साथ मेरे रंजों में।
बहने वाले जग की पालक अरू उसकी शुभ शासक,
जो तुम प्रभू शक्तियों, प्रभु की नित स्तुति करती हो;

इस प्रकार की, हमको हिंसक रोगों की औषधि दो,
उस औषधि से हम गुण भोगें, जिनको तुम रखती हों।

द्वितीय अर्थ

जल के गुणों का उपदेश

हे निज महिमा साथ सदा रहने वाले मानव! सुन-
हिम वाले पर्वत से जो जल-धाराएं बहती हैं;
उन सबका संगम सागर के साथ हुआ करता है,
मुझको औषध देतीं, जिनसे हृदय-जलन ढहती है।
जो दुख प्रकट हुआ है मेरे दोनां ही नेत्रों में
तथा ऐड़ियां दोनों, पाँवों के दानों पंजों में;
वैद्यों में अति पूज्य वैद्य सभ जल, अति ही गुणकारी,
हरने को वह कष्ट, साथ रहता मेरे रंजों में।
बहने वाले सागर की पालक, तद् शोभा वर्धक,
जो तुम सब नदियों निज में गुणकारी जल रखती हो;
तद् द्वारा हमको हिंसक रोगों की औषधि दो,
हम तव भोग करें, धारण में कभी नहीं थकती हो।

सूक्त २५

मंत्र- पंच च याः पंचाशच्च संथन्ति मन्या अभि। इतस्ताः सर्वानश्चन्तु वाका अपचिता मिव।।१।।

मंत्र- सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि।इतस्ताः सर्वा नश्चयन्तु वाका अपचितामिव।।२।।

मंत्र- नव च याः नवतिश्च संयन्तिस्कन्ध्या। अभि। इतस्ताः सवा 'नश्चन्तु वाका अपचितामिव।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

पांच औ पचास व्याधि जो बनी गले के भाग,
जो कि सब ओर से प्रदानती हैं कष्ट को;
सात और सत्तर जो व्याधि कण्ठ भाग बनी,
जो कि सब ओर से प्रदानती है कष्ट को।
कन्धे नाड़ियों में बनी नव और नब्बे व्याधि,
जो कि सब ओर से प्रदानती है कष्ट को;

जैसे अज्ञानियों के होते हैं वचन नष्ट,
वैसे यहां से ये व्याधि अविलम्ब नष्ट हों।।

सूक्त २६

मंत्र- अव मा पाप्मन्त्सृज वशी सन्मृडयासि नः आ मा भद्रय लोके पाप्मन्धेह्य विह्रुतम।।१।।

मंत्र- यो नः पामन्न जहासि तमु नत्वा जहोमिवयम् पथामनु यावर्तनेऽन्यं पाप्मानु पद्यताम्।।२।।

काव्यार्थ- कवित्त

पापी हेविचार! जो तू लगता हमें है, हमें-
वशीभूत करता व सुख को प्रदानता;
ऐसे अति पापी हे विचार! हमको तू छोड़,
हम पर आनन्द का लोक रख तानता।
तू जो नहीं छोड़ता हमें है, हम छोड़ें तुझे,
हमकों सदैव रहे पीर से अयानता,
मार्गों की घुवाव पर हमको तू छोड़, तथा-
किसी दूसरे से मिल, जिसको तू जानता।।

मंत्र- अन्यत्रास्मिन्नयुऽच्यतु सहस्राक्षोअमर्त्यः। यं द्वेषाम तमृच्छतु यमु द्विष्मस्तमिज्जहि।।३।।

काव्यार्थ- कवित्त

पापी हे विचार! तू सहस्रों सहस्रों दोष-
निज दृष्टि बीच रखाता है, नहीं चूकता;
करता नहीं है रंच मात्र भी जनों का हित,
तेरा मन उनको प्रसन्न देख दूखाता।
कर तू प्रयाण, हमसे जो भिन्न स्थान,
रख तू हमारे द्वेषियों के घर फूंकता;
जिनसे हमें है द्वेष, उनके ही पास रह,
उनके सुखों को तू सदैव रख सूखाता।।

सूक्त २७

मंत्र- देवाः कपोतइषितो यदिच्छन्दूतो निार्ऋत्या इदमाजगाम। तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।।२।।

मंत्र- शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहं नः। अग्निर्हिविप्रोजुषतां हविर्नःपरि हेतिः पाक्षिणी नो वृणक्तु।।२।।

मंत्र- हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने। शिवो गोभ्य उत पुरूषेभ्यो नो अस्तु मा नो देवा इह हिसीत्कपोतः।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

पूजिये इसे आप सब देव।
इस थल आया पास हमारे, चल कर विज्ञ स्वमेव।।
दूरदर्शी, अति तीव्र बुद्धि जैसे कपोत होता है,
वैसे ही यह ब्रह्म खोजी है, रंच नहीं थोथा है;
प्राप्ति-योग्य अलक्ष्मी की यह, हरता सारी टेव।।
कीजेगा सत्कार कि जिससे मुक्त दुखों से होवें,
करके विद्या प्राप्त, सदा ही सुख की फसलें बोवें;
अपने द्विपद चतुष्पद के हित सर्व-शांति को लेव।।
यह विज्ञ स्तुत्य, समर्थ तथा प्राप्ति के योग्य,
हमको निज गृह सहित रहे शुभ, दान करे आरोग्य,
स्वीकारे यह हवि हमारी, राखे नहीं दुरेव।।
पक्षपात अरू अन्याय हम पूरी तरह भगावें,
तत् कर्मों की चोटें हमको किंचित नहीं दबावें,
व्याप्त सभा अरू सभासदों में विज्ञ उच्च पद लेव।।
हे विद्वानों! स्तुति योग्य यह विद्वान हमारा,
हमें तथा गउओं हित होवे मंगलकारी प्यारा,
हमें यहां पर दुःख न देवे, हमरी नैया खेव।।

सूक्त २८

मंत्र- ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयामः। संलोभयन्तो दुरिता पदानि हित्वा न ऊर्जं प्र पदात्पथिष्ठः।।१।।

मंत्र -परीमेऽग्निमर्षत परीमे गामनेषत। देवेष्वक्रत श्रवः क इमां आ दधर्धति।।२।।

मंत्र- यः प्रथमः प्रबतमामसाद बहुभ्यःपन्थामनुपस्प-शानः योऽस्येशेद्विपदो यश्चतुष्पदस्तस्मै यमांयनमोअस्तु मृत्यवे।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

विज्ञ को अग्र बढ़ाओ आप।
यह स्तुति से अग्र बढ़ाता, सुख से रखता ढाप।।
अति ही शीघ्रगामी विद्वान्, स्तुति योग्य कहाता,
हर्षित होते हुए, सभी दुर्गति के चिन्ह ढहाता;
अन्न और विद्या से तुम भी जग के मेटो शाप।।
आगे-आगे चले विज्ञ यह, विक्रमवान बनाये,
यथा विज्ञ-जन बीच सभी ने यश ऐश्वर्य कमाये;
दे सकता है कौन दुष्ट अब उनको भय, सन्ताप।।
सर्वश्रेष्ठ जो प्रथम पुरूष सबके उपकार हेतु,
प्राप्तव्य शुभ-मार्ग, ढूंढकर आया देने चेतु;
द्विपद चतुष्पद ऊपर देता है स्वामित्व छाप।।
पक्षपात से हीन, न्यायकारी वह पुरूष अकेला,
यह संसार उसी की रचना, उसके ही सब खेला,
मृत्यु नाश के लिए नमन है, उसे मानते बाप।।

सूक्त २६

मंत्र- अमून्हेतिः पत्त्रिणी न्येतु यदुलूको वदति मोघमेतत्। यद्वा कपोतः पदमग्नौकृणोति।।२।।

मंत्र- यौ ते दूतौ निर्ऋृत इदमेतोऽप्रहितौ वा गृहं नः। कपोतोलूकाभ्यामपदं तदस्तु।।२।।

मंत्र- अवैरहत्यायेदमा पपत्यात्सुवीरताया इदरमा ससद्यात्। पराङेव परा वद पराचीमनु संवतम्। यथा यमस्य त्वा गृहेऽरसं प्रतिचाकशानाभूकं प्रतिचाकशान्।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

शुभ गुणों से भरा तीव्र बुद्धि पुरूष,
होता है ज्ञानियों बीच सर्वोपरि।।
श्रेष्ठ विद्वान अधिकारी होता जहां,
वह सभी में सदा ज्ञानमय मति भरे;
उस जगह अंध-आवृत रहे उल्लू सम,
मूर्ख के शब्द निज अर्थ की क्षति करें।

नीचे को गिरने वाली बनी चोट सम,
दुष्करम शत्रुओं की डुबाता तरी।।
हे हितू ईश! तुझमें रहे दोनों गुण,
आते हैं इस हमारे सदन बीच में;
ज्ञान देते जो सत्कर्म दुष्कर्म का,
यह उठाते उसे जो गिरा कीच में।
प्रभु कबूतर व उल्लू सरीखे बने,
उन गुणों से मिटा दे दुखों की घरी।।
स्तुति योग्य अति तीव्र बुद्धि रहा-
विज्ञ यह, सूचना जो कि देता हमें;
वीरों हित आ विराजे, कहे आन कर,
"युद्ध थल में नहीं वीर अपने हने।"
तीव्र बुद्धि पुरूष यह कपोत बना,
ज्ञानियों में झरे श्रेष्ठता की झरी।।
हे उलूक सरीखे रहे मूर्ख अरि!
औंधे मुंह तू रहे, तू न ऊंचा उठे,
तू अधो-संगति ओर रहकर सदा,
दूर रह बात कर, हम न जायें लुटे।
न्यायी-जन, घर से तुझको विलोका करें,
तुझपे आती हुई घोर आपद-घड़ी।।

सूक्त ३०

मंत्र- देवा इमं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः। इन्द्रं आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन्मरूतः सुदानवः।।१।।

मंत्र- यस्ते मदोऽवकेशो विकेशां येनामिहस्यं पुरूषं कृणोषि। आरात्वदन्या वनानि वृक्षि त्वं शमिशतवल्शा वि रोह।।२।।

मंत्र- बहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि। मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्यः शमि।।

काव्यार्थ- **गीत**

ज्ञान-विज्ञान दाता सरस्वती हमें,
सर्व उन्नति प्रसिद्धि प्रदाना करें।।

विज्ञ लोगों ने मधुरस भरा ज्ञान-यव,
वेद-विद्या अधिष्ठात्री मानकर;
बुद्धि की भूमि में बोने के वास्ते,
हल चलाया इसे श्रेष्ठ पहचान कर।
हल के स्वामी थे आचार्य, एवं कृषक-
व्यक्ति पुरूषार्थी, दानी, ज्ञानी खरे।।
शान्तिन्दा हे सरस्वती जो आनन्द तेरा,
धारता है विविध पूत- प्रकाश को;
जिससे तू व्यक्ति को मोद देती विपुल,
मैंने है तज दिया अज्ञता पाश को।
बुद्धि की मोद दाता सरस्वती! प्रकट-
हो विविध भांति, शुभ शाख शतशः धरे।।
हे सरस्वती! विपुल पालना शक्ति युत्,
सत्य-शीला, वृहत् ऐश्वर्य लिये;
शान्ति-दाता, वरण योग्य गुण से बढ़ी,
ज्योति से कर प्रकाशित हमारे हिये।
हमको दे सर्व सुख तू उसी भांति से,
जैसे मां पुत्र को सर्व सुख से भरे।।

सूक्त ३१

मंत्र- अयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः।।१।।
मंत्र- अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः। व्यख्यन्महिषः स्वः।।२।।
मंत्र- त्रिंशद्धामा वि राजति वाक्पतंङगोअशिश्रियत्। प्रति वस्तोरहर्द्युमिः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पृथिवी की उत्पत्ति का कारण है जल, और-
पाल रहा है आदि से इसे सूर्य सिरमौर।।
निज कक्षा में जल सहित पृथिवी सायं-भोर।
अन्तरिक्ष में घूमती सूरज के चहुं ओर।।
करते प्राण-आपन जो उनमें सूरज जोत।
कर संचार प्रवाहती रहती जीवन सोत।।

सूर्य ज्योति तमस को पूरी तरह प्रजार।
आलोकित आकाश को करती विविध प्रकार।।
दिन-रात्रि के तीस जो कहलाते मुहूर्त।
वह सब गतिमय सूर्य से होते हैं स्फूर्त।।
उनमें निज प्रकाश भर करता सूर्य प्रकाश।।
वाणी की भी सूर्य के आश्रय से पहचान।।

सूक्त ३२

मंत्र- अन्तर्दावे जुहुता स्वे३ तद्यातुधानक्षयणं घृतेन। आराद्रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुंप तीतपासि।।१।।

मंत्र- रूद्रो वो ग्रीवा अशरैत्पिशाचाः पृष्ठीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः। वीरूद्वोविश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत्।।२।।

मंत्र- अभयं मित्रावरूणाविहास्तु नोऽर्चिषात्त्रिणो नुदतं प्रतीचः। मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठा विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम्।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

राक्षसो का सदा ही करो नाश तुम।।
विज्ञ जन! तुम प्रदीप्त अवस्था में रह,
ज्ञानपूर्वक करो नाश उनका, कि जो-
पीर देते, सदैव सताते उसे,
जो रहा श्रेष्ठ विद्वान, गुन का कि जो।
अग्निरूप प्रभो! राक्षसो को सभी,
भस्म करके बनाओ उन्हें लाश तुम,
सज्जनों के घरों को न तुम ताप दो,
दो सदा शांति, आनन्द, सुख राश तुम।।
दुख विनाशक रहे सैन्यपति ने सभी-
गर्दनें तोड़ डाली तुम्हारी खलों;
पीर के दायकों, पसलियां भी सभी,
तोड़ डाले तुम्हारी, रूके ना पलों।
शुभ अनन्त रहा जिसका सामर्थ्य है,
जो विविध भांति ज्योतित, जो होती न गुम;
हे पिशाचों! उसी शक्ति परमेश के

वेद द्वारा बंधे हो नियम-पाश तुम।।
हे दिवस-रात्रि! हम हेतु इस विश्व में,
हो अभय सब जगह, भय न होवे कहीं;
शत्रु भक्षक रहे, उनको स्व तेज से,
दूर देओ हटा, वह न पाएं ठहीं।
वह नहीं ज्ञानियों को करें प्राप्त औं-
वह कही भी न पाएं प्रतिष्ठा-कुसुम;
वह परस्पर लड़ें, मरते और मारते,
मृत्यु को प्राप्त कर, शीघ्र हो जाएं गुम।।

सूक्त ३३

मंत्र- यस्येदमा रजो युजस्तुजे जना वनं स्वः। इन्द्रस्य रन्त्यं वृहत्।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

परमेश्वर संयोगकर्ता के बल की नोक।
यह सब प्राणी, सूर्य, जल अरू सारे ही लोक।।
परमेश्वर धारण किये हैं ऐश्वर्य अमोष।
तत् क्रीणा-थल अति बड़ा, समझ सकें ना लोग।।

मंत्र- नाधृष आ दधृषते धृषाणो धषितः शवः। पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नाधृषे शवः।।२।।

काव्यार्थ- कवित्त

जैसे पहले से ही थका हुआ हो कोई शत्रु,
उससे महत् ऐश्वर्यधारी नर का;
कुछ भी न श्लाघनीय बल नष्ट होता कभी,
कुछ भी न यश-साम्राज्य कभी दरका।
वैसे ही पराजित हुआ जो शत्रु युद्ध-क्षेत्र,
उससे न विजयी का बल कभी सरका;
उससे न हार पाया है कभी हराने वाला,
उससे न विजयी हुआ है विषय डर का।।

मंत्र- स नो ददातु तां रयिमुरुं पिशंगसंदृशम्। इन्द्र पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रभुवर है ऐश्वर्यमय नाशक सभी अनर्थ।
सभी जन्मने वालों में सबसे बड़ा समर्थ।।
वह सबका पालक प्रभु सबसे बड़ा महान्।
विस्तृत सोने के सदृश धन को करे प्रदान।।

सूक्त ३४

मंत्र- प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम्। स नः पर्षदति द्विषः।।१।।

काव्यार्थ-

पृथिवी सरीखे सारे ही लोकों बीच उस सा,
बलवान नहीं कोई, उस सा न कोई ज्ञानी;
भरपूर ज्ञान-अग्नि से वह भरा हुआ है,
उस ईश के लिए तू शुभ रीति बोल वाणी।
अन्यायी, कष्ट दाता सारे ही शत्रुओं से,
रख कर के दूर हमको, परिपूर्ण वह बनाये।।

मंत्र- यो रक्षांसि निजर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा। स नः पर्षदति द्विषः।।२।।

काव्यार्थ-

वह तेजपूर्ण ज्ञान की अग्नि से भरा है,
उस जैसा कोई ज्ञानी जग में न दृष्टि आता;
वह तीव्र तेजधारी, रखता है क्रोध भारी,
पापी व दुष्ट जन को वह मार कर गिराता।
अन्यायी कष्टदाता सारे ही शत्रुओं से,
रख करके दूर हमको, परिपूर्ण वह बनाये।।

मंत्र- यः परस्याः परवतस्तिरो धन्वातिरोचते। स नः पर्षदति द्विषः।।३।।

काव्यार्थ-

वह उन थलों में भी है, जो दूर से भी दूर
वह उन थलों में रहकर बिजली सा दमकता है;
उन दूर के थलों से वह ईश, अन्तरिक्ष-
को पार कर सदा ही अत्यन्त चमकता है।

अन्यायी कष्ट दाता सारे ही शत्रुओं से,
रख करके दूर हमको, परिपूर्ण वह बनाये।।

मंत्र- यो विश्वानि विपश्यति भुवना सं च पश्यति। स नः पर्षदति द्विषः।।४।।

काव्यार्थ-

वह अलग अलग देखा करता सभी भुवनों को,
अरू सब मिले जुले भी दृष्टि में उसकी आयें;
अन्यायी कष्टदाता सारे ही शत्रुओं से,
रख करके दूर हमको, परिपूर्ण वह बनाये।।

मंत्र- यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत। स नः पर्षदति द्विषः।।५।।

काव्यार्थ-

शुद्ध स्वभाव, अतुलित ज्ञानाग्नि पूर्ण वह है,
सब लोकों से परे वह निज को प्रकट जनाये;
अन्यायी कष्टदाता सारे ही शत्रुओं से,
रख करके दूर हमको, परिपूर्ण वह बनाये।।

सूक्त ३५

मंत्र - वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु पशवतः अग्निर्नः सुष्टुरूप।।१।।

काव्यार्थ-

हमरी रक्षा हेतु प्रभु नर-नायक सुख रास।
अपने श्रेष्ठ स्थान से आये हमरे पास।।
वह प्रकाश का देव प्रभु ज्योति देवनहार।
करे हमारी श्रेष्ठतम स्तुतियां स्वीकार।।

मंत्र- वैश्वानरो न आगमदिमं यज्ञं सजूरूप। अग्निरूक्थेष्वंहसु।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जग-चालक प्रभु प्रेममय धारक तेज प्रकाश।
आये स्तुति-काल इस पूज्य कर्म के पास।।

मंत्र- वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाक्लृपत्। ऐषु द्युम्नं स्वर्थमत्।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जग-नर-नायक ईश सब ज्ञानी ऋषियों अर्थ।
तद् सद्कर्म, प्रकथनीय गुणों को करे समर्थ।।
इन ऋषियों में हो रहा है जिनका आलोक।
उस सुख, आत्मतेज में थिरता हो बेटोक।।

सूक्त ३६

मंत्र- ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषपतिम्। अजस्रं धर्ममीमहे।।१।।

मंत्र- स विश्वा प्रति चाक्लृ ाऋतुरूत्सृजते वशी। यज्ञस्य वय उत्तिरन।।२।।

मंत्र- अग्निः परेषु घामसु कामो भूतस्य भव्यस्य। सम्राडेको वि राजति।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभु से हम पाते सतत प्रकाश।
सबका नायक प्रभु सत्यमय, उसका सत्य प्रभास।।
वह सबको वश में रखता है, ऋतुएं सभी सजाता,
वहीं पूज्य-व्यवहार-यज्ञ हित, उत्तम अन्न उगाता;
सबको दे सामर्थ्य बनाता उनके सफल प्रयास।।
वह भूत भविष्य के जग का इच्छा पूरक घर है,
उसका एक मात्र राजा वह अग्नि रूप प्रभुवर है;
वह सुदूर स्थानों में भी करता रहे निवास।।

सूक्त ३६

मंत्र- उप प्रगात्सहस्राक्षो युक्त्वा शपथो रथम्!। सप्तारमन्विच्छन्मम वृकइवाविमतो गृहम्।।१।।

काव्यार्थ-

वह है सहस्र आंख का, बतलाता शांति पथ,
रथ जोत, मेरे शाप-दा को ढूंढने जाता;
उसके समीप आता है उस ही प्रकार से,
ज्यों भेड़ वाले व्यक्ति के घर भेड़िया आता।

मंत्र- परि णोवृङ्ग्धि शपथ हृदमग्निरिवा दहन्। आप्तारमत्र नो जहि दिवो वृक्षमूिवाशनिः।।२।।

काव्यार्थ-

हे दुष्ट वचन! हमसे तू सदैव दूर रह,
जैसे ज्वलित अग्नि जल-स्थान छोड़ती;
तू हमको शाप देने वाले नर का नाश कर,
नभ-बिजली जैसे वृक्ष नाश, उसको तोड़ती।

मंत्र- यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात्। शुने पेष्ट्रामिवावक्षामं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे।।३।।

सूक्त ३८

मंत्र- सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौं ब्राह्मणे सूर्ये या। इन्द्रं या देवी सुभगा जनान सा न ऐनु वर्चसा संविदाना।।१।।

काव्यार्थ-

जो तेज सिंह, व्याघ्र, सांप और अग्नि में,
जो वेद-वेत्ता व्यक्ति में, सूरज से बना है;
जिस दिव्य गुणी महनीय ऐश्वर्य की-
अति तेजपूर्ण ज्योति ने राजा को जना है;
वह तेजअन्न और पूत बल से युक्त हो,
अति शीघ्र मिले हमको, यही चाह मना है।

मंत्र- या हस्तिनि द्वीपिनी या हिरण्ये त्विषिरप्सु गोषु या पुरूषेषु। इन्द्र या देवी सुभगा जनान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना।।२।।

काव्यार्थ-

जो तेज हाथी, चीते में, सुवर्ण में, जल में,
गौ आदिको में और मनुष्यों में बना है;
जिस दिव्यगुणी महनीय ऐश्वर्य की,
अति तेजपूर्ण ज्योति ने राजा को जना है;
वह तेज अन्न और पूत बल से युक्त हो,
अति शीघ्र मिले हमको, यही चाह मना है।

मंत्र- राजन्ये दुन्दुभावायतायामखस्य वाजे पुरूषस्य मायौ। इन्द्रं या देवी सुभगा जनान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना।।४।।

काव्यार्थ-

जो तेज क्षत्रिय में, खेंची दुन्दुभी में है,
घोड़े के बल, मनुष्य के शब्द में बना है;
जिस दिव्य गुणी महनीय ऐश्वर्य की,
अति तेजपूर्ण ज्योति ने राजा को जना है;
वह तेज अन्न और पूत बल से युक्त हो,
अति शीघ्र मिले हमको, यही चाह मना है।

सूक्त ३९

मंत्र- यशो हविर्वर्धतामिन्द्रजूतं सहस्रवीर्यं सुभृतं सहस्कृतम। प्रसर्स्राणमनु दीर्घाय चक्षसे हविष्मन्तं मा वर्धयज्येष्ठतातये।।१।।

मंत्र- अच्छा न इन्द्रं यशसं यशोभिर्यशस्विन नं नभसाना विधेम। स नो रात्स्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम।।२।।

काव्यार्थ-

गीत

हे प्रभो! मुझ प्रगतिशील निज भक्त को,
आप ऊपर निरन्तर चढ़ाते रहें।।
आपसे प्राप्त यश और अन्न मेरा,
जो सहस्रों ही सामर्थ्य रखता रहे;
मैंने जिसको कि बल से किया प्राप्त है,
जो भली विधि मेरा कोष ढकता रहे।
मेरे शुभकर्मों द्वारा प्रभो जी! वही-
आप यश और अन्न बढ़ाते रहे।।
नाना यश धारने से यशस्वी बने-
हे प्रभो! आपको है हमारा नमन,
अपनी चारो दिशा उन्नति के लिये,
श्रेष्ठ विधि पूजते आपको हम सबन।
आपने जो दिया राज्य हमको प्रभो-
हम उसी दान से यश जड़ाते रहें।।
यह गगन में उगा सूर्य यश पूर्ण है,
तेज से पूर्ण अग्नि भी यश से भरा,

मोद-दा चन्द्रमा भी है यश धारता,
हममें भी इनकी भांति रहे यश खरा।
भूत मात्र से हम उनका उपकार ले,
विश्व में निज को यश से मढ़ाते।।

सूक्त ४०

मंत्र- अभयं द्यावापृथिवी इहास्तुनोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु। अभयं नोऽस्तूर्वऽन्तरिक्षं सप्तऋषिणां च हविषाभयं नो अस्तु।।१।।

मंत्र- अस्मै ग्रामाय प्रतिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सविता नः कृणोतु। अशत्रविन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामाभि यातु मन्युः।।२।।

मंत्र- अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्। इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनामित्रं पुरस्कृधि।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे महत् सूर्य और पृथिवी! हमारे लिये-
इस संसार में सदैव ही अभय हो;
निर्भय बनाये हमें ऐश्वर्यधारी प्रभु,
महनीय नभ देता हमको अभय हो।
सविता प्रभु हमारे ग्राम हेतु देवे स्वस्ति-
अरू ऐश्वर्य, नहीं रंच भी अदय हो;
हमको निडर करे ऐश्वर्यधारी प्रभु,
सर्वदा हमारे सर्व शत्रु का विलय हो।।
महनीय ऐश्वर्यधारी प्रभु! हम हेतु,
निर्वैरता बनी हो, नीचे रही ठौर पर;
ऊपर भी निर्वैरता रहे हमारे हेतु,
पीछे बनी निर्वैरता हो हर पौर पर।
सामने हमारे निर्वैरता सदैव रहे,
दीजे हमको अभय प्रभुवर गौर कर,
सप्त ऋषियों की हवि से हमें अभय हो प्राप्त,
राजाओं का क्रोध चला जाए और और पर।।

(सप्त ऋषि- दो कान, दो नथने, दो आंखें, एक मुह)

सूक्त ४१

मंत्र- मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये। मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम्।।१।।

मंत्र- अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे। सरस्वत्या उरूव्यचे विधेम हविषावयम्।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हम मन, चित्त, बुद्धि, उत्साह हेतु, तथा-
शुभ-संकल्प हित शक्ति विशेष को;
स्मृति, समझ औ श्रवण तथा दर्शन की-
शक्ति हेतु पूजें भक्ति साथ परमेश को।
व्यान और अपान वायु हेतु तथा भांति-भांति-
धारण करे जो उस प्राण उन्मेष को;
विद्या की देवी अति विस्तृत सरस्वती की-
वृद्धि हेतु पूजे भक्ति साथ परमेश को।।

मंत्र- मा नो हासिषुर्त्रऋषयो दैव्याये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः। अमर्त्या मर्त्या अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तन बीच द्वय आंखें, द्वय कान, नथने दो,
एक मुख, यह दिव्य ऋषि जो ठिया करें;
उत्पन्न इस तन साथ ही हुए हैं जो कि,
अरू तन रक्षण के भार को लिया करें।
यह अमर्त्य देव हम मर्त्य जीवधारियों के-
साथ रह कर हम साथ ही जिया करें;
अरू हम सब की सुदीर्ध उत्कृष्ट आयु,
जीवन के हेतु हमें धारण किया करें।।

सूक्त ४२

मंत्र- अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः। यथा संमनसौ भूत्वा सखायामिव सचावहै।।१।।

मंत्र- सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते। अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि योगुरूः।।२।।

काव्यार्थ- कवित्त

धनुष की चढ़ी हुई डोरी के समान रहे,
तेरे क्रोध को मैं तेरे मन से उतारता;
जिससे कि हम दोनों एक मन होकर के,
मित्र सम होवें, भरे मन में उदारता।
हम दोनों मिले रहें द्वय मित्रों समान,
अस्तु तव क्रोध को हटाता हूं, उजारता;
उस पत्थर से दबाता, इतना जो भारी,
असमर्थ रहता, जो उसको उखाड़ता।।

मंत्र- अभि तिष्ठाम ते मन्युं पाष्र्यां प्रपदेन च। यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

तेरा दबाता क्रोध मैं एड़ी, ठोकर मार।
जिससे नित बहती रहे तुझमें प्रेम बयार।।
रंच न परवश हो, कोई किया करे तू बात।
अरू मम चित्त अनुकूल हो रहा करे दिन रात।।

सूक्त ४३

मंत्र- अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च। मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते।।१।।

मंत्र- अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवातिष्ठति। दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते।।२।।

काव्यार्थ- कवित्त

निज हेतु अरू दूसरे के हेतु क्रोध का-
हटाने वाला यह व्यक्ति दुख नाश कर्ता;
दूर करता है यह क्रोधी व्यक्ति का क्रोध,
कहलाता क्रोध शांतकर्ता व हर्ता।

दुख नाश-कर्ता ये अति मानधारी बन,
अन्तरिक्ष लोक तक विस्तार धरता;
पृथिवी से ऊपर उठा, सुकर्मों को गूंथ,
कहलाता शांत-चित्त, यशवान भर्ता।।

मंत्र- वि ते हनव्यां शरणिं वि ते मुख्यां नयामसि। यथावशो न वादिशो मम चित्तमुपायसि।।३।।

काव्यार्थ- कवित्त

रहता है जो कि तेरी ठोड़ी के सहारे, तथा-
तेरे मुख पर जो कि वर्तमान रहता;
हम उस क्रोध-चिन्ह को हटाते सर्वथा हैं,
जो कि तेरे बाह्य और अंतः को दहता।
जिससे हमारे चित्त के तू अनुकूल होवे,
परवश होकर रहे न बात कहता;
करके सुचेष्ट समस्त तन अंगों से,
जिससे तू सर्वदा सभी का बने चहता।।

सूक्त ४४

मंत्र- अस्थाद् द्यौरस्थात्पृथिव्यस्थाद्विश्वमिदं जगत्। अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नास्तिष्ठाद्रोगो अयं तव।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

पृथिवी अरू द्योलोक ज्यों ठहरे हुए लखात।
ज्यों इस सिगरे जगत की ठहरी हुई बिसात।।
ज्यों ठहरे ऊर्ध्व मुखी सोने वाले वृक्ष।
त्यो ही तेरे रोग का ठहर जाय हर पक्ष।।

मंत्र- शतं या भेषजानि ते सहस्रं संगतानि च। श्रेष्ठमास्रावभेषजं वशिष्ठं रोगनाशम्।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

हे नर! तेरे लिये शत औषधियां विख्यात।
तथा परस्पर मेल की औषध सहस्रलखात।।
उनमें औषध श्रेष्ठतम ब्रह्म तेरे पास।
रक्त स्राव को रोकता करता रोग विनाश।।

मंत्र- रूद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः। विषाणका नामवा असि पितृणां मूलादुत्थिता वातीकृतनाशनी।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

हे नर! भीषण क्लेश जो करता तुझको त्रस्त।
तू तत् मोचक बल तथा मुक्ति का मध्यस्थ।।
पालक गुण गण मूल से प्रकट हुई तू शक्ति।
देती हिंसा को मिटा सिखला नाना भक्ति।।

सूक्त ४५

मंत्र -परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि। परेहिंन त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

पाप मानसिक दूर हट नाप दूर की राह।
बातें बुरी बतात क्या मुझे न तेरी चाह।।
फिरता रह तू वनों में अरू वृक्षों की ठाह।
मेरा मन है घरों में अरू गउओं के माह।

मंत्र- अवशसा निः शसा यत्पराशसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः। अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मदधातु।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

किया जो पाप घ्रणा अरू कर विश्वासघात।
अपवाद से किया या जगते सोते रात।।
हे प्रकाश-दा प्रभु! सकल अप्रिय दुष्कर्म।
अरू पापों से दूर रख हमें सिखा सद्धर्म।।

मंत्र- यदिन्द्रब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि। प्रचेता न आङ्गिरसो दुरितात्पात्वंहसः।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

वृहदाकार लोकों के स्वामी ज्ञान-पूर्ण।
हे प्रभुवर! धारण किये ऐश्वर्य सम्पूर्ण।।
हम जो भी पाप करें करें असत् व्यवहार।
त्वरित हमें दे रोक तू मार्ग दिखावनहार।।

बड़ी बुद्धिवाले तथा ज्ञानियों के हितकार।
दुर्गति, पापों से बचा कर हमरा उद्धार।।

सूक्त ४६

मंत्र- यो न जीवोऽसि न मृतो देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न। वरूणानी ते माता यमः पिताररूर्नामसि।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

स्वप्न! न तो जीवित है तू न ही मरा दिखलाय।
पर इन्द्रियों के अमरपन का आधार कहाय।।
तू है हिंसक नाम का रात्रि तेरी है मात।
गति देता जो नियम से वह रवि तेरा तात।।

मंत्र- विद्‌म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः अन्तकोऽसि मृत्युरसि। तं त्वा सवप्न तथासं विद्‌म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात्पाहि।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

स्वप्न! जानते हम, तेरी जन्म-थली है कौन।
तू इन्द्रियों का नियम-दा पालन कर्ता छौन।।
ते रखता है अन्त का मारण का अधिकार।
हम सब तुझ उपरोक्त को जानें भली प्रकार।।
बुरी नींद के काल जो उठते बुरे विचार।
उनसे तू हमको बचा स्वप्न! भली प्रकार।।

मंत्र- यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति। एवा दुःष्वप्न्यं सर्व द्विषते सं नयामसि।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

जैसे ऋण चुकता किया करते लोग निदाग।
दे आय का सोलहवां या कि आठवां भाग।।
वैसे ही हम वैरी के ऊपर देते छोड़।
स्वप्न काल में उठ रही कुविचारों की होड़।।

सूक्त ४७

मंत्र- अग्निः प्रातः सबने पात्वस्मान्वैश्वानरो विश्वकृद्विश्वशंभूः। स नः पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जगत बनाने वाला वह जगदीश्वर,
सब ही नरों का हितकारी जो हुआ करे;
वह अग्नि का रूप, प्रातः के यज्ञ काल,
रक्षक करों से नित हमको छुआ करे।
नित्य ही पवित्र वह, पावन बनाने वाला,
उसके घनों से सुख-बिन्दु ही चुआ करे;
वह हमको रखे सदैव ही धनों के बीच,
हम दीर्घ आयु, सहभोजी भी हुआ करें।।

मंत्र- विश्वे देवा मरूत इन्द्रो अस्मानस्मिन्द्वितीये सवने न जह्युः। आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो वयं देवानां सुमतौस्याम।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

महाधनी प्रभु, देव सब विज्ञ ज्ञान की माप।।
इस द्वितीय शुभ यज्ञ में हमें न त्यागें आप।।
मधु वचनों, दीर्घायु से निज को कर आच्छाद।
रहें सुमति में आपकी पायें आशीर्वाद।।

मंत्र- इदं तृतीयं सवनं कवीनामृतेन ये चमसमैरयन्त। तै सौधन्वनाः स्वरानशानाः स्विष्टिं नो अभि वस्यो नयन्तु।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जो महात्मा हमारी अति श्रेष्ठ सिद्धि-नाव,
बुद्धिमान व्यक्तियों के सत्य-जोर खें चलें;
जो कि इस तीसरे अतीव पूत यज्ञ हेतु,
नाना अन्न राशियाँ हमें अछोर दे चलें।
जो कि धनु-विद्या, शास्त्र ज्ञान में प्रवीण रहे,
जन हेतु सुख-भोग की हिलोर ले चलें;
वह धनु-विद्या, शास्त्र ज्ञान दे, हमारे इस-
शुभ यज्ञ को सफलता की ओर ले चलें।।

सूक्त ४८

मंत्र- श्येनोऽसि गायत्रच्छन्दा अनु त्वा रभे। स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योंदृचि स्वाहा।।१।।

काव्यार्थ-

हे गाने योग्य कर्मों वाले महान ज्ञानी-
प्रभु! तुझको मैं निरन्तर करके ग्रहण हूं खिलता;
जिस यज्ञ कर्म उत्तम को मैं चला रहा हूं
बाधाएं देख जिसमें, किंचित नहीं हूं हिलता;
आनन्द साथ मुझको ले चलिये पूर्णता तक,
है कामना, मुझे यह आशीष रहे मिलता।

मंत्र- ऋभुरसि जगच्छन्दा अनुत्वा रभे। स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योद्द्रचि स्वाहा।।२।।

काव्यार्थ-

जग में स्वतंत्र मेधावी तू परम पिता है,
प्रभु! तुझको मैं निरन्तर करके ग्रहण हूँ खिलता;
जिस यज्ञ कर्म उत्तम को मैं चला रहा हूँ,
बाधाएँ देख जिसमें, किंचित नहीं हूँ हिलता;
आनन्द साथ मुझको ले चलिए पूर्णता तक,
है कामना, मुझे यह आशीष रहे मिलता।

मंत्र- वृषासि त्रिष्टुप्छन्दा अनु त्वा रभे। स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा।।३।।

काव्यार्थ-

ऐश्वयवान्, तीनों ही ताप के विमोचक-
प्रभुः! तुझको मैं निरन्तर करके ग्रहण हूं खिलता;
जिस यज्ञ कर्म उत्तम को मैं चला रहा हूं,
बाधाएं देख जिसमें, किंचित नहीं हूं हिलता;
आनन्द साथ मुझको ले चलिये पूर्णता तक,
है कामना, मुझे यह आशीष रहे मिलता।

सूक्त ४६

मंत्र- नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव।।१।।

काव्यार्थ-

हे ज्योतिमान ईश! मनुज जान न पाया,
तेरे स्वरूप मध्य क्रूरता जो विषम है;
सबको कंपाने वाले, तू अपने में समाता,
वह सूर्य मण्डल,जिसे तू रचता प्रथम है;
जैसे कि गाय, अपने स्वयं के ही पेट से,
निकले हुए जरायु को खा लेती स्वयं है।

मंत्र- मेष इव वै सं च वि चोर्वच्यसे यदुत्तरद्रावुपरश्च खादतः। शीर्ष्णा शिरोऽप्ससाप्सो अर्द्धयन्नंशून्वभस्ति हरितेभिरासभि।।२।।

काव्यार्थ-

हे ज्योतिरूप! सृष्टि-प्रलय करता तू त्यों ही,
ज्यों मेढ़ा सिमट फैल तरू की पत्तियां खाता;
ऊपर समस्त जगती के स्थित हुआ, सिर से-
सिर को दबाता, रूप से हर रूप दबाता,
सामर्थ्य हरणशील गिराने के लिए तू,
सूर्यादि सभी लोकों को खाता व पचाता।

मंत्र- सुपर्णा वाचमक्रतोप द्याव्याखरे कृष्णा इविरा अनर्तिषुः। नि यन्नियन्त्युपरस्य निष्कृतिं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्रितः।।३।।

काव्यार्थ-

आश्रित रहीं जो किरणें तेजपूर्ण सूर्य के,
उन्होंने शब्द खोखले आकाश में किया;
रस पार्थिव को खेंचने वाली तथा गतिमय,
उन्होंने नृत्य कर, किया उल्लास में हिया;
जब मेघ की रचना की, झुकीं जब वे नियम से,
तव धार वृष्टि-जल, को, अन्न राश को दिया।

सूक्त ५०

मंत्र- हतं तर्द समङ्कमाखुमाश्विना छिन्तं शिपिरो आपि पृष्टीः शृणीतम्। यवान्नेददानपि नह्यतं मुखमथाभयं कृणुतुं धान्याय।।१।।

काव्यार्थ-

भूमि में बिल बना के रहा करते जो सदा,
बहुनाश किया करते, कुतरते रहा करते;
नर-नारियो! उन चूहे सरीखों को मार दो,
सिर काट, पीठ तोड़, रहो प्राण को हरते;
खायें यवादि अन्न को किंचित भी वह नहीं,
तुम उनके मुख को बन्द करो, छोड़ दो मरते;
इस भांति करके धान्य सुरक्षाएं तुम सदा,
निर्भय रहा करो, रहो किंचित नहीं डरते।

मंत्र- तर्द है पतंग है जभ्य हा उपक्वस। ब्रह्मेवासं स्थितं हविरनदन्त इमान्यवानहिंसन्तो अपोदित।।२।।

काव्यार्थ-

हे काक आदि, हे फुदकते टिड्डी आदिको,
हे बध्य रेंगते हुए कीड़ों श्रवण करो;
ब्रह्म समान विद्वान् व्यक्ति जिस तरह,
अन्न असंस्कृत को छोड़ता अपर परो;
वैसे ही तुम यवादिअन्न को नहीं खाकर,
उड़जाओ कहीं दूर, तोड़ते हुए डरो।

मंत्र- तदीपते वघापते तृष्टजभ्या आ शृणोत मे। य आरण्या व्यद्वरा ये के च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वांचजम्भयामसि।।३।।

काव्यार्थ-

हे तीक्ष्ण दाढ़वाले! हे शलभ! महा हिंसक,
मेरे वचन को तुम सभी भली विधि सुनो;
जो विविध भांति खाते, अपर जन्तु, जंगली,
हम उनका नाश करने में रहते महा-गुनो।

सूक्त ५१

मंत्र- वायोः पुतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा।।१।।

काव्यार्थ-

प्रभु सर्वप्याप्त के बताये शुद्ध आचरण-
से शुद्ध हुआ, पूज्य, अशुभ से मुड़े हुए;
अति शीध्रगामी, ऐश्वर्यवान्, सद्गुणी,
परमेश का बनकर सखा रहता जुड़े हुए।

मंत्र- आपो अस्मान् मातरः सूरयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरूदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि।।२।।

काव्यार्थ-

माता समान जो सदैव ही हितू रहे,
वह जल हमारे आचरण में शुद्धता भरें;
घृत को पवित्र करने वाले जल हमें घृत से,
पवित्र कर, कुकर्म जन्य क्षुद्रता हरें,;
जल दिव्य गुणी जो कि सभी दोष बहाते,
इन द्वारा मैं चलता, मेरी अवरूद्धता डरे।

मंत्र- यत् किंचेदं वरूण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्या३श्चरन्ति। अचित्त्या चेत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः।।३।।

काव्यार्थ-

उत्तम अतीव हे प्रभु! जो कुछ दुराचरण,
विज्ञों के बीच विज्ञ पर मानव किया करें;
अज्ञान से धिरे हुए वह जल तेरा कहा,
तेरा बताया धर्म तोड़कर जिया करें;
हे प्रभु हमें उस पाप से तू नष्ट नहीं कर,
धर्माचरण पर हम सभी अपना हिया करें।

सूक्त ५२

मंत्र- उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन् आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्हा।।१।।

मंत्र- नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत। न्यू३र्मयोनदीनां न्य१दृष्टा अलिप्सत।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सर्वतः प्रकाशमान, सबका ही दर्शनीय,
सकल अदृष्ट दोष नाश जो कि करता;
ऐसा सूर्य राक्षसों को हनता गगन बीच,
पर्वतों से सम्मुख उदय हो विचरता।
उसकी किरण राशि अन्तरिक्ष मध्य पैठ,
ठहरी हुई है, धार करके प्रखारता;
खोजी पुरूषों ने निज कर्म में प्रवेश किया,
जन में अदृष्ट को उमंग भाव तरता।।

मंत्र- आयुर्ददं विपश्चितं श्रुतां कण्वस्यावीरूधम्। आभारिषं विश्वमेषजीमस्यादृष्टान् नि शमयत्।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

बुद्धिमान पुरूष को जीवन जो देती तथा,
होती है प्रकट जो कि विविध प्रकार से;
भली विधि सबको ही सावधन करती जो,
संसार का जो भय जीतती प्रहार से।
ऐसी ख्यात वेद-विद्या को मैंने प्राप्त किया,
इससे ही देव दुःख द्वन्द को प्रजारते;
प्रार्थना है वह इस जन के अदृष्ट दोष,
नष्ट कर इसे सुख शांति में बिठार दे।।

सूक्त ५३

मंत्र- द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन् दक्षिणाया पिपर्तु। अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निर्वायुनः पातु सविता भगश्च।।१।।

काव्यार्थ-

उत्तम ज्ञान प्रदाता नभ, भू, महत् ज्योतिधारी सूरज।
मेरे लिये मेरा यह घर दें, बना प्रतिष्ठा की मूरत।।
अग्नि, चन्द्र अनुग्रह करके, उत्तम अन्न प्रकाम भरें।
वायु तथा जग-जनक ईश्वर, रक्षा सतत प्रदान करें।।

मंत्र- पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु। वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरतानि विश्वा।।२।।

काव्यार्थ- कवित्त

हम सब ही को बार-बार प्राण प्राप्त होवे,
तथा बार-बार आत्म-बल मिलता रहे;
बार-बार देखने का प्राप्त हो सामर्थ्य, तथा-
बार-बार बुद्धि का कमल खिलता रहे।
जो कि सब ही के तन रक्षता सदैव रहे;
हित करने में नहीं रंच हिलता रहें;
ऐसा वो अचूक परमात्मा सदा हमारे,
सब कष्टों के बीच पैठ रिलता रहे।।

मंत्र- सं वर्चसा पयास सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन। त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो३ यद्विरिष्टम्।।३।।

काव्यार्थ- कवित्त

हम तेज अरू पुष्टिदाता दूध से हों युक्त,
उत्तम शरीर लभें, ओज तरता रहे;
हम कल्याणमय विचार युक्त होवें, तथा-
मन युक्त होवें, पर पीर हरता रहे।
विश्वकर्मा प्रभु यहां हमको बनाये श्रेष्ठ,
नर हों, हमारे कर्म बीच नरता रहे;
सब ही प्रकार वह कर दे पवित्र हमें,
तन के विविध कष्ट शुद्ध करता रहे।।

सूक्त ५४

मंत्र- इदं तद्युज उत्तरमिन्द्रं शुम्भाम्यष्टये। अस्य क्षत्रं श्रियं वृष्टिरिव वर्धया तृणम्।।१।।

काव्यार्थ- कवित्त

ऐश्वर्यवान रहे गुणवान राजा को मैं-
करता सुशोभित हूं इष्ट प्राप्ति के लिये;
जिसके कि तद् मित्र पाये यह और वह,
अधिक अधिक श्रेष्ठ उच्च पद के ठिये।

जैसे वर्षा बढ़ाया करती है बहु घास,
वैसे जगदीश! यह नित्य बढ़ता जिये,
विस्तार पाये राज्य इसका, सदैव बढ़े-
सम्पत्ति महती तिहारे कर के दिये।।

मंत्र- अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतं रायिम्। इमं राष्टस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम्।।२।।

काव्यार्थ-

हे सूर्य और चन्द्र! आप राज्य को तथा,
सम्पत्ति को सुदृढ़ करो राजा के लिये;
राष्ट्र की मुख्य मण्डली में इसको दृढ़ करो,
स्थितरता लिये उच्च स्थिति में यह जिये।

मंत्र- सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति। सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते।।३।।

काव्यार्थ-

मेरा वह शत्रु जो कि अपने बन्धुओं अथवा-
बिन बन्धुओं के साथ मेरा नाश चाहता;
उस शत्रु का विनाश करो मेरे लिये, मैं-
सेवा में विज्ञ याजकों की उमगाहता।

सूक्त ५५

मंत्र- ये पन्थानों वहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति। तेषामज्यानिं यतमो वहाति तस्मै मा देवाः परि धत्तेह सर्वे।।१।।

काव्यार्थ-

देवों के आने-जाने योग्य मार्ग अनेकों,
द्युलोक और पृथिवी लोक बीच सुहाते,
हे विज्ञों! उनमें मार्ग जो समृद्धि-दा, उस पर-
मुझको यहां थिर करके, दूर करिये कुहासे।

मंत्र- ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद्वर्षा स्विते नो दधात। आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद्धः शरणे स्याम।।२।।

ग्रीष्म, वसन्त, वर्षा, शरद, हेमन्त औ शिशिर,
तुम सब हमें उत्तम अवस्था बीच धारिये,

गांओं, प्रजाओं में बनाओ सुख का भागी तुम,
वातादि उपद्रव रहित शरण में डारिये।

मंत्र- इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः। तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसेस्याम।।३।।

काव्यार्थ-

सब ओर से निवास कराते जनक पिता-
को नित्य कोटिशः नमन वचन कहा करें;
आचार्य जो विद्या में वास हमको कराते,
उनको भी कोटिशः नमन वचन कहा करें;
राजा यथानियम जो हमको वास कराता,
उस राजा को बहुत बहुत नमन कहा करें;
करते जो श्रेष्ठ व्यवहार, उनकी सुमति औ-
कल्याण-दा सनेह में हम सब रहा करें।

सूक्त ५६

मंत्र- मा नो देवा अहिर्वधीत्सतोकान्त्सहपूरूषान्। संयतं न वि ष्परद्वयात्तं न सं यमन्नमो देवजनेभ्यः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विज्ञों सन्तानों सहित और पुरूषों साथ।
हमें न काटें सर्प सम दोष लगाकर घात।।
मुंदा हुआ निज मुख कभी रंच न खोलें दोष।
अरू बिन मूंदें खुला मुख मुझे प्रदाने तोष।।
विद्वत् जन मेरे लिये पथ के दर्शक केतु।
नमस्कार उनको मेरा दोष हनन के हेतु।।

मंत्र- नमोऽस्त्वासिताय नमस्तिरश्चिराजये। स्वजाय वभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्यः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

कृष्ण सर्प सम दोष जो ले लेते हैं जान।
तत् विनाश के हेतु हो दृढ़ता वज्र समान।।
वक्रधार के सर्व सम दोष जो लेते जान।
तत् विनाश के हेतु हो दृढ़ता वज्र समान।।

भूरे लिपटे सर्प सम लिपट जाते जो दोष।
तत् विनाश के हेतु हो दृढ़ता पूरित जोश।।

मंत्र- सं ते हन्दिता दतः समु ते हन्वा हनू। सं ते जिह्वया जिह्वा सम्वास्नाह आस्यम्।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे सर्प सम दोष मैं तेरे मुख के दांत।
तोड़ देत, उनसे मिला अपने मुख के दांत।।
ठोडी से ठोड़ी मसल जीभ जीभ से तोड़।
अरू मुख द्वारा मुख तेरा मैं देता हूं फोड़।।

सूक्त ५७

मंत्र- इदमिद्वा उ भेषजमिदं रूद्रस्य भेषजम्। येनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

निःसन्देह जल औषध करता रोग निदान।
यह दुःख नाशक ईश का है उत्तम वरदान।।
एक दण्ड के वाण का घाव ठीक हो जाय।
अरू शत शल्य वाण का भी नहीं रहने पाय।।

मंत्र- जालाषेणाभि षिंचत जालावेणोप सिंचत। जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जल से अभिसिंचन तथा उपसिंचन भी होय।
बड़ी तीव्र औषध है जल, सब रोगों को खोय।।
उस जल द्वारा तू करा सकल सुखों का भोग।
प्राप्त दीर्ध जीवन करें सच्चरित्र हम लोग।।

मंत्र- शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत्। क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेषजं सर्वं नो अस्तु भेषजम्।।३।।

काव्यार्थ-

हो शांति प्राप्त हमको सुख प्राप्त हमको होवे,
रोगों से हो बचाव दुख पा कोई न रोवे।

भरपूर औषध हो उपलब्ध हम सभी को,
वह होवे रोग-नाशक कोई नहीं दुखी हो।

सूक्त ५८

मंत्र- यशसं मेन्द्रोंमघवान्कृणोतु यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे। यशसं मा देवः सविताकृणोतु प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम्।।१।।

काव्यार्थ-

महिमामयी मेरा प्रभु मुझको करे यशस्वी।
सविता, द्यु व भू भी, मुझको करें यशस्वी।।
रहता हुआ यहां मैं राजा का बनूं प्यारा।
जो दक्षिणा, प्रतिष्ठा देने में बड़ा न्यारा।।

मंत्र- यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान्यथाप औषधीषु यशस्वतीः। एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम।।२।।

काव्यार्थ-

जैसे प्रभू द्यु लोक भू लोक में यशस्वी,
वह जैसे जलों, औषधियों बीच है यशस्वी;
वैसे ही हम भी देवों के बीच हों यशस्वी,
वैसे ही सद्गुणों में रहते बनें यशस्वी।

मंत्र- यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशा सोमो अजायत। यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः।।३।।

काव्यार्थ-

ज्यों सूर्य, अग्नि चन्द्र तीनों हुए यशस्वी।
यशकामी मैं हूं वैसे जग में अति यशस्वी।।

सूक्त ५९

मंत्र- अनडुदभ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरून्धति। अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो कर्मों में रोक नहीं कभी डालती लेश।
ऐसी हितकर शक्ति तू सर्वव्याप्त परमेश।।
नर जो प्राण अरू जीविका पहुंचाने में ठीक।
अन्न प्राप्ति हित तू उन्हें विस्तृत घर दे नीक।।

तृप्ति प्रदाता स्त्रियां दूध हीन चौपाये।
उन पर भी होवे तेरी अनुकम्पा के साये।।

मंत्र- शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवीररून्धती। करत्पयस्वन्तं गोष्ठमयक्ष्मां उत पुरूषान्।।२।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो कर्मों में रोक नहीं कभी डालती लेश।
ऐसी हितकर शक्ति औषधि रूपी परमेश।।
शरण प्रदाने मनुज को शुभ कर्मों को बोय।
गौशाला दुग्ध भरी, मनुज निरोगी होय।।

मंत्र- विश्वरूपां सुभगामच्छावदामि जीवलाम्। सा नो रूद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः।।३।।

काव्यार्थ-

मैं स्तुति करता हुआ, उत्तम वचन कहता-
प्रभु के विषय में, जो रही शक्ति विचित्र है;
जीवन की प्रदाता, महत् ऐश्वर्य धारती,
जो नाना रूप रचती है, अति ही पवित्र है;
प्रभु-दत्त ताड़ना को भूमियों से हमारी,
वह दूर को ले जाये, वह हमारी मित्र है;
हम पाप करके दण्ड के भागी नहीं बनें,
जन में सुगन्ध भरती हुई शक्ति इत्र है।

सूक्त ६०

मंत्र- अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद्विषितस्तुपः। अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायामजानये।।१।।

काव्यार्थ-

सम्मुख हमारे आता यह प्रशंसनीय रवि,
इस कन्या के लिये पति की कामना लेकर;
अरू पुरूषअविवाहित रहे के हेतु पत्नि की-
इच्छा को प्रकट करता हुआ, प्रेरणा देकर।

मंत्र- अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती। अङ्गोन्वर्यमन्नस्या अन्याः समनमायति।।२।।

काव्यार्थ-

जो दूसरी कन्यायें हैं, उनके विवाह में-
जाती हुई इस कन्या ने तप को किया, प्रभु!
कन्याएं दूसरी भी इस श्रेष्ठ कन्या के-
विवाह में आयें अवश्च, न्याय-दा विभू।

मंत्र- धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम्। धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम्।।३।।

काव्यार्थ-

जिस पृथिवी को धारा है विधाता ने, उसी ने-
धारा है द्यु, सूर्य तथा उनकी गति को;
वह ही विधाता धारे इस उद्यमी कन्या-
को कर प्रतिज्ञा चाहने के योग्य पतिको।

सूक्त ६१

मंत्र -मह्यमापो मधुमदेरयन्ता मह्यं सूरो अभरज्ज्योतिषे कम्। मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा मह्यं देवः सविता व्यचो धात्।।१।।

काव्यार्थ-

मेरे लिये प्रकाश किरणें प्रसारता रवि,
जल धारते मधुर रस, बहना न टारते;
मेरे लिये हैं वह गुण, जो श्रेष्ठ कहाते हैं,
जिनको तपस्वी तप से निज में बिठारते हैं;
व्यवहार-कुशल ऐश्वर्यवान् पुरूष सारे,
मेरे लिये ही अपना विस्तार धारते हैं।

मंत्र- अहंजजान पृथिवीमुत द्यामह मृतंरजनयं सप्त साकम। अहं सत्यमनृतं यद्वदाम्यहं देवी परि वाचं विशश्च।।२।।

काव्यार्थ-

मैंने पृथक-पृथक द्यु अरू भू को किया है,
अरू सात ऋतु बनाकर उन सबको खोलता हूं;
जो कुछ भी सत्य और असत्य है, उसे नित,
सब प्राणियों के हित में बतलाता डोलता हूं।

मंत्र- अहं जजान पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त सिन्धन्। अहं सत्यश्मनृतं यद्वदामि यो अग्नीषोमावजुषे सखाया।।३।।

काव्यार्थ-

सात ऋतु व उनकी जग व्याप्त शक्तियों को,
अरू पृथिवी तथा द्यु को उत्पन्न किया मैंने;
सत्य असत्य वचनों को मैं ही बताता हूं,
द्वय मित्र अग्नि और जल को मिलाया मैंने।

सूक्त ६२

मंत्र- वैश्वानरो रश्मिमिर्नःनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः। द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ़तावरी यज्ञिये नः पुनीताम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जन हितकारी ईश दे ज्ञान-रश्मि बैठाल।
वायु प्राण से, रसों से जल, पावनता दे डाल।।
सत्यशील, रसमय, रखें संगति योग्य चरित्र।
ऐसे द्यु, भू रसों से हमको करें पवित्र।।

मंत्र- वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो वीत पृष्ठाः। तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पूतयोरयीणाम।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वेद-वाणी जन-हित् प्रचारों हे मर्त्य।
जिसके तन-विस्तार से हो सेचन सामर्थ्य।।
तुम आनन्द उत्सवों पर आपस में बात।
वेदवाणी से कर बनो धनस्वामी विख्यात।।

मंत्र- वेश्वानरीं वर्चसआ रमध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः इहेडया सधमादं मदन्तोज्योक्यश्येम सूर्यमुंच्चरन्तम्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

ज्ञानवान हे मनुष्यों! शुद्ध औ अति पवित्र,
वेदवाणी को सदा सदैव चहते रहो;
दूसरों को पावन बनाने वाले बनकर,
जन बीच इसको सदैव कहते रहो।

इस वेद-वाणी अति पावनी के द्वारा तुम,
हर्ष-उत्सवों में भर मोद बहते रहो;
अरू बहुकाल पर्यन्त चढ़ते हुए,
सूर्य सम यशवान बन रहते रहो।।

सूक्त ६३

मंत्र- यत्ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत्। तत्ते विष्याभ्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः।।१।।

काव्यार्थ-

हे नर! दरिद्रता जो तुझे प्राप्त हुई है,
उसने तेरे गले में एक रज्जु बांध दी;
किंचित भी सहजता से जो खुलने नहीं पाती,
उजियार नाश, जिसने निराशा की सांझ दी।
उसको तेरी आयु के लिये, शक्ति के लिये,
तेजस्विता के हेतु, ज्ञान द्वारा खोलता;
अब आगे बढ़ तू, हर्ष दा अन्न का भोग कर,
वाणी से चल सदैव ही सत् बात बोलता।

मंत्र- नमोऽस्तु तो निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयान्वि चृता बन्धपाशान्। यमो मह्यं पुनरित्तवां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे।।२।।

काव्यार्थ-

हे उग्र तेज वाले! सर्वनाश कर रही,
दरिद्रता पर रख सदैव वज्र तानता;
दरिद्रता के लौह बन्धनों को तोड़ दे;
मम हित पुनः पुनः प्रभु तुझको प्रदानता,
नारिद्रय रूप मृत्युनाश हेतु उस न्यायी,
प्रभु-प्रति है भाव की नमन प्रधानता।

मंत्र- अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम। यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहेयमम्।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! तू दुष्कर्मों के कारण हुआ गलीच।
तथा घिरा है मृत्यु के सहस्र प्रकारों बीच।।

बंधा हुआ तू लौह मय काष्ठ बन्धनों साथ।
अब तेरा कल्याण है विद्वानों के हाथ।।
नियम साथ प्रभु-आज्ञा पालक जो विद्वान।
वह इसको आनन्द स्थिति हित देवें ज्ञान।।

मंत्र- संसामिधुवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ। इडस्पदें समिध्यसे स नो वसून्या भर।।४।।

काव्यार्थ-

बलवान, तेजवान नर, तू स्वामी रूप धर,
सम्पूर्ण सुख दिलाता श्रेष्ठ रीति से लाकर;
अरू होता सुशोभित है श्लाघनीय पदों पर,
ऐसा तू हमें बहु प्रकार के धनों से भर।

सूक्त ६४

मंत्र- संजानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसिजानताम्। देवाभागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।१।।

काव्यार्थ-

प्राप्त कर समज्ञान तुम आपस में मिलकर के रहो,
मन बनाकर एक से तुम नित्य खिलकर के रहो,
पूर्व ज्ञानी सेवनीय प्रभु को ज्यों भज रहे,
वैसे ही उसका भजन तुम अपना दिल करके रहो।

मंत्र- समानो मंत्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम्। समानेन वो हविषा जुहोमि समानं-चेतो अभिसंविध्वम्।।२।।

काव्यार्थ-

हों विचार समान सबके, समितियां सब एक हों,
व्रत समान हों सभी के, चित्त की सम टेक हो,
सम हवि के साथ तुमको, युक्त करता हूं सदा,
बन समान चित्त के, कर्म बनाओ सुखप्रदा।

मंत्र- समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसाहसति।।३।।

काव्यार्थ-

एक सा संकल्प हो, सबके हृदय हों एक से,
मन सभी का एक सा हो मिल रहो तुम नेक से,
तुम सदा मिल जुल रहो सर्वत्र उत्तम नीति से,
अरू रहो चलते-चलाते वेद पथ पर प्रीति से।

सूक्त ६५

मंत्र- अव मन्युरवायताव बाहू मनोयुजा। पराशर त्वं तेषां परांच सुष्मर्दयाधा नो रयिमा कृधि।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ढीला होवे क्रोध अरू, शस्त्र शिथिलता पांय।
मन प्रेरित ऊंची भुजाएं नीची हो जांय।।
शत्रु हन्ता सेनापति, कर तू शत्रु समाप्त।
उन्हें भगाकर राज्य से, करा हमें धन प्राप्त।।

मंत्र- निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तं यं देवाः शरूमस्यथ। वृश्चामि शत्रूणां वाहूननेन हविषाहम्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे विजयी लोगों! निहत्थे जैसे अरि लोग।
जो निर्बल होकर खड़े है मृत्यु के जोग।।
उन्हें निहत्था करते तुम फेंक शस्त्र अति चण्ड।
उसी ग्राह्य शस्त्र से मैं हनता अरि भुजदण्ड।।

मंत्र- इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः। जयन्तु सत्वानो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जिस अति शूर साहसी सेनापति के हाथ।
पूर्व-काल में निहत्थे हुए असुर बेहाल।।
उसी स्नेही अरू अडिग का लेकर सहयोग।
अब भी विजयी हो चलें मेरे वीर-वर लोग।।

सूक्त ६६

मंत्र- निर्हस्तः शत्रुराभिदासन्नस्तु ये सेना भिर्युधमायन्त्यचस्मान्। समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्धः।।१।।

काव्यार्थ-

वह शत्रु जो हम पर चढ़ाई करने चला है,
उस शत्रु में अतीव निबलता बिठार दे;
अरू शत्रु जो निज सैन्य को लिये चला आता,
सेनापति! तू उनको बड़े वध से मार दे;
इनका प्रधान जो विशेष घात है करता,
वह विद्ध हुआ भाग जाय, भय संचार दे।

मंत्र- आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ। निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेन्द्रो वोऽद्य पराशरीत्।।२।।

काव्यार्थ-

हे शत्रुओं! तुम आज धनुष-वाण तानते,
तलवार खोंचते व वाण छोड़ते आते;
ऐसे हे शत्रुओं सभी, निहत्थे बनो तुम,
हम आज तुम्हारा तुम्हें भविष्य बताते;
हमारा सेनापति तुम्हें सौंपेगा मृत्यु को,
वह छोड़ता नहीं उन्हें, जो हमको सताते।

मंत्र- निर्हस्ताःह सन्तु शत्रवोऽङैषा लापयामसि। अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो वि भजमहै।।३।।

काव्यार्थ-

हो जांय शत्रु लोग पूर्ण रूप निहत्थे,
हम उनके अंग-अंग को निर्बल हैं बनाते;
अरू सेनापति इन्द्र की आज्ञा से शत्रु-धन,
अपनों में सैकडों प्रकार बांटते जाते।

सूक्त ६७

मंत्र- परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्रः पूषा च सस्रतुः। मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम।।१।।

काव्यार्थ-

ऐश्वर्यवान् राजा औ पोषक रहे मंत्री,
भ्रमणार्थ सभी मार्गों, दिशाओं में जाएं;

जिससे कि पीर-दाता घोर शत्रु की सभी-
सेनाएं भयभीत, नहीं पास में आएं।

मंत्र- मढा अभित्राश्चरताशीर्षाण इवाहयः। तेषां वो अग्निमूढानामिन्द्रा हन्तु वरंवरम्।।२।।

काव्यार्थ-

हे शत्रु! तू होकर भ्रमित, टूटे हुए सिर के-
सांप समान चाल को निज में बिठार दे;
राजा हमारा आग्नेय अस्त्रों से तेरे-
अति श्रेष्ठ-श्रेष्ठ वीरों को चुन-चुन के मार दे।

मंत्र- ऐषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्या भियं कृधि। पराङमित्र ऐषत्वर्वाची गौरूपेषतु।।३।।

काव्यार्थ-

हे सेनापति! ऐश्वर्यवान् और साहसी-
वीरों को चर्म का कवच पहना तू सकारे;
अरू शत्रुओं के मन को हिरन के समान तू-
भयभीत बना, वह नहीं सोचें, न विचारें;
सब शत्रु उल्टे मुँह हो चले जांय, औ उनकी-
भूमि तथा गौ आदि आएं पास हमारे।

सूक्त ६८

मंत्र- आयमगन्त्सविता क्षरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि। आदित्या रूद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यह नापित आया हुआ लिये उस्तरा हाथ।
शीघ्रगामी नर आ यहां लिये तप्त जल हाथ।।
श्रेष्ठ पुरूष अति ज्योतिमय अतुल ज्ञान-सम्पन्न।
यहां आइये आप हो मन में अधिक प्रसन्न।।
चूणाकर्म सुधर्म में इस बालक के केश।
आप भिगोये एक मन रहते हुए हितेश।।
शान्त स्वभाव तेजमय शिशु का चूणाकर्म।
करवा कर ज्ञानी जनों पालो अपना धर्म।।

मंत्र- अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा। चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

छुरा अखण्डित काटता हो बालक के केश।
निज शोभा से जल उन्हें सिंचित करे अशेष।।
बालक की शुभ दृष्टि अरू दीर्घ जीवन हेतु।
पिता करे इस कर्म से उपचार हैं जेतु।।

मंत्र- येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरूणस्य विद्वान्। तेन ब्रह्मणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान्।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यह नापित फुरतीला जो जाने अपना कर्म।
तथा कुशलता से करे पालन अपना धर्म।।
उत्तम बालक शांत अरू अतुल तेज से सोय।
उसका मुण्डन जैसे यह नापित करता होय।।
अहे ब्राह्मण! उसी विधि को अपना कर तूर्ण।
करवाओ इस बालक के सिर का मुण्डन पूर्ण।।
इस बालक को कीजिये उत्तम गौओं साथ।
उत्तम घोड़ों और शुभ सन्तानों का नाथ।।

सूक्त ६९

मंत्र- गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद्यशः। सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जिस यश का है वास यति उपदेशकों में,
अरू जो कि तत् सहगामियों में रहता;
जो सुवर्ण आदि मूल्यवान वस्तुओं में रहे,
नाना विद्याओं बीच जो कि सदा बहता।
अरू वह मधु जो कि बहते जलों के बीच,
अन्न बने जिस हेतु सबका ही चहता;
वह यश और मधु मुझमें भी वास करे,
प्रभु से विनय यह बार-बार कहता।।

मंत्र- अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती। यथा भर्गस्वतीं वाचमावदानि जनां अनु।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सकल शुभ कर्म पालने में अति ही विख्यात।
शुभ कर्मों में व्याप्ति मय मेरे पिता अरू मात।।
मुझे सार युत ज्ञान का दो उत्तम आलोक।
जिससे जनता बीच हों मेरे तेजमय बोल।।

मंत्र- मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः। तन्मयि प्रजापतिर्दिविद्यामिव दृंहतु।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रजापति! हम तेज यश का बोलें नित तूर।
यज्ञ सार को दृढ़ करो जैसे नभ में सूर।।

सूक्त ७०

मंत्र- यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने। यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः। एवा ते अध्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जैसे ज्ञान, जैसे ऐश्वर्य, नाना व्यवहार,
व्यवहार युक्त राज द्वार बीच रहते;
जैसे वीर्यवान बलवान व्यक्ति का मन,
थिरता के साथ स्त्री में रहे बहते।
वैसे ही न मारने के योग्य गऊ का मन,
थिरता के साथ बछड़े में लगे महते;
अरू तद् रीति हे अबध्य भक्त तेरा मन,
प्रभु-भक्ति भाव थिरता से रहे गहते।।

मंत्र- यथाहस्ती हस्तिन्या पदेन पदमुद्युजे। यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः। एवा ते अध्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम्।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जिस भांति मदमस्त रहे, हस्ती के पैर,
हथिनी के पद-चिन्हों का साथ चहते,
जैसे वीर्यवान बलवान....

(शेष मंत्र १ की भांति)

मंत्र- यथा प्रधिर्यथोपधिर्यिथा भ्यं प्रधावधि। यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यतेमनः। एवा ते अध्यन्ये मनोऽधिवत्सेनिहन्यताम्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

लौह हाल चक्र पर, चक्र अरों पर, व-
जैसे चक्र नाभि को अरों के बीच कहते,
जैसे वीर्यवान बलवान.....

(शेष मंत्र १ की भांति)

सूक्त ७१

मंत्र- यदन्नमध्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम्। यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

नाना रूप अन्न जो मैं खाता पर्याप्त।
स्वर्ण, अश्व, गौ, भेड़ अरू बकरी जो भी प्राप्त।।
उसे धार्मिक रीति से कर दीजे स्वीकार।
प्रभुवर! दाता आप हैं अतुलित धन भण्डार।।

मंत्र- यन्माहुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः। यस्मान्मे मन उदिवंरारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु।।२।।

काव्यार्थ-

दिया हुआ धन या कि जो नहीं दिया धन होय।
या पितरों का दिया धन जो कि मुझे सुख बोय।।
जिसका मनुजों ने किया अनुमोदन सप्रीति।
जिसके कारण मन मेरा मुदित होय शुभ रीति।।
उसे धार्मिक रीति से कर दीजे स्वीकार।
प्रभुवर! दाता आप हैं अतुलित धन भण्डार।।

मंत्र- यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि। वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे अतीव विद्वान पुरूषों! मैं जो भी अन्न-
खाता हूं असत्य-व्यवहार-स्तूप हो;
दान करता हुआ या दान नहीं करता मैं,
जो कुछ भी संग्रहीत करता अचूक हो।
वह सब पूजनीय जन-जन हितकारी-
प्रभु की कृपा से मुझे मोद भरा कूप हो;
अरू उस परमेश की अपूर्व महिमा से,
मेरे लिये सुखकारी मधुमय रूप हो।।

सूक्त ७२

मंत्र- यथासितः प्रथयते वशां अनु वपूंषि कृणवन्नसुरस्य मायया। एवा ते शेपः सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गंसंसमकं कृणोतु।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ज्यो प्रभु, आश्रित जीवों को देने को आकार।
बुद्धि से बहु तन बना करता है विस्तार।।
त्यों ही सब सामर्थ्य कर सहनशक्ति संग ठुक्त।
तेरे अंग, अंग संग करे भली भांति संयुक्त।।

मंत्र- यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतंम्। यावत्परस्वतःपसस्तावत्ते वर्धतां पसः।।२।।

काव्यार्थ-

जैसे कि श्रेष्ठ राजा को उत्तम प्रबन्ध से,
तत् राज्य नित्य-नित्य उन्नति-शिखर चढ़े,
सम्मान पूर्ण राज्य ज्यों उद्यम के योग से,
मनुष्यों बीच रहता है प्रकाश से जड़ें,
वैसे ही पालने में शक्ति प्राप्त पुरूष का-
होता है जितना राज्य, उतना तेरा भी बढ़े।

मंत्र- यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभरं च यत्। यावदश्वस्य वाजिनस्तावत्ते वर्धतां पसः।।३।।

काव्यार्थ-

राज्य के सभी अंगो से परिपूर्ण रहे औ-
जितना सदा पालन-समर्थ पुरूषों से मढ़ें;
बोझा उठाने वाले बैलों, गदहों आदि से,
होकर के युक्त जितना कि रहता रहे खड़े;
जितना कि अन्न युक्त बलवान राजा का,
रहता है बढ़ा राज्य, उतना तेरा भी बढ़े।

नोट- राज्य के अंग-राजा, मंत्री, मित्र, कोश, राज्य-प्रबंध, गढ़, सेना।

सूक्त ७३

मंत्र- एह यातु वरूणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु। अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः।।१।।

काव्यार्थ-

सूर्य सा प्रतापी अरू चन्द्र जैसा शान्त,
अग्नि समान तेजस्वी व्यक्ति यहां आवे;
आवे यहां पर अत्यन्त ही धनी, तथा वह-
जो वहत् वेद वाणी रक्षण में यश कमावे;
हे सजातीयों! तुम सब इस तेजवान ज्ञानी-
का मान कर बनाओ बहु सम्पदा के ठांवे।

मंत्र- यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा। तान्तसीवयाभि हविषा घृतेन मयि सजाता सरमतिर्वो अस्तु।।२।।

काव्यार्थ-

विज्ञों! जो पराक्रम तुम्हारे हृदय बीच है,
संकल्प जो प्रविष्ट हुआ मन में तुम्हारे,
इससे मैं पूत अन्न, जल से तुमको सेवता,
मुझ पर प्रसन्न होओ सजातीय हमारे।

मंत्र- इहैव स्त माप याताध्यस्मत्पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु। वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु।।३।।

काव्यार्थ-

हमसे न दूर जाओ विज्ञों! यहां ही रहो,
तुमको गृहस्थ सर्वदा ही भय से उबारे,

वह तुमको निरन्तर ही बुलाता रहे घर पर,
मुझ पर प्रसन्न होओ सजातीय हमारे।

सूक्त ७४

मंत्र- सं वः पृच्यन्तां तन्व १ः सं मनांसि समु व्रता। सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत्।।१।।

काव्यार्थ-

विज्ञों! मनन सामर्थ्य औ विद्याएं तुम्हारी,
अरू कर्म भी तुम्हारे यथावत् मिले रहें,
ब्रह्माण्ड-पति ऐश्वर्यवान् ईश ने तुमको,
मिलना है सिखाया कि सब जिससे खिले रहें।

मंत्र- संसज्ञपनं वो मनसोऽयो संज्ञपनं हृद। अथा भगस्य यच्छान्तं तेनं संज्ञपयामि वः।।२।।

काव्यार्थ-

अभ्यास मिले रहने का मन में हो तुम्हारे,
अभ्यास मिले रहने का हृदय में बना हो,
भगवान की प्राप्ति का जो तप होता है, उससे-
भी तुमको मिले रहने का अभ्यास घना हो।

मंत्र- यथादित्या वसुभिः संवभूवुर्मरू द्विरूग्रा अहणीय-मानाः। एवा त्रिणामन्नहृणीयमान इमांजनान्त्संमनसस्कृधीह।।३।।

काव्यार्थ-

जिस भांति पूर्व विज्ञ तेज औ प्रकाशमय,
संकोच न करते हुए किसी प्रकार का;
उत्तम गुणों व शत्रु-हंता वीर जन सहित,
अति वीर हुए शौर्य की धारे अपारता;
वैसे ही हे त्रिलोकीनाथ परमेश्वर।
तू क्रोध न करते, इन्हें कर एक विचार का।

सूक्त ७५

मंत्र- निरमुं नुद ओकसः सपत्नोः पृतन्यति। नैर्बाध्येन हविषेन्द्र एवं पराशरीत्।।१।।

काव्यार्थ-

जो शत्रु सेनाएं लिये करता है आक्रमण,
निज धान से उसको तू भगा दूर डाल दे;
अत्यन्त ही प्रतापी वीर राजा हमारा,
निर्विध्न समर्पण से उसे मार डाल दे।

मंत्र- परमां तं परावतमिन्द्रो नुदतु वृत्रहा। यतो न पुनरायति शाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।२।।

काव्यार्थ-

शत्रु का विनाशक प्रतापी राजा हमारा,
शत्रु को त्रास दे, सभी शत्रु सदा भखें;
उस शत्रु को दूराति दूर थल को भाग दे,
वह शत्रु वहां से नहीं फिर लौट आ सके।

मंत्र- एतु तिस्रः परावत एतु पंच जनां अति। एतु तिस्रोऽति रोचना यतो न पुनरायति शाश्वतीभ्यः समाभ्यो यावत्सूर्यो असद्दिवि।।३।।

काव्यार्थ-

तीनों ही दूर के थलों से शत्रु दूर हों,
पांचों प्रकार के जनों से दूर वह जावें;
वह तीन ज्योतियों से बहुत बहुत दूर हों,
ऐसे कि वहां से कभी वापिस नहीं आवें;
जब तक है नभ में सूर्य, उस शाश्वत समय-
तक शत्रु पुनः लौटकर मुंह को न दिखावे।

सूक्त ७६

मंत्र- य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे। संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरूदेतु, हृदयादधि।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो विद्वान अग्नि को निज बुद्धि में थाप।
उसके गुण गण देखते अरू लेते हैं छाप।।
दीपित कर रखते उसे पूजा घृत से सींच।
उदित होय जिह्वा सहित वह हृदयों के बीच।।

मंत्र- अग्नेः सांतपनस्याहमायुषे पदमा रभे। अद्धारतिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ताप गुणी अग्नि में जो प्राप्ति योग्य गुण व्याप्त।
उनको लम्बी आयु हित मैं करता हूं प्राप्त।।
अग्नि के मुख द्वारा जो धुआं निकलता जाय।
उसको सत् ज्ञानी निरख बहु उपयोगी पाय।।

मंत्र- यो अस्य समिधं वेदक्षत्रियेण समाहिताम। नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

क्षत्रिय द्वारा समर्पित जो अग्नि हो जाय।
उसकी मूल क्रिया जो व्यक्ति जानने पाय।।
शिल्प, कला यंत्रादि में करता अग्नि प्रयोग।
कुथलों में दारिद्रय से पाता रहे वियोग।।

मंत्र- नैनंरंध्नन्ति पर्यायिणो न सन्नां अव गच्छति। अग्नेर्यः क्षत्रियों विद्वान्नम गृह्णात्यायुषे।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो विद्वान क्षत्रिय आयु बढ़ाने हेतु।
तेज प्रदाता, ताप-दा अग्नि नाम को लेतु।।
उसे घेरने को चले शत्रु न करते घात।
न ही जानता वह, कहां घातक की बारात।।

सूक्त ७७

मंत्र- अस्थाद् द्यौरस्थात्पृथिव्यस्थाद्विश्वमिदं जगत्। आस्थाने पर्वता अस्थु स्थाम्त्यश्वां अतिष्ठिपम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ठहरा है द्यु, पृथिवी भी ठहरी उसी समान।
अरू पर्वत ठहरे हुए हैं अपने स्थान।।
यह सब जग ठहरा हुआ है, मैंने कर ज्ञान।
अपने घोड़ों को किया खड़ा यथा स्थान।।

मंत्र –य उदानट्‌ परायणं य उदानण्न्यायनम्। आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

नीति-निपुण राजा बना जो भू-पालन अर्थ।
जो कि संकटों से निकलने में रहा समर्थ।।
भीतर जाने की रही जिसमें अतुलित शक्ति।
तथा परिस्थिति विषम में जिसे न भाती त्यक्ति।।
योग्य थलों पर आगमन गमन शक्ति जो पाय।
मैं उस श्लाघनीय को सादर रहा बुलाय।

मंत्र- जातवेदो निवर्तय शतं ते सान्त्वावृतः। सहस्रं त उपावृतस्ताभिर्नः पुनरा कृधि।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

इधर लौट सद्ज्ञानयुत पुरूष हमारी ओर।
शत उपाय करते हुए बने आगमन तोर।।
तेरे निकट भ्रमणार्थ हों, मार्ग सहस्र प्रकार।
उन क्रियाओं से तू हमें पुनः पुनः स्वीकार।।

सूक्त ७८

मंत्र- लेन भूतेन हविषायमा प्यायतां पुनः। जायांयामस्मा आवाक्षुस्तांरसेनाभ्विर्धताम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यह पति निज सामर्थ्य से ग्राह्य अन्न बहु पाय।
अरू उस अन्न की पुनः बढ़ली करता जाय।।
प्राप्त कराई है इसे जो पत्नी अति सुष्ट।
उसको भी यह पति करे विविध रसों से पुष्ट।।

मंत्र- अभिवर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम्। रय्या। सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दोनों ही पय पान कर पुष्ट करें निज गात।
तथा उन्नति कर बढ़ें राष्ट्र उन्नति साथ।।

निज पुरूषार्थ से करें सभी अभाव दूर।
सहस्र तेज के धनों से दोनों हों भरपूर।।

मंत्र- त्वष्टा जायामजनयत्त्वष्टास्यै त्वा पतिम् त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्घमायुः कृणोतु वाम्।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

विश्वकर्मा प्रभु ने किया पत्नी को उत्पन्न।
तद हित पति को रच किया रचन कार्य सम्पन्न।।
वहीं करे तुम दोनों को दीर्ध आयु प्रदान।
जियो हजारों वर्षों तक करते कार्य महान।।

सूक्त ७६

मंत्र- अयं नो नभसस्पतिः संस्फानो अभि रक्षतु। असमातिं गृहेषु नः।।१।।

मंत्र- त्वं नो नभस्पते ऊर्जं गृहेषुधारया। आ पुष्टमेत्वा वसु।।२।।

मंत्र- देव संस्फान सहस्रापोशस्येशिषे। तस्य नो रास्व तस्य नो धेहि तस्य ते भक्तिवांसः स्याम।।३।।

काव्यार्थ- गीत

मुसीबत हम पर आए तो हमें तू रक्षते रहना
सदा ही वृद्धिकर्ता, इस गगन के स्वामी परमेश्वर।
मुसीबत हम पर आए तो हमें तू रक्षते रहना।।
गगन के स्वामी परमेश्वर! सकल ऐश्वर्य तव कारण,
हमारे घर में सब ही ओर से भर धन असाधारण,
घरों में बल बढ़ाने वाला अतुलित अन्न तू भर दे,
अपरिमित पुष्टि-दा धन भी हमें तू बख्शते रहना।।
हजारों पुष्टियां तेरी हरें अज्ञान के तम को,
हमारे हित उन्हें तू धार, उनका दान कर हमको,
बना हमको भी निज पोषक रहे सामर्थ्य का भागी,
सदा हितकर रहे सामर्थ्य में तू दक्षते रहना।।

सूक्त ८०

मंत्र- अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत्। गुर्नो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम।।१।।

मंत्र- ये त्रयः कालकांजा दिवि देवाइव श्रिताः। तान्त्सर्वान्त्ण ऊतयेऽस्मा अरिष्टतातये।।२।।

मंत्र- अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं समुद्रेंअन्तर्महिमा ते पृथिव्याम्। शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेन तेविषा विधेम।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

तेरे व्यापक तथा दिव्य स्वरूप का महत्व जो,
उसी हित हम करें श्रद्धा व भक्ति से तेरी सेवा।।
हे परमेश्वर! तू अन्तरिक्ष सा घट-घट का वासी है,
सभी जीवों के कर्मों को सदा ही देखता चलता,
सभी की गणना करने वाले! तव दिव्य प्रकाश जो-
द्यु के अग्नि, वायु, सूर्य त्रि-देवों में है पलता।
हे परमेश्वर! सभी त्रि-देवों को मैंने बुलाया है,
वह कल्याण व रक्षा कर बनें इस जीवन के खेवा।।
हे परमेश्वर! जगत्पालक! तेरी उत्पत्ति प्राणों में,
तेरा द्यु-लोक में वास, गगन भू लोक में महिमा,
प्रभो! तू सर्व-व्यापक है, सभी में तू समाया है,
सभी को मोहता तेरा स्वरूप दिव्यतम छवि का।
तेरे व्यापक तथा दिव्य स्वरूप का महत्व जो,
उसी हित हम करें, श्रद्धा व भक्ति से तेरी सेवा।।

सूक्त ८१

मंत्र- यन्तासि यच्छसे हस्तावप रक्षांसि सेधसि। प्रजां धनं गृहूणानः परिहस्तो अभूदयम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

नियम से चलने वाले तू चले नियम के साथ।
हाथों से नियमन करे झुके विध्न का माथ।।
तू धन अरू सन्तान की रक्षा करता जाय।
तथा सभी के हाथों का मददगार कहलाय।।
संचालित करता गृहस्थ आश्रम को शुभरीति।
हे ऐसे शुभ व्यक्ति सब करते तुझसे प्रीति।।

मंत्र- परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे। मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे हाथों को सहारा देने वाले व्यक्ति।
गर्भ-पुष्टि हित देख घर पूर्ण लगाकर शक्ति।।
गर्भ पुष्ट कर संयमित हे पत्नी प्रसन्न।
तू उसको पूरे समय पर करना उत्पन्न।।

मंत्र- यं प रिहस्तमबिभ दितिः पुत्रकाम्या। त्वष्टा तमस्या आ बध नाद्यथा पुत्रं जनादिति।।३

काव्यार्थ- **दोहा**

पुत्र कामी नारी ने ज्यों धारा पति विख्यात।
उसे सहारा देता जो देकर अपना हाथ।।
विश्वकर्मा परमात्मा त्यों इस नारी हेतु।
वैसा पति दे जो बने पुत्र प्राप्ति का सेतु।।

सूक्त ८२

मंत्र- आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः। इन्द्रस्य वत्रघ्नो वन्वेवासवस्य शक्रतो।।1।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो कि आगमन पूर्व से रखे आगमन चाह।
मेरे पास आया हुआ लिये मिलन उत्साह।।
अंध-विनाशक धनपति करे सैकड़ों काम।
उस प्रभु की मैं कामना करता, लेता नाम।।

मंत्र- येन सूर्यां सावित्रीमश्विनोहतुः पथा। तेन मासब्रबीद्भगो जायामा वहतादिति।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दिन-रात्रि ने जगत् में सुख करने को व्याप्त।
सूर्य प्रभा को किया है जिस मार्ग से प्राप्त।।
उसी मार्ग से प्राप्त कर पत्नी रूप प्रभात।
मेरे प्रभु ने यह कही मुझसे हितकर बात।।

मंत्र- यस्तेऽङ्कुशो वसुदानांबृहन्निंन्द्र हिरण्ययः। तेना जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते।।३।।

काव्यार्थ-

हे ऐश्वर्यवान प्रभु! आप रखते अंकुश एक बड़ा।
जो देता सुवर्ण धन उसको जो रहता तव द्वार खड़ा।।
हे मन, वचन, कर्म के रक्षक मुझ पत्नी इच्छुक वर को।
उस ही अ ंकुश के बल, पावन शुभ पत्नी प्रदान कर दो।।

सूक्त ८३

मंत्र- अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव। सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु।।

मंत्र- एन्येका श्येन्येका कृष्णैका रोहिणी द्वे। सर्वासामग्रभं नामावीरघ्नीरपेतन।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

गण्डमाला रोग! भाग जा यहां से, जैसे निज-
थल से गरूड़ भाग जाए मजबूर हो;
तव नाश हेतु सूर्य औषध बनाये, चन्द्र-
किरणें भगावें तुझे दूर अति दूर को।
श्वेत, काली, हलके व गहरे लाल, चितकबरी,
नाम लिया मैंने जिन गण्डमाला क्रूर को;
वह तुम सब हिंसा न करती जनों की,
भागो अविलम्ब धार वेग भरपूर को।।

मंत्र- असूतिका रामाण्यपचित्प्र पतिष्यति। ग्लोरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति।।३।।

काव्यार्थ-

गण्डमाला जो नाड़ी में छिपकर रहती होय।
वह कर देती नष्ट है सुख अरू शांति दोय।।
पाकर सूर्य चन्द्र की किरणों का उपचार।
चली जाएगी बांझ हो निज जीवन कर क्षार।।
चला जायेगा रोगी का गलने वाला घाव।
सड़ा घाव कोमल बने तन से करे छिपाव।।

मंत्र- बीहि स्वामाहुतिं जुषाणो मनसा स्वाहा मनसा यदिदं जुहोमि।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! शुभ मन वाणी से कहता हूं तव धर्म।
प्रीति युक्त मन धार, कर रोग-विनाशक कर्म।।

सूक्त ८४

मंत्र- यस्यास्त आसनि घोरे जुहोम्येषां बद्धानामवसर्जनाय कम्। भूमिरिति त्वाभिप्रसन्वते जना निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः।।१।।

मंत्र- भूते हविष्मती भवैष ते भागो यो अस्मासु। मुंचेमानमूनेनसः स्वाहा।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दुष्क्रिया! जिस तेरे रौद्र मुख बीच बंधे,
यह प्राणी प्राप्त करते है दुःख महता;
इन प्राणियों को दुःख से छुड़ाने हेतु श्रेष्ठ-
व्यवहार का मैं यह उपदेश कहता।
तुझको अजाने लोग भूमि उन्नति की कहें,
कष्टों की जड़ तुझे मानता मैं रहता;
उत्पन्न दुर्गति तू हमारे हेतु बन,
लेने-देने योग्य क्रिया वाली, यही चहता।।

दोहा

अहे अलक्ष्मी! यह तेरा सेवनीय व्यवहार।
हममें तेरा भाग यह होवे भली प्रकार।।
अगले जन्म के तथा इस जन्म के जीव।
उन्हें पाप से मुक्त कर कहता सत्य अतीव।।

मंत्र- ऐवोष्म१स्मन्निर्ऋतेऽनेहा त्वमयस्मयान्वि चृत बन्धपाशान्। यमो मह्यं पुनरित्वा ददाति तस्मैं यमाय नमो अस्तु मृत्यवे।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हम हित बन अविनाशिनी हे दुर्गति बरजोर।
तथा हमारे लोहे के बन्धन तोड़ कठोर।।
न्यायकारी परमेश यह पाश तोड़ने हेतु।
तुझको बारम्बार दे रचता सुख का सेतु।।

जो दुःख रूप मृत्यु का करवाता संहार।
ऐसे न्यायी ईश को नमस्कार शत बार।।

मंत्र- अयस्मये द्रुपदेबेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम। यमेनत्वं पितृभिःसंविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम्।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! आतृत मृत्यु के सहस्र कारणों बीच।
तुझे लौहमय काष्ठ के बन्धन डाला भींच।
यम, नियमों अरू ज्ञानियों से पा ज्ञानगूढ़।
तू उत्तम आनन्द में इसको कर आरूढ़।।

सूक्त ८५

मंत्र- वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः। यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

करे निवारण रोग का वरण औषधि दिव्य।
विज्ञ वैद्य इस औषधि को कहते हैं भव्य।।
इस नर में जिस यक्ष्मा ने है किया प्रवेश।
उसको वरण औषधि कर देती निःशेष।।

मंत्र- इन्द्रस्य वचसा वयं मित्रस्य वरूणस्य च देवानां सर्वेषां वचा यक्ष्मं ते वारयमहे।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वीर, मित्र सेवकपुरूष करके वचन प्रयोग।
देव वाणी से काटते तेरा यक्ष्मा रोग।।

मंत्र- यथा वृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वधा यतीः। एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यथा मेघ आकाश में बहती चारों ओर-
जल वाष्प को रोकता धन-मण्डल के जोर।।
वैसे ही तव यक्ष्मा को करने को ठीक।
मैं करता तव तन बसी पाचन-शक्ति नीक।।

सूक्त ८६

मंत्र- वृषेन्द्रस्य वृषा दिवो वृषा पृथिव्या अयम्। वृषा विश्वस्य भूतस्य त्वमेकवृषो भव।।१।।

मंत्र- समुद्रईशेस्रवतामग्निः पृथिव्या वशी। चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव।।२।।

मंत्र- सम्राडस्यसुराणां ककुन्मनुष्याणाम् देवानामर्धभागसि त्वमेकवृषो भव।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जैसे प्रभु, सूर्य, अन्तरिक्ष, पृथिवी व सब-
प्राणियों का एकमात्र स्वामी, उन्मेष-दा;
सागर जलों का, सूर्यस्थ अग्नि पृथिवी का,
चन्द्र नक्षत्रों का स्वामी है सुवेश का।
जैसे नर, विज्ञों का भूप, जय कामियों का-
हितकर, रखाता है ज्ञान की अशेषता;
वैसे ही पुरूष! तू शक्ति को बढ़ा के बन-
चक्रवर्ती राजा, एकमात्र स्वामी देश का।।

सूक्त ८७

मंत्र- आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत्। विशस्त्वा सर्वा वांचछन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्।।१।।

मंत्र- इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलत्। इन्द्रे हैव ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

राजन्! प्रजाजन तुझे हैं चुन लाये यहां,
राजसभा बीच अब आकर बन आप्त नर;
निश्चछल स्वभाव, दृढ़ बुद्धि, थिरता को धार,
राज्य कार्यों में नित अपने को व्याप्त कर।
पर्वत समान थिर राजन! यहां ही रह,
प्रजाजन चाहें तुझे, दुखड़े समाप्त कर;

राज्य का उद्धार कर, यह राज्य कभी-
भ्रष्ट नहीं होवे, इसको न कभी शाप्त कर।।

दोहा

रख राज्य अधिकार में बनकर सूर्य समान।
तू पदच्युत मत हो कभी मत हो कभी नमान।।

मंत्र- इन्द्र एतमदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा। तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पति।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

लेन-देन के योग्य दृढ़ शुभ कर्मों के साथ।
यह नृप स्थापित किया प्रभु ने अपने हाथ।।
ब्रह्माण्ड अरू वेद का पालक वही प्रजेश।
इस राजा को नित करे अधिक अधिक उपदेश।।

सूक्त ८८

मंत्र- ध्रुवा द्यौर्ध्रुवो पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्। ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवो राज विशामयम्।।१।।

मंत्र- ध्रुवं ते राजा वरूणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः। ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रे धारयतां ध्रुवम्।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दृढ़ता लिये है द्यौ, भूमि, यह विश्व सब,
दृढ़ता को धार गिरि निज को जमा रखे;
ऐसे ही प्रजाओं द्वारा चुना हुआ राजा यह,
दृढ़ता को लिये निज मस्तक तना रखे।
वह लोक पाल, सेवनीय तथा ज्योतिमय-
परमात्मा सदैव सबको घना लखे;
सम्पूर्ण ऐश्वर्य को जो धरता है, वह-
तव हेतु, तव राज्य स्थिर बना रखे।।

मंत्र- ध्रुवोऽच्युतः प्र मृणीहि शत्रूंछत्रूयतोऽधरान्यादयस्व। सर्वा दिशः संमनसःसध्रचीर्ध्रुवायते समितिः कल्पतामिह।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

राजन! तू दृढ़ औ अचल होकर शत्रु नाश,
शत्रु के सब षड़यंत्र सदा व्यर्थ हों;
उनको सशक्त पैर से सदा दबाए रख,
शत्रुवत् आचरण करते जो मर्त्य हों।
सब ही दिशाओं बीच वास करती प्रजाएं-
चाहती तुझे हों, नहीं करती अनर्थ हों;
होवें वह एक मन वाली, उनकी सभाएं-
स्थिर बनाने हेतु तुझको, समर्थ हों।।

सूक्त ८६

मंत्र- इदं यत्प्रेण्यः शिरो दत्तं सोमेन वृष्णयम्। ततः परि प्रजातेन हार्दिं ते शोचयामसि।।१।।

काव्यार्थ-

बलवान-सिर प्रदानती तृप्ति-दा औषधि,
परमेश्वर प्रदानता वीरत्व हमें हैं,
बलवान सिर के द्वारा और वीरत्व के द्वारा
साहस जो हम सभी के मनोबीच जमे हैं।
हमको मिले हुए उसी साहस से हम तेरी-
हृदयस्थ शक्ति महा शोक बीच डालते,
उस ही से तुझे देते अतुलनीय पीर औ
अपने को सर्वदा महा सुख में बिठालते।।

मंत्र- शोचयामसि ते हार्दिं शोचयामसि ते मनः। वातं धूम इव सध्ग्र्यङ्मावेमान्वेतु ते मनः।।२।।

काव्यार्थ-

हे शत्रु हमारे! तेरी हृदयस्थ शक्ति को,
हम डालते महान शोक बीच में, तथा-
तेरे मनन की शक्ति को भी शोक में रखकर,
सुख चैन छीनते तेरा, देते तुझे व्यथा।

हे शत्रु! धूम्र जोकि रहे वायु से मिला,
वह धूम्र सदा वायु का ही अनुसरण करे;
वैसे ही हे हमारे अशुभ के रहे चिन्तक,
मन तेरा सदा ही हमारा अनुगमन करे।।

मंत्र- मह्यंत्वा मित्रावरूणौमह्यं देवी सरस्वती। मह्यं त्वा मध्यं भूम्या उभावन्तौ समस्यताम्।।३।।

काव्यार्थ-

मम प्राण और अपान तुझे मेरे वश करें,
मम दिव्य-गुणी विद्या भी वश में करे तुझे;
मम भूमिका व मध्य भाग और दोनों ही -
अंतः के भाग भी मेरे वश में करें तुझे।

सूक्त ६०

मंत्र- यां ते रूद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय चः इदं तामद्य। त्वद्वयं विषूचीं वि वृहामसि।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

हे नर! पापी जनों को जो कि रूलाता जाय।
वह प्रभु तेरे कुकर्म लख महा पीर पहुंचाय।।
पीड़ित करने को हृदय अरू अंगों के घोड़।
उसने तुझ पर तीव्रतम बरछी दी है छोड़।।
नाना गति धारक रही वह बरछी ले हाथ।
हम करते हैं नष्ट तव दुष्कर्मों की गाथ।।

मंत्र- यास्ते शतं धमनयोऽङ्गन्यनु विशिष्ठताः। तासां ते सर्वांसा वयं निर्विषाणि ह्यामसि।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

फैली शतशः नाड़ियां जो तव अंग प्रदेश।
हम उनका विष दूर कर करते हैं निःशेष।।

मंत्र- नमस्ते रूद्रास्यते नमः प्रतिहितायै। नमो विसृज्य मानायै नमो निपतितायै।।३।।

काव्यार्थ-

हे वाण छोड़ते प्रभो! तुझको मेरा नमन,
अविरल तू रूलाता सदा ही पाप लिप्त जन।
ताना जो तूने वाण जो तेरा, उसे नमन,
अरू छूट गया वाण जो तेरा उसे नमन।
कर देता है जो सकल पाप शाप का दमन,
उस लक्ष्य पर पड़े हुए तव वाण को नमन।

सूक्त ६१

मंत्र- इमं यवमष्टायोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः। तेना ते तन्वो३रपोऽपाचीनमप व्यये।।१।।

काव्यार्थ- **गीत**

पाप की करके गति विपरीत।
दोष-मुक्त कर तुझे बनाता हूं मैं सबका मीत।।
जिन महात्माओं ने कर अष्टांग योग, षड् योग,
इस प्रभु का पाया जो करता है संयोग, वियोग,
उसी कर्म से रोग मिटा तव, करता तुझे अभीत।।

मंत्र- न्यग्वातोवातिन्यक् तपति सूर्यः। नीचीनमध्यन्या दुहे न्यग् भवतु ते रपः।।२।।

काव्यार्थ- **गीत**

अरे नर! मुझको है यह आस।
अधो दिशा चल तेरे पाप का होगा शीघ्र विनाश।।
अधो गति से ज्यों अपान वायु नीचे चलता है;
द्यु लोक का सूर्य अधो-दिशि ज्यों तपता, जलता है,
ज्यों गौ निम्न भाग से देती दुग्ध रूप सुख-रास।।

मंत्र- आप इद्रा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः। आपो विश्वस्य भेषजीस्तासस्ते कृण्वन्तु भेषजम्।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

करे जल तेरा रोग समाप्त।
दोष-निवारण करे तेरा यह, रहे नहीं तू शाप्त।।
जल है निश्चित रूप रोग का नाशक इस जगती में,
औषधि है प्रसिद्ध यह नर की देह पीर-पगती मैं,
सब रोगों की औषधि है यह, सब धरती पर व्याप्त।।

सूक्त ६२

मंत्र- वातरंहा भव वाजिन्युज्यमान इन्द्रस्य याहिप्रसवे मनोजवाः।
युंजन्तु त्वा मरूतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्यु जवं दधातु।।१।।

काव्यार्थ-

राजन्! अतीव वेगवान सावधान हो,
तू वायु के समान वेग धारता रहे;
परमैश्वर्यवान ईश-आज्ञा में हो,
अपने पगों को मोद सहित डारता रहे।
सब दोष-विनाशक अरू बहु ज्ञानियों का दल,
तेरे को राज्य-कार्य में बिठारता रहें;
अरू व्यक्ति सूक्ष्म-दर्शी तत्व-ज्ञानी रहा जो,
वह तव पगों में श्रेष्ठ वेग ढारता रहे।

मंत्र -जवस्ते अर्वन्निहितो गुहा यः श्येने वात उत योऽचरत्परीत्तः।
तेन त्वं वाजिन्बलवान्बलेनाजिं जय समने पारयिष्णुः।।२।।

काव्यार्थ-

गतिशील हू राजन! जो वेग तेरे हृदय में,
जो तेरा वेग बाज पक्षी औ पवन के बीच है;
अन्यत्र वेगवान रहे हैं पदार्थ, जो-
प्रारंभ से ही रहा उन सबन को सींच है।
राजन! तू उस ही वेग से अत्यन्त बली हो,
अति तीव्र भय को शत्रु-हृदय बीच व्याप्त कर;
बन कर के खिवैया तू राष्ट्र रूपी नाव का,
संग्राम में सदैव ही विजय को प्राप्त कर।

मंत्र- तनूष्टे वाजिन्तन्वंऽनयन्तीवाममस्मभ्यं धावतु शर्म तुभ्यम्। अह्रुतो महो धरूणा-यदेवो दिवीव ज्योतिःस्वमा मिमीयात्।।३।।

काव्यार्थ-

बलवान, वीर्यवान हे राजन्! सदैव ही;
तन तेरा शत्रु-हृदय में भय व्याप्त कराए,
वाहक बने हमारे तन का और हमारे-
व तेरे हेतु धन तथा सुख प्राप्त कराए।
हे कुटिलता से दूर, विजय चाहने वाले-
राजन् तू प्रजाओं के धारणार्थ तना चल;
तू द्यौ बीच तेजपूर्ण सूर्य की भांति,
महनीय तेज को भली प्रकार बना चल।

सूक्त ९३

मंत्र- यमोमृत्युरघमारो निर्ऋथोबभ्रुःशर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः। देवजनाःसेनयोत्तस्थिवांस्तेअस्माकं परिवृंजन्तु वीरान्।।१।।

काव्यार्थ-

वह न्यायकारी ईश पापियों को मारता,
जिसको कि लोग प्राण-संहारक कहा करें,
दुष्टों को निरन्तर ही पीर देता है, जिससे-
सज्जन जनों के कष्ट सदा ही दहा करें।
जो प्राण ग्रहण करने वाला, निधियों का दाता,
जो धार्मिकों को पोसता, उन पर छंहा करें,
यह जान दिव्य जन ससैन्य शत्रु पर चढ़ते,
निज वीरों को विघ्नों से बचाते रहा करें।

मंत्र- मनसा हो मैंर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय। नमस्येभ्यो नम एभ्यः कृणोभ्यन्यत्रास्मदधविषा नयन्तु।।२।।

काव्यार्थ-

जो अन्ध नाशता है, जो प्रकाश साथ है,
धर्मात्मा जनों के कष्ट करता है दमन

जो ग्रहण करने वाला और सुख का प्रदाता,
परमेश्वर है जिसका नाम, जिसका ये चमन।
दूजे जो उसके भक्त कर्म योगी महात्मा,
पथ श्रेष्ठ दिखाते जनों में करते जो रमन;
इन दोनों को आदान औ प्रदान के रहे-
व्यवहार और मन के साथ मेरा है नमन;
इन दोनों के उपदेशों पर चल, पाप रूप की-
विष से भरी पीड़ाओं का हम कर चलें हवन।

मंत्र- त्रायध्वं नो अधविषाभ्योवधाद्विश्वे दरेवा मरूतो विश्ववेदसः। अग्नीषोमा वरूणः पूतदक्षा वातापार्जन्ययोः सुमृतौ स्याम।।३।।

काव्यार्थ-

दोहा

हे समस्त दिव्य गुणी सर्वज्ञान सम्पन्न।
आप किया करते सकल दोषों को अवसन्न।।
पाप रूपी विष-पीर नित हमको देती ताप।
तथा नाश है कर रही शीघ्र बचाओ आप।।
अग्नि, चन्द्र, रवि, वायु औ मेघ पूत-बल युक्त।
इनकी सुमति में रहें पाप-कर्म से मुक्त।।

सूक्त ६४

मंत्र- सं वो मनांसि सं व्रतो समाकूतीर्नमामसि। अमी ये विव्रता स्थन तान्वः सं नमयामसि।।१।।

काव्यार्थ-

हों मन तुम्हारे एक जैसे कर्म एक समान हों,
संकल्प होवें एक जैसे, एक ही को नमान हो;
जो जन परस्पर नित विरूद्ध कर्म में संलग्न हों,
सहमत बनें तुमसे, तुम्हारा साथ पाकर मग्न हों।

मंत्र- अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्त मनु चित्तेभिरेत। मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवत्मीन एत।।२।।

काव्यार्थ-

मैं अपने मन के द्वारा तुम सभी के मनों को-
लेता हूं खेंच, पूर्णतः वश में किया करूं;
तुम भी मेरे अनुकूल अपने चित्त बनाकर,
आओ यहां पर, मैं तुम्हें सुख को दिया करूं-
निश्चिन्त हो दृढ़ता के साथ तुम चलो पीछे-
उस मार्ग पर, जिस मार्ग मैं चलना लिया करूं।

मंत्र- ओते में द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती। ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्चर्ध्यास्मेदं सरस्वति।।३।।

काव्यार्थ-

मेरे लिये द्यु और भू गुंथे हुए, तथा-
दिव्य सरस्वती भी परस्पर मिली हुई;
मेरे लिये जल से भरी मेघों को टुकड़ियाँ
अरू अग्नि परस्पर गुंथी रहती खिली हुई;
हम सब ही से उपकार लें, दिव्य सरस्वती!
वैभव तथा समृद्धि हो हमसे हिली हुई।

सूक्त ९५

मंत्र- अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि। तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत।।१।।

काव्यार्थ-

निकृष्ट अरू मध्यम से परे श्रेष्ठ गति तीजी,
जो कि ठहरती वीरों में, थिर रहती विज्ञ घनों में;
उस गति से परिपूर्ण सुखों के दर्शन होने जैसा,
पुरूष गुण-परीक्षक को पाया है योगी महत् जनों ने।

मंत्र- हिरण्यमयी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि। तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत।।२।।

काव्यार्थ-

तेजपूर्ण, तेजोमय बन्धन बंधी नाव विद्या की,
जो प्रकाश के लोक बीच अति ही गतिमान रही थी;

पुरूष गुण-परीक्षक, बुद्धि में अमृत-पुष्प समान,
विज्ञों ने कर प्राप्त वहां से सुख की छांह लही थी।

मंत्र- गर्भो अस्योषधीनां गर्भों हिमवतामुत। गर्भोविश्वस्य भूतस्येमं में अगदं कृधि।।३।।

काव्यार्थ-

परमेश! ताप रखने वाले जो लोक दिखते,
उन सूर्य आदिकों का आधार एक तू है;
जल, मेघ आदि जो हैं शीत स्पर्श वाले,
परमेश! उनका भी बस आधार एक तू है;
मम हेतु इस जगत को तू दोष रहित कर दे,
सब प्राणी समूहों का आधार एक तू है।

सूक्त ९६

मंत्र- य ओषधयः सोमराज्ञीर्वह्वीः शतविचक्षणाः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुंचन्त्वंहसः।।१

काव्यार्थ-

जिनमें सोम मुख्य है ऐसी औघधि अनेक।
जो शतशः कथनीय अरू दर्शनीय गुण-लेख।।
महत् ज्ञानी इनका किया करते हैं उपयोग।
ताप-नाशिनी बहुत सी हरें हमारा रोग।।

मंत्र- मुंचन्तु मा शपथ्या३दथो वरूण्यादुत। अथो यमस्य पड्वीशात् विश्वस्मा द्देवकिल्बिषात्।।२।।

काव्यार्थ-

है औषधे! तू मुझको उन दोषो से मुक्त कर,
जो दुर्वचन सम्बन्धी मेरे बीच रहे हैं;
सम्बन्ध श्रेष्ठों जनित अपराध से है जिनका,
जो दोष इन्द्रियों को अधः खींच रहे हैं;
जो न्यायकारी राजा के बन्धन में डालने-
सम्बन्धी रहे, प्राण मेरे मीच रहे हैं।

मंत्र- यच्चक्षरसामनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः। सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु।।३।।

काव्यार्थ-

हमने जो कुछ भी पाप कर्म नेत्रों से किये,
जो कुछ भी किये मन से औ वाणी अबोध से;
जो कुछ भी जागते हुए, सोते हुए किये
जो कुछ भी किये आत्म-प्रेरणा विरोध से;
है प्रार्थना ऐश्वर्यवान् ईश हमारे-
उन पापों को निज धारणा शक्ति से शोध दे।

सूक्त ६७

मंत्र- अभिभूर्यज्ञो अभिभूरग्निरभिभूः सोमो अभिभूरिन्द्रः। अभ्य१हं विश्वाःपृतना यथासान्येवा विधेमाग्नि होत्रा इदं हविः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अपमानित करता खलों को मैं जिस प्रकार।
अरू दुष्टों को हरा कर रखता उन्हें प्रजार।।
जैसे हूं मैं तेजमय सुखकर चन्द्र समान।
वश में करके शत्रु दल रखता उसे नमान।।
पूजनीय अरू शत्रुजित जैसे अग्नि होय।
वैसे यश मय तेग से शत्रु न बचता कोय।।
वैसे ही प्रभु हेतु कर पूत वाणि का योग।
हितकारी इस कर्म को किया करें हम लोग।

मंत्र- स्वधास्तु मित्रावरूणा विपश्चिता प्रजावत्क्षत्रं मधुनेह पिन्वतम्। बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुक्तमस्मत्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्राण अपान सम प्रिय मेरे बुद्धिमान पितु-मात।
आप हेतु हमरा रहे अन्न भाग विख्यात।।
मधु-विद्या रूपी रहा प्रभु-ज्ञान जो ज्ञात।
उससे सींचो, प्रजायुत बने राष्ट्र का गात।।

दूर हटाओ दुर्गति अधोमुखी कर ठुक्त।
अरू कृत पाप से हमें, करो भली विधि मुक्त।।

मंत्र- इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु संरभध्वम् ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्मप्रमणन्तमोजसा।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वीरों हर्ष मनाओ निज वीर सैन्य-पति साथ।
अरि समूह को जीतकर जो झुकवाता माथ।।
शत्रु-हन्ता सैन्य-पति महा प्रतापी शुद्ध।
होकर उसके साथ तुम करो भली-विधि युद्ध।।

सूक्त ९८

मंत्र- इन्द्रोजयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै।चर्कृत्य इड्यो वन्धश्चोपसद्यो नमस्योभवेह।।१।।

काव्यार्थ-

होता है जो शूरवीर जय लभता है सदा,
उसकी पराजय कभी न हुआ करती,
सब ही नृपों के बीच होता है जो श्रेष्ठ नृप,
उसकी सुशोभा बढ़ व्योम छुआ करती;
इस राष्ट्र बीच वन्दनीय हे हमारे नृप,
तव सैन्य युद्ध में विजय बुआ करती,
तू है प्राप्तव्य, स्तुत्य और नमनीय,
तव प्रजा तव शुभता की दुआ करती।।

मंत्र- त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्युस्त्वं भूरभियूतिर्जनानाम। त्वं दैवीर्विशइमावि राजायुष्मत्क्षत्रमजरं ते अस्तु।।२।।

मंत्र- प्राच्या दिशस्त्वभिन्द्रासि राजोतोदीच्या दिशो वृत्रहंछत्रुहोऽसि। यत्र यन्ति स्रीत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ इषि हव्यः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

परमैश्वर्यधारी राज! अधिराज बन,
कीर्तिमान वीर बन जैसे कि अरूण हो;

दिव्य प्रजाओं पर नाना भांति राज्य कर,
उनका समृद्धिकर्ता बन तू करूण हो।
आदर से होकर पुकारने के योग्य चल,
दक्षिण दिशि तक तू, जैसे कि गरूण हो;
हम हेतु राज्य को बना तू श्रेष्ठ जीवन का,
दूर हो जरा से वह, नित्य ही तरूण हो।।

दोहा

पूर्व दिशा का राजा तू हे ऐश्वर्यवान।
उत्तर दिशि अरि नाशता शत्रु नाश की खान।।
तू अति ही बलवान है धैर्य न धरता लेश।
नदियां जातीं जहां तक जीता सभी प्रदेश।।

सूक्त ९९

मंत्र- अभित्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वांहरणाद्धुवे। ह्याम्युग्रं चेत्तारं पुरूणामानमेकजम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे समस्त ऐश्वर्यधारी इन्द्र प्रभु-देव
तू है सर्वव्यापक समस्त जग जानता,
इस हेतु पाप कर्म करने से पूर्व, मात्र-
तुझको हृदय से सर्वदिशि से पुकारता।
तू है तेजपूर्ण, ज्ञात सत्य-असत्य तुझे,
तू है अद्वितीय नाना श्रेष्ठ नाम धारता,
तेरी कर-कर के प्रशंसा हर काल प्रभु,
अपने समस्त पाप-कर्म को बुहारता।।

मंत्र- यो अध सेन्यो वधो जिघांसन्न उदीरते। इन्द्रस्य तम बाहू समन्तं परिदध्मन।।२।।

काव्यार्थ-

यह आज जो अरि-सैन्य-शस्त्र हम को मारने-
के हेतु हमारी दिशा ऊपर उठा हुआ,

रक्षार्थ वहां इन्द्र-प्रभु की भुजाओं का
बल और पराक्रम महा हममें जुटा हुआ।

मंत्र- परि दद्म इन्द्रस्य बाहु समन्तं त्रातुस्त्रायतां नः। देव सवितः सोम राजन्त्सुमनसं मा कृणु स्वस्तये।।३।।

काव्यार्थ-

रक्षक, महा-प्रतापी प्रभु-इन्द्र की भुजा सम,
विक्रम को ग्रहण करके हमने हैं तन तनाए,
प्रेरक सभी का वह है ज्योति स्वरूप प्रभुवर,
रक्षा करे हमारी, हम उसके जन जनाए,
राजा प्रभु हमारा,ऐश्वर्य सकल धारे,
कल्याण हेतु मेरा, अति श्रेष्ठ मन बनाए।

सूक्त १००

मंत्र- देवा अदुः सूर्यो अदाद द्यौरदात्पृथिव्यदात्। तिस्रः सरस्वतीरदुः सचित्ता विषदूषणम्।।१।।

काव्यार्थ-

जल के प्रदाता मेघों ने विष दूर करने का-
उपाय दिया और सूर्य ने भी है दिया;
द्यु-लोक ने दिया, दिया है पृथिवी लोक ने,
अरू तीन देवियों ने सभी उस ज्ञान को दिया।

(तीन देवियां- भारती, इड़ा, सरस्वती)

मंत्र- यज्ञो देवा उपजका असिंचन्धन्वन्युदकम्। तेन देवप्रसूतेनेदं दूषयता विषम।।२।।

काव्यार्थ-

परमेश के सहारे रहे प्राणियों, सुनो,
विद्वानों ने तुम्हारे लिये जिस निजन थली-
को जल के द्वारा सींचा है विज्ञान सहारे,
जिससे हुए सभी प्रकार के महाबली,
विद्वानों का दिया हुआ यह जल है औषधि,
इससे हनो तुम शत्रु रूप विष महा छली।

मंत्र- असुराणां दुहितासि सा देवानामसि स्वसा। दिवसपृथिव्या संभूता सा चकर्थारसं विषम्।।३।।

काव्यार्थ-

हे औषधि! सुविज्ञों की तू कामना पूरक,
तूने गुणों के बीच ज्योति को घना किया,
निज में असह्य ताप को धारे हुए प्रखर-
नभ-सूर्य से संयोग है अपना बना लिया,
संयोग से पृथिवी के तूने जन्म धार कर,
घातक बलिष्ठ विष अति निर्बल बना दिया।

सूक्त १०१

मंत्र- आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च। यथांगं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि।।१।।

काव्यार्थ-

हे राजन! तू आचरण ऐसा करता होय।
जैसा ऐश्वर्यमयी नर करता है कोय।।
हे राजन्! तू संयमी दीर्घ जीवन धार।
तथा राज्य विस्तारता हमको दे विस्तार।।
साम, दाम, दण्ड अरू भेद रूप दिशि चार।
में सामर्थ्य-वृद्धि हित शुभ नीति विस्तार।।

मंत्र- येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम्। तेनास्य ब्रह्मणस्पते धेनुरिवा तानया पसः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दुर्बल व्यक्ति जिस कर्म द्वारा बल को पाय।
अरू अशांत आतुर बना हुआ व्यक्ति हर्षाय।।
उसी कर्म से वेद-पति प्रभु तू धनुष प्रकार।
इस राजा के राज्य को शुभ रीति विस्तार।।

मंत्र- आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि। क्रमस्वर्शइव रोहितमनवग्लायता सदा।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

धनु पर दृढ़ता से चढ़ी डोरी के समरूप।
राजन! मैं विस्तारता हूं तब राज्य अनूप।।
हिंस्र पशु ज्यों हिरण पर करे आक्रमण दौड़।
बिना रूकावट आक्रमण कर तू, शत्रु मरोड़।।

सूक्त १०२

मंत्र- यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते। एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सूर्य चन्द्र सम नियमों के पालक व्यक्ति नेक।
अपर अश्व के संग जुते इस अश्व को देख।।
जैसे यह मिलकर चले अपर अश्व के साथ।
वैसे तव मन मेरे वश होकर पकड़े हाथ।।

मंत्र- आंजनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्यं च। तुरो भगस्य हस्ताभ्ययामनुरोधनमुद्भरे।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जिसने प्रकट संसार को किया है, जो कि-
भरता हृदय सदा आनन्द के साथ में;
करता ही रहता परख जो गुणों की, तथा-
रहता जो बन्धनों को काटने की घात में।
महनीय ऐश्वर्य धारता है, जो कि सदा-
भक्त को भिगोता ऐश्वर्य-बरसात में,
ऐसा अति शीघ्रकारी ब्रह्म पूजने के लिये,
अनुकूलता से धारता हूँ दोनों हाथ में।।

मंत्र- आहं खिदामि ते मनो राजाश्वःपृष्ट्यामिव। रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मैं तव मन को खेंचता अपनी ओर प्रकाम।
यथा सुसारथि घोड़े की खेंचा करे लगाम।।

हे नर! मम मन से सदा ही लिपटे मन तोय।
आंधी टूटी घास ज्यों आंधी के संग होय।।

सूक्त १०३

मंत्र- संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत्। संदानं मित्रो अर्यमा संदानं भगोअश्विना।।१।।

काव्यार्थ-

हे शत्रुओं! इस युद्ध क्षेत्र बीच हमारे-
अत्यन्त ही महान सैनिकों का सैन्य पति;
उनमें जो भरता जोश है, देता है प्रेरणा,
तुमको वह नष्ट कर, करे तुम्हारी दुर्गति।
वह सबका मित्र न्यायाधीश बांध ले तुम्हें,
कर दे तुम्हारे टुकड़े, स्वाद जीत का चखे,
सूर्य व चन्द्र के समान वह नियम वाला-
ऐश्वर्य वाला राजा तुम्हे बांधकर रखे।

मंत्र- सं परमान्त्समवमानथो सं द्यामि मध्यमान्। इन्द्रस्तान्पर्यहार्दाम्ना तानग्ने संद्या त्वम।।२।।

काव्यार्थ-

मैं दूर रहे शत्रु-सैनिकों, व पास के,
अरू बीच रहे शत्रु-सैनिकों को काटता,
महा-प्रतापी राजा भी समस्त शत्रुओं-
का करके सर्वनाश रहे भूमि पाटता।
राजन्! हे विद्वान! शत्रु-दल को बांधकर,
ऐसा बना, सदैव रहे धूल चाटता।

मंत्र- अभी ये युधमायन्ति केतून्कृत्वानीकशः। इन्द्रस्तान्यपर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम्।।३।।

काव्यार्थ-

यह शत्रु के सैनिक जो आ रहे हैं युद्ध को,
लेकरके अपनी अपनी पताका नवीनतर,

निज टुकड़ियों के साथ जो करते हैं आक्रमण,
अपने को घोर-द्वेषभाव बीच लीन कर।
राजा अतीव शूरवीर और प्रतापी,
अविलम्ब मारडाले उन्हें बीन-बीन कर
विद्वान हे राजन्। तू अपने पाश बीच में,
इन सबको बांध रख इन्हें अपनी आधीन कर।

सूक्त १०४

मंत्र- अदानेन संदानेनामित्राना द्यामसि। अपानये चैषां प्राणा असुनासून्त्समच्छिदन्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हम अपने शत्रु सभी देते बांध सकाश।
लेकर बन्धन पाश अरू ले आकर्षक पाश।।
प्राण अपान वायु से संचालित अरि प्राण।
निज वीरों ने बुद्धि से दिये काट कर डाल।।

मंत्र- इदमादानमकरं तपसेन्द्रेण संशितम् अमित्रायेऽत्र नः सन्ति तानग्न आद्यात्वम्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

महनीय आचार्यों से तीक्ष्ण हुआ सकाश।
मैंने तप से बनाया यह आकर्षक पाश।।
अपने जो शत्रु यहां करते बहुत विनाश।
हे तेजस्वी भूप! तू उनको बांध सकाश।।

मंत्र- एनान्द्यतामन्द्रिाग्नी सोमो राजा च मेदिनौ। इन्द्रो मरूत्वानादानममित्रेभ्यः कृणोतु नः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अग्नि वायु के सम गुणी सैन्य-सचिव अरू भूप।
शत्रु बांध लेवें त्वरित किंचित रहें न चूप।।
महा प्रतापी राजा निज शूरों संग सकाश।
शत्रु बांधने हित रचे शुभ आकर्षण-पाश।।

सूक्त १०५

मंत्र- यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत्। एवं त्वं कासे प्रपत मनसोऽनु प्रवाज्यम्।।१।।

काव्यार्थ-

मनुज! तू ज्ञानपूर्वक शुभ-करम में मन लगाया कर।।
यथा गतिशील मन, मन के विषय संग दूर तक जाता,
जो मन की कु-प्रवृत्ति रोकता है, श्रेष्ठ फल पताा,
उसी विधि तू नहीं मन को कभी इत-उत भगाया कर।।

मंत्र- यथा बाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत्। एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनुसंवतम्।।२।।

काव्यार्थ-

तू भू की वांछित सब वस्तुओं में मन लगाया कर।।
यथाविधि छूटकर अति तीक्ष्ण बाण वेग से बढ़ता,
यथा वह शीघ्र जाकर दूर अपने लक्ष्य पर गडता,
उसी विधि ज्ञान अरू उपाय को तू भी जगाया कर।।

मंत्र- यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतत्याशुमत्। एवा त्वं कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम्।।३।।

काव्यार्थ-

मनुज! व्यवधान बिन आगे सदा ही पग बढ़ाया कर।।
यथा व्यवधान बिन सूर्य की किरणें अग्र बढ़ जातीं,
उसी विधि बुद्धिबल से शीघ्रगामी बन भली भांति,
तू अन्तरिक्ष में निज वायुयानों को चढ़ाया कर।।

सूक्त १०६

मंत्र- आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः। उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तेरे घर के आगे अरू पीछे होवे दूब।
तथा सुगन्धित फूल भी खिले हुए हों, खूब।।

खिले कमल के फूलों युत बना हुआ हो ताल।
स्वच्छ पानी का हौज हो करें किलोलें बाल।।

सूक्त १०६

मंत्र- अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम्। मध्येहृदयस्य नो गुहाः पराचीना मुखा कृधि।।२।।

काव्यार्थ-

जल-प्रवाह बहते हुए होवें घर के पास।
तथा आमने सामने द्वार खिड़कियां खास।।
तेरे घर के पास नित सागर लेय हिलोर।
जल की खाई हो बनी घर के चारों ओर।।

मंत्र- हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परिव्ययामसि। शीत हृदाहि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम्।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे शाले! तव शीत को जीर्ण करने हेतु।
हम अत्यन्त ही सुदृढ़ अग्नि-वस्त्र को लेतु।।
जब तू शीत काल में होत ताल सम जाम।
अग्नि शीत भय के निवारण का करता काम।।

सूक्त १०७

मंत्र- विश्वजित् त्रायमाणायै मा परि देहि। त्रायमाणे द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम्।।१।।

काव्यार्थ-

हे संसार जीतने वाले! जगत विजेयता नमन तुझे।
जो सबकी रक्षा करती, वह रक्षक शक्ति सौंप मुझे।।
जगत-विजेयता! तू अपने सब द्विपद-चतुष्पद रक्षा कर।
तथा सकल धन रक्ष हमारे, चोर लुटेरे भक्षा कर।।

मंत्र- त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि। विश्वजिद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्या च्च नः स्वम्।।२।।

काव्यार्थ-

सबकी रक्षा करने वाली रक्षक शक्ति नमन तुझे।
जिसने जीत लिया सब जग वह जगत-विजेयता सौंप मुझे।।
जगत-विजेयता! तू अपने सब द्विपद चतुष्पद रक्षा कर।
तथा सकल धन रक्ष हमारे, चोर लुटेरे भक्षा कर।।

मंत्र- विश्वजित्कल्याण्यै मा परि देहि। कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम्।।३।।

काव्यार्थ-

हे संसार जीतने वाले जग विजेयता नमन तुझे।
करती जो कल्याण रही, कल्याणी शक्ति सौंप मुझे।।
हे कल्याणी! तू अपने सब द्विपद-चतुष्पद रक्षा कर।
तथा सकल धन रक्ष हमारे, चोर-लुटेरे भक्ष कर।।

मंत्र- कल्याणि सर्व विदे मा परि देहि। सर्वविद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम्।।४।।

काव्यार्थ-

सबका मंगल करने वाली, हे कल्याणी! नमन तुझे।
जो सर्वज्ञ कहाता है, तू पहुंचा उसके भवन मुझे।।
हे सर्वज्ञ रहे! अपने सब द्विपद चतुष्पद रक्षा कर।
तथा सकल धन रक्ष हमारे, चोर लुटेरे भक्षा कर।।

सूक्त १०८

मंत्र- त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गेहि। त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पूजनीय सबसे प्रथम सबसे अधिक हमार।
मेधा-बुद्धि! शीघ्र कर जीवन का उद्धार।।
सूर्य-रश्मियों को लिये भरते हुए प्रकाश।
गौ, घोड़ों के साथ आ तू जन-जन के पास।।

मंत्र- मेधा महं प्रथमा ब्रह्मण्वतीं ब्रजूतामृषिष्टुताम्। प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जो प्रथम स्थान प्राप्त ज्ञानियों से जुड़ी,
ज्ञानियों में रही सेवनीय जो विषय है;
मोक्ष कामना लिये समस्त श्रेष्ठ ऋषियों ने,
जिसमें सदैव किया निज को विलय है।
ब्रह्मचारीगण स्वीकारते जिसे सदैव,
लभते सदैव रहे जिससे विजय है;
ऐसी श्रेष्ठ मेधा बुद्धि दिव्य गुण रक्षार्थ,
देवे परमेश, यही प्रार्थना विनय है।।

मंत्र- यां मेधामृभवो विदुर्यां मेघामसुरा विदुः। ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि।।३।।

मंत्र- या मृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सत्य साथ ज्योतिमान महनीय जन, जिस-
निश्छल बुद्धि को सदैव रहे जानते;
जानते जिसे हैं प्राण-विद्या में रमे जो जन,
ऋषि लोग जिस कल्याणी को बखानते।
जिसको पदार्थ-निर्माता सम्मानते हैं,
बुद्धिमान ऋषि लोग जिसको हैं तानते;
उस ही को हम अपने में थापते हैं, अग्नि-
उस ही के द्वारा आज मुझे रख सानते।।

मंत्र- मेधां सायं मेधां प्रातर्मे मध्यन्दिनं परि। मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

श्रेष्ठ गुण वाली वह मेधा-बुद्धि जिससे कि-
मन औ वचन, कर्म बीच रहे पाप ना;
जो कि स्मरण रखाती सदैव धर्म का है,
जिससे कि रंच कहीं रहता है ताप ना।

हम उसको सदैव सायं व प्रातः काल
अरू मध्याहन काल करते अलापना,
अरू सूर्य- किरणों समान शुभ वचनों से,
करके ग्रहण, करते हैं स्थापना।।

सूक्त १०९

मंत्र- पिप्पली क्षिप्तभेषज्य ३तातिविद्धभेषजी। तां देवाः समृकल्पयन्नियं जीवितवा अलम्।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

उन्माद की औषधि पिप्पली जिसका नाम।
बड़े घाव को मेटने में भी करती काम।।
यही एक है औषधि कहते हैं विद्वान्।
जो कि जिलाती मनुज को करती रोग-निदान।।

मंत्र- पिप्पल्य१ः समवदन्तायतीर्जननादधि। यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरूषः।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

पिप्पली, आती जन्म से कहे बात हर्षाय।
हमें जो खाये जीव वह कभी न मरने पाय।।

मंत्र- असुरास्त्वा न्यखनन्दे वास्त्वोदव पन्पुनः। वार्तीकृतस्य भेषजीम थोक्षिप्तस्य भेषजीम्।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

पिप्पली! तुझे उन्माद अरू वात औषधि जान।
प्रथम उखाड़ा विज्ञों ने तेरी कर पहचान।।
फिर अति व्यवहार कुशल विज्ञों ने शुभ-रीति।
अपने कामों के लिये बोया तुझे सप्रीति।।

सूक्त ११०

मंत्र- प्रत्नों हि कमीड्यो अध्वेषु सनाच्च होता नव्यश्च सतिस। स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे प्राचीन अनुभवी अति ज्ञानी आचार्य।
तू सुख से रहते हुए करे अहिंसक कार्य।।
नूतन उद्योगी, सदा करे अपरिमित दान।
तू स्तुति के योग्य है तेरे कार्य महान्।।
तू तन, मन अरू कर्म से प्रीति अपरिमित धार।
हम सब सज्जन लोगों में शुभ ऐश्वर्य प्रसार।।

मंत्र- ज्येष्ठघ्नयां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात्परि पाह्येनम्। अत्येनं नेषछुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय। शत शारदाय।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ब्रह्म अति उत्तम रहा जो अति श्रेष्ठ कहाय।
उसको पाने में रहा तू प्रसिद्धि को पाय।।
नभ के सूर्य चन्द्र होकर नियमों से बिद्ध।
अंधकार से छुड़ाने में जैसे प्रसिद्ध।।
वैसे तू भी नियमों में चल कर भली प्रकार।
इस प्राणी की रक्षा में अपने कर्म प्रसार।।
तू इस प्राणी की सकल बाधा कष्ट मरोड़।
इसको ले चल दीर्घ शत वर्षी जीवन ओर।।

मंत्र- व्याघ्रे ऽह्नयजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः। स मा वधीत्पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम्।।३।।

काव्यार्थ-

बलवान व्याघ्र के समान मात-पिता से-
उत्पन्न हुआ पुत्र महावीर हो तने;
उसको समस्त कष्टों से बचाता हुआ यह,
नक्षत्र के समान जनक गतियों का बने;
अरू बढ़ता हुआ, जन्म देने वाली माता को-
किंचित न सतावे व पिता को नही हने।

सूक्त १११

मंत्र- इमं मे अग्ने पुरूषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धःसुयतो लालपीति। अतो थि ते कृणवद्भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे विद्वान! बद्ध नर धारे नाना दोष।
बन्धन मुक्ति हेतु जो करता है आक्रोश।।
इसको मम हित मुक्त कर कर आनन्द विहीन।
यह तव सेवनीय को करे बना तल्लीन।

मंत्र- अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम। कृणोमि विद्वान्भेषजं यथानुन्मदितोऽससि।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे उन्मादित! जब तेरा मन व्याकुलता पाय।
तब विद्वान नर तुझे अतुल शांत कर जाय।।
मैं उपचारक ज्यों तुझे औषध कर प्रदान।
करता उन्माद रहित अरू विज्ञान प्रधान।।

मंत्र- देवौनसादुन्मदितमुन्मत्तंरक्षसस्परि। कृणोमि विद्वान्भेषजं यदानुन्मदितोऽसति।।३।।

काव्यार्थ-

मेधावी, अति ज्ञानवान लोगों के प्रति-
पाप से उन्मत्त हुए व्यक्ति के लिये;
राक्षस स्वरूप पृथिवी पर जो जीव बने हैं,
अरू रोग से उन्मत्त हुए व्यक्ति के लिये;
मैं विज्ञ इन सभी के लिये औषधि करता,
वह जिससे हों उन्माद रहित शक्ति के ठिये।

मंत्र- पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः। पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽसिसि।।४।।

काव्यार्थ-

हे रोगी! जो विद्युत गगन व जल के बीच है,
वह तुझको फिर से विज्ञों में स्थान दिलाये;

तेरी पुनः स्थापना विद्वानों बीच में-
रवि चन्द्र करें, तेरा बहुत मान बढ़ाएं।
उत्तम पदार्थ सारे, तेरी विज्ञों बीच में,
फिर से रही सम्मान की पहचान बनाएं;
जिससे बने उन्माद रहित, शोक रहित तू,
करती रहें युगों युगों यशगान दिशाएं।

सूक्त ११२

मंत्र- मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एष मूलबर्हणात्परि पाह्येनम्। स ग्राह्याः पाशान्वि चृत प्रजानन्तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

इन पुरूषों के बीच जो ज्ञान, आयु में ज्येष्ठ।
हने न उसको रोग, यह कर तू यत्न यथेष्ट।।
हे अग्नि सम विज्ञ नर! बन ज्ञानी बेमोल।
जकड़ रहे इस रोग के सब पाशों को खोल।।
तेरे इस शुभ-कर्म में सभी विज्ञ हों साथ।
उनकी ले अनुकूलता अनुमति दोनों हाथ।।

मंत्र- उन्मुंच पाशांस्त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरूत्सिता येभिरासन्। स ग्राह्या पाशान्वित चृत प्रजानन्पितापुत्रौ मातरं मुंच सर्वान्।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

मध्यम, ऊंच, नीच के त्रि-पाशों के बीच।
जकड़े हैं पितु, मात, सुत होकर अतिशय पीच।।
हे अग्नि सम विज्ञ नर! बन ज्ञानी बेमोल।
जकड़ रहे इस रोग के सब पाशों को खोल।।
तेरे इस शुभ-कर्म में सभी विज्ञ हों साथ।
उनकी ले अनुकूलता अनुमति दोनों हाथ।।

मंत्र- येभिः पाशैःपरिवित्तो विबद्धोऽङ्गेअङ्ग आर्पित उत्सितश्च। वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति भ्रूणाघ्नि पूषन्दुरितानि मृक्ष्व।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अनुज विवाहित का रहा जो अग्रज बिन ब्याह।
वह बंधकर जिन पाशों से पाता पीरअथाह।।
जिनसे जकड़ा गया वह जिनसे अंग दुखाय।
वह खुलने के योग्य सब रोग-पाश खुल जांय।।
गर्भवती को हों नहीं गर्भ-पतन सम कष्ट।
पोषण-कर्ता विज्ञ! तू उनको कर दे नष्ट।।

सूक्त ११३

मंत्र- त्रिते देवा अमृजतैतदेनास्त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे। ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तीन लोक त्रिकाल में व्याप्त प्रभू के बीच।
शुद्ध किया इस पाप को विज्ञ जनों ने भींच।।
तिहु लोकों के नाथ उस प्रभुवर ने यह पाप।
मनुजों में शोध हुआ वेद-ज्ञान की छाप।।
नर! फिर भी जकड़े तुझे, पाप-पीर का पाश।
उसका विज्ञ जन करें वेद-ज्ञान से नाश।।

मंत्र- मरीचीर्धूमान्प्र विशानु पाप्मन्नुदारान्गच्छोत वा नीहारान्। नदीनां फेनां अनु तान्वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन्दुरितानि मृक्ष्व।।२।।

काव्यार्थ-

अत्यन्त निन्दनीय रहे पाप तू किरणों-
अरू धूम्रों का अनुकरण करके प्रवेश कर;
तू ऊध्यर्वगामी मेघों, कोहरों को प्राप्त हो,
छिप जा सरित के फेनों के पीछे प्रदेश पर।

दोहा

गर्भवती को हो नहीं गर्भ-पतन का कष्ट।
पोषण-कर्ता विज्ञ! तत् रोग शीघ्र कर नष्ट।।

मंत्र- द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं मनुष्यैनसानि। ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु।।३।।

काव्यार्थ-

बारह के बीच ठहरे हुए नर के बीच में,
वह पाप जो कि सर्वसुखों के विरूद्ध हैं;
उन सबको त्रिकाल त्रिलोकों व्याप्त प्रभु-
ने अपने वेद-ज्ञान से कर डाला शुद्ध है।
इस सबके होने पर भी हे मनुष्य! जो तुझे-
इस पाप से जकड़ती हुई पीर ने घेरा,
अब वेद-मार्ग का तुझे अनुयायी बनाकर,
विद्वान लोग नष्ट करें कष्ट घनेरा।

सूक्त ११४

मंत्र- यद्देवार देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् आदित्यास्तस्मान्नो यमृतस्यर्तेन मुंचत।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे विज्ञों! हमने किया जो प्रमादवश पाप।
तिरस्कार कर विज्ञों का उन्हें दिया जो ताप।।
हे सूर्य सम तेजमय आप सभी विद्वान।
तत् पाप से दें छुड़ा करके कृपा महान।।
हमें लगायें धार्मिक सद्-व्यवहारों बीच।
अरू उनको प्रसन्नता भावों से दें सींच।।

मंत्र-. तस्यर्ते नादित्या यजत्रा। मुंचतेह नः। यद्यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशे किम।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे ज्ञानाग्नि पूर्ण! हे संगति योग्य! पूज्य।
हमें पाप से दो छुड़ा और न चाहें दूज्य।।
विज्ञों का अपमान हम कभी न करने पाय।
धर्मपूर्ण सत्कर्म को नित-नित करते जांय।।
जिससे हे प्रभु-भक्ति को प्राप्त कराते देव।
हम यज्ञ-इच्छुक रहें पकड़ें नहीं कुटेव।।

मंत्र- मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्यानिजुह्वतः अकामा विश्वे वो देवाः शिक्षन्तो नोप शेकिम।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

घृत से युक्त श्रुवा ले नित यजमान लोग।
करते रहते आज्य से नित्य याग से योग।।
हे विज्ञों! तव कामना नहीं करते हम लोग।
यज्ञ इच्दुक होते हुए करें न यज्ञ प्रयोग।।

सूक्त ११५

मंत्र- यद्विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकमा वयम्। यूयं नस्तस्मान्मुंचत विश्वेदेवाः सजोवसः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जानबूझ कर किये यदि हमने पाप-कर्म।
अथवा यदि अनजाने में हमसे हुआ अधर्म।।
हे सब ही विद्वान जन सम सम प्रीति युक्त।
हमको उस उपराध से कर दीजेगा मुक्त।।

मंत्र- यदि जाग्रद्यदि स्वपन्ने एनस्योऽकरम। भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदादिव मुंचताम।।२।।

काव्यार्थ-

मुझ पापी ने जो जागते हुए किये हैं पाप
या सोते हुए पाप जो मैंने किये घने
प्राणी समूह वर्तमान और भावी, उन-
काष्ठ के बन्धन समान पापों को हने।

मंत्र- द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिन। पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शम्भन्तु मैनसः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जो है उस पुरूष समान जो कि मुक्त हुआ-
काष्ठ स्तम्भ बंधे बन्धन के शाप से;

या कि उस पुरूष समान जो पसीने भरा
जल से नहाया, तथा मुक्त हुआ ताप से।
अथवा जो शुद्ध हुए घृत के समान, जिसे-
छान लिया पूर्णरूप छलनी प्रताप से;
उन ही समान नर को पवित्र करते जो-
दिव्यगुण, मुझको पवित्र करें पाप से।।

सूक्त ११६

मंत्र- यद्यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्र कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ज्ञान के द्वारा उपज को लेते विज्ञों समान।
पूर्वज कृषकों ने रचा जो कृषि हेतु विधान।।
भूमि जोत, बोकर किया बहुल अन्न उन्मेष।
कृषि के हेतु रच दिये नाना नियम विशेष।।
सबको सदा बसाता है जो प्रभु-राज दुरूह।
उसे समर्पित करता मैं वह ही नियम समूह।।
जिससे यजनीय उपज जो अपने घर होय।
पुनः यज्ञ के योग्य हो तथा मधुरता बोय।।

मंत्र- वैवस्वतः कृणवद्भागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजाति। मातुर्यदेनं इषितं न आगन्यद्वा पितापराद्धो जिहीडे।।२।।

काव्यार्थ-

माता-श्री को प्राप्त हुआ और किया प्रमादवश,
वह पाप उनके प्रति जो हमने किया;
अथवा किया जो पिता श्री के प्रति अपराध,
दुख पहुंचाया, दिया तोड़ उनका हिया।
सबको बसाता, करे ज्ञान का मधुर भाग,
वह परमेश्वर ज्ञान का विभाग करे
करे संयुक्त कृत पाप के ज्ञान साथ,
प्रायश्चित करवा कर हमको निदाग करे।

मंत्र- यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन्।
यावन्तो अस्मान्पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः।।३।।

काव्यार्थ-

जो पाप माता के प्रति अथवा जो पिता के प्रति,
भ्राता वा पुत्र के प्रति होकर जो रोष बोवे,
वह पाप जो हमारे चित्त के पास आया,
अरू जो कि पितु समान सांसारियों को खोवे,
उनके विषय में हमसे बहु पाप जो हुआ है,
उन सबका क्रोध हमको कल्याणकारी होवे।

सूक्त ११७

मंत्र- अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्ययेन बलिना चरामि। इदं तदग्ने
अनृणो भवामि त्वं पाशान्विचृतं वेत्थ सर्वान्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बिना समय पर चुकाये होकर अति ही शाप्त।
जिस ऋण को ऋणदाता से करता हूं मैं प्राप्त।।
ऋणदाता वश में करे जिस ऋण बल से मोय।
हे विद्वान् शीघ्र वह मुझसे चुकता होय।।
ऋण मुक्त करिये मुझे हे विद्वान् ख्यात।
सब ऋण पाशों से तुम्हें मुक्ति उपाय ज्ञात।।

मंत्र- इहैव सन्तः प्रति द्रुम एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत्।
अपमित्य धान्य१यज्जधसाहमिदं तदग्ने अनृणोभवामि।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यह ऋण देय चुकाय हम रहते तन झंकार।
जीवित रहते दाता के दें नियमानुसार।।
जो भी धान्य उधार ले खाया है या खाऊँ।
हे विद्वान! उससे मैं अभी उऋण हो जाऊँ।।

मंत्र- अनृणाअस्मिननृणा परस्मिन्तृतीये लोके अनृणास्यामा। ये
देवयानाः पितृमाणाश्च लोकाः सर्वन्यथोअनृणा आ क्षियेम।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हमको बचपन, युवा अरू वृद्धावस्था लोक।
इन तीनों में रंच भी चुभे न ऋण की नोक।।

❖

जो विजय कामियों तथा व्यापारियों के यान,
निर्बाध रूप से सदा चलने के योग्य हैं;
उन ज्ञानियों, विज्ञानियों के गमन योग्य जो-
पालन किया करते तथा पलने के योग्य हैं
उन सब स्थानों और मार्गों में हम सदा-
ऋण हीन हो चले, सभी फलने के योग्य हैं।

सूक्त ११८

मंत्र- यद्धस्सताभ्यां चकृम किल्बिषाण्यक्षाणां गत्नुमप- लिप्समानाः।
उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदद्याप्सरसावनु दत्तामृणं नः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

इन्द्रियभोग विषयों से अपने मन को ढाप।
दुहु हाथों से किये जो हमने नाना पाप।।
तीव्र दृष्टि वाली लभें विजय उग्रता धार।
दुहु अप्सराएं सुखद सूर्य-भूमि हितकार।।
हमसे वह ऋण दिलायें करें अनुग्रह आज।
होवें हम सब संयमित किया करें शुभ काज।।

मंत्र- उग्रं पश्ये राष्ट्रभृत्किल्विषाणि यिदिक्षिवृत्मनु दत्तं न एतत्।
ऋणान्नो नर्षमेर्त्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दुहु अप्सराएं सुखद सूर्य-भूमि हितकार।
पालन-कर्त्री राज्य की तीव्र दृष्टि को धार।।
तुम दोनों करके कृपा सदाचार को देओ।
तथा पाप जो हैं विविध उनको हमसे लेओ।।
ऋण पीछे ऋण की सतत वृद्धि की ले चाह।
ऋण देने वाला करे जो इच्छा मन माह।।

वह रस्सी से बांधकर न्याय-पीठ स्थान।
हमको लाकर हमारा करे नहीं अपमान।।

मंत्र- यस्माऋणं यस्य जायामुपैमि यं याचमानो अभ्यैमिदेवाः। ते वाचं वादिषुर्मोत्तिरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे विज्ञों! जिससे लिया है मैंने ऋण आज।
जिसकी स्त्री के निकट जाऊं याचना काज।।
करें न मुझसे वह कभी अधिक कठोर बात।
रंच नहीं बट्टा लगे मेरी प्रशंसा-गात।।
दिव्य पदार्थ रक्षने में अति ही विख्यात।
सूर्य-पृथिवी अप्सराओं तुम रखो याद यह बात।

सूक्त ११९

मंत्र- यद्दीव्यन्नृणमहं कृणोभ्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि। वैश्वानरो नो अधिपा वशिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम्।।१।।

काव्यार्थ-

सबको बसाने वाले हे सकल नरों के स्वामी,
यदि निष्क्रिय बन ऋण लभूं, लूं अदेयता थामि;
तब तुम अधिपति प्रभु! मुझे पुरूषार्थी बनाओ,
तथा पुण्यता-लोक में, ऊंचे शिखर चढ़ाओ।

मंत्र- वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्यृणं संगरोदेवतासु। स एतान्पाशान्विचृतं वेद सर्वानथ पक्वेन सह सं भवेम।।२।।

काव्यार्थ-

विद्वानों के विषय में अपने ऋण तथा प्रण का,
जग के नरों के स्वामी प्रभु से है निवेदन;
वह सर्वशक्तिमान महाज्ञानी हमारा-
प्रभु जानता हमारे पड़े पाशों का भेदन;
इस हेतु हम सदैव दृढ़-स्वभाव-प्रभु के-
ही साथ रहें, करता वही पापों का भेदन।

मंत्र- वैश्वानरः पविता मा पुनातु यत्संगरमभिधा वाम्याशाम। अनाजानन्मसा याचमानो यत्तत्रैनो अप तत्सुवामि।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सबको करता शुद्ध वह प्रभु, जो जगत जनाय।
वही सकल नर स्वामी प्रभु मुझको शुद्ध बनाय।।
लेअज्ञानी मन करूं यदि अति अनुचित टेर।
निज प्रण,उनकी आस पर देऊं पानी फेर।।
तब उस कर्म में रहा जो भी पाप, हटाऊं।
मुझको बांधे पाश जो उनको शीघ्र कटाऊं।।

सूक्त १२०

मंत्र- यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम। अयं तस्माद्गार्हपत्यो नो अग्निरूदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम्।।१।।

काव्यार्थ-

हमने यदि सताया अन्तरिक्ष, द्यु, भू को,
धरती के रतन अपने माता-पिता वसू को;
तब यह हमारा घर के स्वामियों का संयोगी-
अग्नि अलग करें हमारे पाप सभू को;
शुभ कर्मों के समाज में उन्नत करे हमको,
तुम भी कभी शुभ कर्मों के करने में न चूको।

मंत्र- भूमिर्मातादितिर्नोजनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशास्त्या नः। द्यौर्नः पिता पित्रयाच्छं भवाति जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात्।।२।।

काव्यार्थ-

अदीन मातृभूमि प्यारी जननी हमारी,
है अन्तरिक्ष भाई, द्यु पूज्य पिता है;
यह सब हमें कल्याणकारी होवें, जहां पर-
हमको जलाने हेतु विपत्ति की चिता है।
यह सब जगत हमारा कल्याण करे, औ-
हमको सदा विपत्ति, संकटों से बचाये;

सम्बन्धी हमारा नहीं होवे कोई ऐसा,
जो पितृलोक में गिरा कर नाच नचाये।

मंत्र- यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्व१ः स्वायाः। अश्लोणा अङ्गैरह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्।।३।।

काव्यार्थ-

पुण्यात्मा सुहृद जहां करते निवास हैं,
तन रोग दूर कर सदा आनन्द भोगते,
उस थल पे स्वर्ग भूमि में अकुटिल तथाअविकृत,
हम माता, पिता, पुत्रों को अविरल विलोकते।

सूक्त १२१

मंत्र- विषाणा पाशान्वि ष्याध्यस्मद्य उत्तमा अधमा वारूणा ये।दुष्वप्नयं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्।।१।।

काव्यार्थ-

बहु दोष, पाप, शाप-हर्ता वरूण देव से,
आये यह ऊंचे और नीचे पाश हमारे;
हे शूरवीर! तू बढ़ाकर भक्ति की शक्ति,
पाशों को खोल करके मुक्ति-भोर थमा दे।
उठते जो पाप और कुविचार नींद में,
उनको कुचल के मार, नहीं रंच क्षमा दे;
मन और वचन कर्म में धारे पवित्रता,
तू धर्म के समाज में हम सबको रमा दे।

मंत्र- यद्दारूणि बध्यसे यच्च रज्जवां यद्भम्यां बध्यसे यच्च वाचा। अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरूदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम्।।२।।

काव्यार्थ-

यदि तू बंधा हुआ है काष्ठ-स्तम्भ से,
अरू यदि बंधा है भूमि से, अथवा वचन के साथ;
तव शीघ्र अग्नि-रूप प्रभुवर की शरण ले,
उस घर के स्वामियों के संयोगी को झुका माथ;

वह कष्ट करके दूर, धर्म के समाज में,
अति उच्च उठाए तुझे, तेरा पकड़ के हाथ।

मंत्र- उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके। प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्ध कमोचनम्।।३।।

काव्यार्थ-

रवि और शशि प्रसिद्ध दो तारक उदय हुए,
ऐश्वर्य धारते जो अंध को प्रजारते;
वह दोनों करें दान मरण से बचाव का,
यह आत्मा बंधी जो, रहे मुक्ति धारते।

मंत्र- वि जिहीष्व लोकं कृणु बन्धाान्मुंचासि बद्धकम। योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पथः सर्वा अनु क्षिय।।४।।

काव्यार्थ-

हे नर! विशेष उन्नति कर, रच समाज को,
अरू बद्ध आत्मा को बन्धनों से छुड़ा दे;
तू गर्भ से बाहर हुए शिशु के समान ही,
बन्धन से जुड़े उसके कारणों को तुड़ा दे;
सब मार्गों के बीच अनुकूलता से चल,
सिगरी विषम परिस्थिति अनुकूल मुड़ा दे।

सूक्त १२२

मंत्र -एतं भागं परि ददामि विद्वान्विश्वकर्मन्प्रथमजाऋतस्य। अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिननं तन्तुमनु सं तरेम।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सकल जगत के रचयिता जग-पालक जगदीश।
सत्-नियमों का है तू ही प्रथम प्रवर्तक ईश।।
इस बात को जानकर मैं अपने शुभ कर्म।
तेरे में कर समर्पित पालन करता धर्म।।
इस अर्पण के द्वारा निज जरा-दशा पश्चात्।
तेरे पीछे चल, दुखों की हो जाए मात।।

कपड़े में व्यापे हुए सूत्र अखण्डित भांति।
सर्वव्याप्त होकर तू ही देता है सुख-शांति।।

मंत्र- ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दत्तं पित्रयमायनेन। अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव।।२।।

काव्यार्थ-

पितरों को दिया करते यथाशास्त्र दान जो,
हो जाते पार वह प्रभु-आज्ञा कोपालकर;
कुछ दान अनाथों को देते, सौंपते रहते,
प्रभु उनको झुलाता सदा आनन्द डाल पर।
प्रभु जो कि सर्वव्याप्त, वस्त्र बीच सूत्र सा,
जो जानता मनुष्य की प्रतिक्षण की चाल हर;
जो दान करने में है पूर्णतः समर्थ, तो-
वह दान-कर्म, सुख का उन्हें बेमिसाल घर।

मंत्र- अन्वारभेथामनुसंरभेदामेतं लोकं श्रद्दाधानाः सचन्ते। यद्वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्यगुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम्।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

कर्मशील नर नारियों करो सतत सत्कर्म।
तुम मिलकर कर दो शुरू यह पावनतम धर्म।।
जो श्रद्धालु जन रहे सबके हितू हितेश।
वह इसको कर भोगते हैं आनन्द विशेष।।
अग्नि पका यह अन्न जो तुम्हें चेतना हेतु।
लेओ परस्पर आश्रय उसकी रक्षा हेतु।।

मंत्र- यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तमन्वारोहामि तपसासयोनिः।उपहूताअग्ने जरसः परस्तातृतीये नाके सधमादं मदेम।।४।।

काव्यार्थ-

विज्ञान और तपस्या का सहवास प्राप्त कर,
बढ़ता ही जाता उन्नति की ओर निरन्तर;
अरू सबसे बड़ा और सर्वव्याप्त जो रहा,
करता हूं प्राप्त ऐसा पूज्य ब्रह्म तदनन्तर।

हे सर्वव्याप्त ईश्वर! वृद्धावस्थासे-
हम लोग सब बुलाए गए पूर्व जो होंगे;
हम जीव औ प्रकृति से जो भिन्न है ऐसे-
तृतीय आप में विचर आनन्द को भोगे।

मंत्र- शुद्धा पूता योषितो यज्ञियाइमा ब्रह्मणा हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि। सत्काम इदमभिषिंचामि वोऽहमिन्द्रो मरूत्वान्त्स ददातु तन्मे।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यह जो शुद्ध स्त्रियां जो हैं बहुत पवित्र।
नारि जाति में पूज्य जो अनुकरणीय चरित्र।।
ब्रह्मज्ञानी जो पुरूष हैं गुण में अधिक महान्।
तद् हाथों इनको रहा पृथक-पृथक बैठाल।।

❖

इस काल कर रहा मैं अभिषेक तुम्हारा,
विज्ञान प्राप्ति की हृदय में धार कामना;
प्रार्थना कि धारता जो दोष-नाश गुण,
वह ईश कर दे पूर्ण यह हृदय की भावना।

सूक्त १२३

मंत्र- एतं सधस्थाः परि वो ददामि यं शेवधिमावहाज्जात वेदाः अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति तं स्म जानीत परमेव्योमन्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

साथ बैठने वाले हे पुरूषों सद-गुण खान।
यह प्रभु रूपी धन तुम्हें मैं कर रहा प्रदान।।
उस प्रभु-धन को करते हैं वही भली-विधि प्राप्त।
जो वेदार्थ जानते कहलाते हैं आप्त।।
जिसके द्वारा ईश की पूजा करते भक्त।
सतत प्राप्त कल्याण कर रहते नहीं अशक्त।।
परम श्रेष्ठ प्रभु वित्त तुम जाना करो अवश्य।
जो स्थित सुखधाम में रहता सदा अदृश्य।।

मंत्र- जानीत स्मैनं परमेव्योमन्देवाः सधस्था विदलोकमत्र। अन्वागन्ता यजमानः स्वास्तीष्टापूर्व स्म कृणुताविरस्मै।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

साथ बैठते विज्ञ जन जान उसे तुम लेओ।
जो स्थित सुख धाम में सर्वोत्तम प्रभु-देव।।
जिसके द्वारा प्रभु का परम पुजारी भक्त।
लभ अविरल कल्याण को रहता नहीं अशक्त।।
ऐसा समझो इसी प्रभु में स्थित संसार।
अरू तत प्राप्ति हित करो पुण्य कर्म अपार।।

मंत्र- देवाः पितरः पितरो देवाः। यो अस्मि सो अस्मि।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

विद्वान पाते सदा सम्मान अरू प्रीति।।
पावन करते लोग जो वह पाते हैं जीत।।
इन गुणों से युत हो रखूं उद्योगों को धार।
अरू मैं ही हूं जो बनूं दुःख का मेटन हार।।

मंत्र- स पचामि स ददामि स यजे स दत्तान्मा यूषम्।।४।।

काव्यार्थ- दोहा

वह मैं परिपक्व किया करता पोषक अन्न।
वह मैं उसका दान कर करूं यज्ञ सम्पन्न।।
ऐसा वह मैं सुजन जन को देने हित दान।
कभी पृथक होकर नहीं तजू दान की बान।।

मंत्र- नाके राजन प्रतिष्ठ तत्रैतत्प्रति तिष्ठतु। विद्धि पूर्तस्य नो राजन्त्स देव सुमना भव।।५।।

काव्यार्थ- दोहा

हे राजन! लभ मान तू सुख-सागर प्रभु बीच।
पुण्य कर्म प्रभु में रखे ख्याति नीर से सींच।।
हे राजन! हम हेतु कर पुण्य कर्म का ज्ञान।
वह तू है गतिशील! हो उत्तम मन की खान।।

सूक्त १२४

मंत्र- दिवो नु मां बृहतो अन्तरिक्षादपां स्तोको अभ्यपप्तद् रसेन।
समिन्द्रियेण पयसाहमग्ने छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ज्यों द्यु का अवकाश वह जो जल राशि ढोत।
तत् बिन्दु-रस की मेरे ऊपर वर्षा होत।।
त्यों सुकर्मियों के कर्म द्वारा हे प्रभु-राय।
सकल धनों की वर्षा नित मुझ पर होती जाय।।
मिला चलूं आनन्द-दा बहु कर्मों से हाथ।
अन्न साथ, विद्यादि के नाना दानों साथ।।

मंत्र- यदि वृक्षाद भ्यपप्त फलं तद्यद्यन्तरिक्षात्स उ वायुरेव।
यत्रास्पृक्षत्त्वो३यच्च वासस आपो नुदन्तु निर्ऋं पराचैः।।२।।

काव्यार्थ-

ज्यों वृक्ष से फल गिरने के समान, व्योम से-
गिरती हुई जल-बूंदें आयें पास हमारे;
वह जल जहां स्पर्श करे तन के भाग को,
स्पर्श करे वस्त्रों को जो तन पे बिठारे।
वह जल वहां रही अशुद्धियों को उल्टे मुंह-
देवे हटा, उन सबको ही तत्काल संहारे;
वैसे ही हम यथार्थ ज्ञान द्वारा दोषों से,
दूषित हुई निज आत्मा के दोष प्रजारें।

मंत्र- अभ्यंजनं सुरभि सा समृद्धिर्हिरण्यं स्तदु पूत्रिममेव। सर्वा पवित्र
विततध्यस्मत्तन्मा तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मर्दन शरीर पर तेल आदि द्रव्यों का,
चन्दन सुगन्धित का उपयोग करना;
धारना सुवर्ण, तन का सुडौल होना, तथा-
तेजस्विता का होना, रंच नहीं डरना।
जैसे यह सब ऐश्वर्य जतलाते,वैसे-
जल को समृद्धि का लक्षण है बरना;

इससे जगत बीच फैलती पवित्रता है,
इसका है काम घर-घर धान्य धरना।।

दोहा

कष्ट विनाशक जल खड़ी विपदा सकल चबाय।
न तो दबावे दुर्गति ना ही शत्रु दबाय।।

सूक्त १२५

मंत्र- वनस्पते वीड्वंगो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः। गोभिः संनद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि।।१।।

काव्यार्थ-

हे किरणपाल सूर्य जैसे ज्योतिमय राजन,
तू ही हो अपना मित्र, मित्रता की नीति ले;
बलिष्ठ अंग, वृद्धि-दा, सुवीरों युक्त तू,
तू श्रेष्ठ वाणों, वज्रों से सजा, सुरीति से;
हमें सुदृढ़ बना, तेरा जो सैन्यपति रहा,
वह जीतने के योग्य शत्रुओं को जीत ले।

मंत्र- दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः। अपामोज्मानं परि गोमिरावृतमिन्द्रस्य वज्र हविषा रथं यज।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

राजन्! समस्त द्यु लोक तथा पृथिवी लोक,
दोनों ही ने तुझे पूर्ण रीति भय-मुक्त कर;
धारण कराया हुआ तुझ बीच पूर्ण रीति,
ऐसा बल, जो कि नहीं होता कभी सुप्त, क्षर।
किरणों से ढांपे जल ने, वनस्पतियों ने भी,
तुझको दिया जो बल, उसको तू ठुक्त कर,
अरू शस्त्रों व रथ आदिक को, विद्युत के
ग्राह्य गुणों से तू सदैव संयुक्त कर।।

मंत्र- इन्द्रस्यौजो मरूतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरूणस्य नाभिः। स इमां नो हव्यदातिं जुषाणों देव रथ प्रति हव्या गृभाय।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

राजन! तेरे शूरों की सेना सूर्य समान।
विद्युतशक्ति प्रयोग का रखती अनुपम ज्ञान।।
जो उतार अरू चढाव चले वायु दरम्यान।
उसका भी तेरी सेना रखती गहरा ज्ञान।।
अस्तु ज्योतिमय, ज्ञानमय हे रमणीय स्वरूप।
हम हित दीजे दान में देय पदार्थ अनूप।।
ग्राह्य वस्तु को ग्रहण कर प्रीति के साथ।
सबल शत्रु को सैन्य संग करिये आप अनाथ।।

सूक्त १२६

मंत्र- उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरूत्रा ते वन्वतां विष्ठितं जगत्। स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून।।१।।

काव्यार्थ-

राजन्! समस्त द्यु भूमि लोक बीच तू,
निज कर्म प्रजा-जीवन प्रकाशना करें,
तेरे लिये विविध प्रकार व्याप्त जगत की,
तेरे समस्त वीर सदा याचना करें।
दुन्दुभि समान गर्जना से युक्त हे राजन!
तू विद्युत मय अस्त्र-शस्त्र राखाना भरे।
अरू अपना श्रेष्ठ कर्म दूर से भी अति दूर,
खल देश-द्रोही शत्रुओं को डासना करे।

मंत्र- आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा अभिष्टन दुरिता बाधमानः। अप सेध दुन्दुभे दुच्छुनामित इन्द्रस्य मुष्टिष्रसि वीडयस्व।।२।।

काव्यार्थ-

राजन्! हमें बल, ओज तू अच्छी प्रकार दे,
शत्रु-समूह को तू सभी ओर से रूला;
कर सर्व-दिशि गर्जना, कष्टों को हटाता,
अरू दुन्दुभि समान गरज, भूमि को डुला;
होकर सदैव विद्युत की मूठ के जैसा,
दुष्टों को मारने के लिये रह सदा तुला;

दुःख देने वाली शत्रु की सेना को हटादे,
अरू राज्य को सुदृढ़ बना, आनन्द में झुला।

मंत्र- प्रामूंजयाभी३में जयन्तु केतु मद्दुन्दुभिवीवदीतु। समश्वपर्ण पतन्तु नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु।।३।।

काव्यार्थ-

शत्रु की खड़ी सेना भली भांति जीत ले।।
उत्साह भरे वीर युद्ध-घोषणा हेतु,
प्रिय दुन्दुभी को उच्च घोष करते बजाएं;
अरू घुड़सवार सैनिकों के दल को बनाकर,
नायक हमारे शत्रु पर धावों को सजाएं।
ध्वज को लिये यह शूरवीर सभी ओर से,
आगे बढ़े, हथियार लिये,शत्रु रीत लें।।

दोहा

हे राजन! ऐश्वर्यमय! युद्धकला में बूढ़।
विजयी अपने वीर हों, रथ पर हो आरूढ़।।

सूक्त १२७

मंत्र- विद्रधस्य ब्रला स्यलोहितस्य बनस्पते। विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

कफ, क्षय, फोड़ा, फुन्सी औ नाना रूधिर-विकार।
खांसी दे गिरना रूधिर अरू विसर्प की मार।।
हे औषधि! हे वनस्पति ! इनको तोड़ मरोड़।
तथा रहा लघु अंश भी कभी शेष मत छोड़।।

मंत्र- यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावप्रश्रितौ। वेदाहं भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम्।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

हे कफ रोग! तेरे से बनी गिल्टियां दोय।
जो इस नर की कॉख में लिये सहारा होय।।

मुझको उसकी औषधि का है पूरा ज्ञान।
चीपुद्रु है औषधि करती रोग-निदान।।

मंत्र- यो अङ्ग्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः। वि वृहामो विसल्पकं विद्रधंहृदयाममयम्। परा तमज्ञातं यक्ष्ममधरंचं सुवामसि।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो विसर्प कानों तथाआंखों, अंगों बीच।
हृदय रोग, हृद पीर अरू फोड़ा रोग गलीच।।
देते उन्हें उखाड़ अरू अप्रकट यक्षमा क्रूर।
उसे निम्न गति से किया करते हैं हम दूर।।

सूक्त १२८

मंत्र- शकधूमं नक्षत्राणि यद्राजानमकुर्वत। भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बने संगठित राज्य जग आवे नहीं विकार।
इस कारण नक्षत्रों ने मिलकर किया विचार।।
परमेश्वर को बनाया राजा सुख का सेतु।
तथा समर्पित कर दिया शुभ दिन उसके हेतु।।

मंत्र- भद्राहं नो मध्यन्दिने भद्राहं सायमस्तु नः। भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः।।२।।

काव्यार्थ-

हम हेतु मध्य दिन नित शुभता भरा समय हो,
अरू प्रातःकाल भी नित शुभता भरा समय हो;
शुभता भरा समय हो प्रातः भी सब दिनों का,
हम हेतु रात्रि में भी शुभता भरा समय हो।

मंत्र- अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम्। भद्राहमस्मभ्यं राजंछकधूम त्वं कृधि।।३।।

काव्यार्थ-

हे लोकों को कंपाते परमेश तू हम हेतु,
दिन और रात्रि द्वारा शुभता भरा दिवस कर;

होकर कृपालु हम पर नक्षत्रों से सूर्य से,
अरू चन्द्रमा से नित ही शुभता भरा दिवस कर।

मंत्र- यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवां। तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः।।४।।

काव्यार्थ- दोहा

जिस तूने हम हित किये शुभ दिन सायं काल।
रात्रिकाल में, दिवा में शुभता दी बैठाल।।
हे लोकों कोकंपाते प्रभु! नक्षत्र-राज।
ऐसे तुझको नमन है पूरन करिये काज।।

सूक्त १२६

मंत्र- भगेन मा शांशपेन साकमिन्द्रेण मेदिना।कृणोमि भगिनं माप द्रान्त्वरातयः।।१।।

काव्यार्थ-

उस परम मित्र परमैश्वर्यवान प्रभु के-
अति शान्ति-दा छुअन से युत ऐश्वर्य द्वारा;
अपने को मैं स्वयं भी ऐश्वर्यवान् कर लूं,
भागे अतीव दूर कंजूसपन हमारा।

मंत्र- येन वृक्षां अभ्यभवो भगेन वर्चसा सह। तेन मा भगिनं कृण्वयं द्रान्त्वरातयः।।३।।

काव्यार्थ-

प्रभुदेव! जो कि जीवन आधार है कहाता
जिसने बढ़ाया आगे, नित अग्रता में डारा;
जिसको कि सभी स्वीकार्य योग्य पदार्थों ने-
अपने में भली भांति शुभ रीति द्वारा धारा;
मुझको भी तू उसी से ऐश्वर्यवान् कर दे,
भागे अतीव दूर कंजूसपन हमारा।

सूक्त १३०

मंत्र- रथजितां राथजितेयी नामप्सरसामयं स्मरः। देवाः प्रहिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु।।१।।

काव्यार्थ-

यह जो शुभ स्मरण शक्ति रमणीय पदार्थ जिताती,
अरू रमणीय पदार्थ-विजेताओं का साथ गहे;
जल, आकाश, प्राण, प्रजाओं में नित रहने वाली,
सब शुभ शक्तियों का जो करती स्मरण बहे;
हे विद्वानों! इसको तुम अच्छे प्रकार बढ़ाओ,
यह स्मरण शक्ति व्याप कर मुझमें शुद्ध रहे।

मंत्र- असौ में स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति।देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु।।२।।

काव्यार्थ-

दोहा

यह स्मरण शक्ति सदा मुझमें बनी सुहाय।
अरू यह प्यारी शक्ति मम चिन्तन करती जाय।।
हे विज्ञों! यह स्मरण शक्ति बढ़ाएं आप।
शुद्ध रहे यह सर्वदा शक्ति मुझमें व्याप।।

मंत्र- यथा मम स्मरादसौ नामुष्याहं कदा चन। देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु।।३।।

काव्यार्थ-

जिससे वह स्मरण शक्ति मेरा स्मरण रखे,
अरू मम सजग बुद्धि भी उसकी भूल न रंच गहे;
इस हेतु विद्वानों! तुम इसको शुभ रीति बढ़ाओ,
यह स्मरण शक्ति व्याप कर मुझमें शुद्ध रहे।

मंत्र- उन्मादयत मरूत उदन्तरिक्ष मादय। अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु।।४।।

काव्यार्थ-

वायु गणों! मुझको प्रसन्न तुम करो सदा शुभ रीति,
हे मध्यलोक! तुम भी मुझको हर्षित शुभ रीति करना;
हे अग्नि! तू मुझको आनन्दित करती चल, जिससे-
मुझमें व्याप स्मरण शक्ति, बने शुद्धि का झरना।

सूक्त १३१

मंत्र- निर्शीतो नि पत्तत आध्यो३नि तिरामि ते। देवाः प्र ह्रिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु।।१।।

काव्यार्थ-

हे मनुष्य! मैं तेरे हित अपनी बौद्धिक शक्ति से,
अरू कर्मेन्द्रिय शक्ति से निज कर्तव्य निबाहूं;
विज्ञों! सुमिरन शक्ति बढ़ओ, वह नित मेरे अन्दर-
होकर व्याप्त शुद्ध होवे, मैं व्यथा मनुज की दाहूँ।

मंत्र- अनुमतेऽचिदं मन्यस्वाकूते समिदं नमः। देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु।।२।।

काव्यार्थ-

हे अनुकूल बुद्धि! स्वीकार इसे मुदित होकर तू,
हे उत्साह शक्ति! हम हित हो अन्न हमारे ठाहूं;
विज्ञों! सुमिरन शक्ति बढ़ाओ, वह नित मेरे अन्दर
होकर व्याप्त शुद्ध होने मैं, व्यथा मनुज की दाहूं।

मंत्र- यद्धावसि त्रियोजनं पंचयोजनमाश्विनम्। ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पिता।।३।।

काव्यार्थ-

हे विद्वान! जो तू त्रियोजन दौड़-दौड़कर जाता,
योजन पांच अश्व से चलने वाले देश को धाता,
उस देश से विद्या अरू धन पाकर वापिस आ तू,
पालक बन निज पुत्रादिक का, नित रह भार उठाता।

सूक्त १३२

मंत्र- यं देवाः स्मरमसिंचन्नप्स ‍१न्तः शोशुचानं सहाध्या। तं ते तपामि वरूणस्य धर्माणा।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

कठिनाइयों के बीच विजयी रहे जो देव,
सकल भयों को दूर करते जो व्यक्ति से;

जो कि निज ज्योति से अतीव ही प्रकाशमान,
मेधा बुद्धि को बढ़ाते ईश्वर भक्ति से।
लक्ष्य सिद्धि हेतु जो बढ़ाते रहे सर्वदा ही,
स्मरण शक्ति को बढ़ाकर अनुरक्ति से;
तेरे लिये ऐश्वर्य युक्त करता हूं उसे,
परमेश बीच रहीं धारणा की शक्ति से।।

मंत्र- यं विश्वेदेवाः स्मरमसिंचन्नप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या। तं ते तपामि वरूणस्य धर्मणा।।२।।

काव्यार्थ- कवित्त

जितने भी ज्योतिमान उत्तम रहे हैं गुण,
(शेष मंत्र १ की भांति अंतिम सात पंक्तियाँ)

मंत्र- यान्द्राणी स्मरमसिंचदप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या। तं ते तपामि वरूणस्य धर्मणा।।३।।

काव्यार्थ- कवित्त

परमैश्वर्य के प्रदाता नीति सिद्धान्त,
(शेष मंत्र १ की भांति अंतिम सात पंक्तियाँ)

मंत्र- यमिन्द्राग्नी स्मरमसिंचदप्स्व१न्तःशोशुचानं सहाध्या। तं ते तपामि वरूणस्य धर्मणा।।४।।

काव्यार्थ- कवित्त

विद्युत् व भौतिक अग्नि यह दोनों गुण,
(शेष मंत्र १ की भांति अंतिम सात पंक्त्यिाँ)

मंत्र- यं मित्रावरूणौस्मरमसिंचतामप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या। तं ते तपामि वरूणस्यधर्मणा।।५।।

काव्यार्थ- कवित्त

जीवन के प्राण और अपान यह दोनों गुण,
(शेष मंत्र १ की भांति अंतिम सात पंक्तियां)

सूक्त १३३

मंत्र- य इमां देवो मेखलामावबन्ध यः संननाह य उ तो युयोज। यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः स पारमिच्छात्स उ नो वि मुंचात्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जिस गुरूवर ने मेखला बांधी मेरे शरीर।
हमको कर तैयार जो रचता अनुपम हीर।
जिस गुरू के आशीष से हम करते व्यवहार।
वही कष्ट से मुक्ति दे करे दुखों से पार।।

मंत्र- **आहुतास्यभिहुत ऋषीणामस्यायुधमू। पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखला।।२।।**

काव्यार्थ- **दोहा**

अहे मेखले! प्रशंसित है तू भली प्रकार।
तुझ आयुध से ऋषि सभी रखते अंध प्रजार।।
उत्तम व्रत से पूर्ण तू कटि में बांधी जाय।
तू वीरों को प्राप्त हों लक्ष्य पास पहुंचाय।।

मंत्र- **मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन्भूतात्पुरूषं यमाय। तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणान मैनं मेखलया सिनामि।।३।।**

काव्यार्थ- **दोहा**

कार्य विशेष हेतु जो तुझसे बन्धन युक्त।
मैं ब्रह्मचारी मृत्यु को हुआ समर्पित ठुक्त।।
उस कारण मैं पुरूषों में एक पुरूष को लेतु।
तथा बनाता हूं उसे ऐसी मृत्यु हेतु।।
तप, ज्ञान, श्रमशक्ति को रख दोनों ही कांध।
उस नर को शुभ मेखला से देता हूं बांध।।

(नोट- मृत्यु अर्थात् आलस्य, निष्क्रियता आदि का अन्त)

मंत्र- **श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधि जाता स्वस ऋषीणा भूतकृतां बभूव। सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च।।४।।**

काव्यार्थ- **दोहा**

श्रद्धा से बांधी गयी यह लेने को ज्ञान।
इस कारण अत्यन्त प्रिय श्रद्धा-पुत्री समान।।

तप प्रवृत्ति इस मेखला के कारण ही होय।
सत्कर्मी ऋषियों की यह हितकर बहना सोय।।
अस्तु मेखला! तू मनन शक्ति का कर दान।
हमें तपः शक्ति तथा शुभ इन्द्रियां प्रदान।।

मंत्र- यसां त्वा पूर्व भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे। सा त्वं परि ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पूर्व काल में मेखला सत्कर्मा के जोर।
ऋषियों ने बांधा तुझे कटि के चारों ओर।।
वह तू दीर्घ आयु की देने हेतु डोर।
आलिंगन दे लिपट कर मेरे चारो ओर।।

सूक्त १३४

मंत्र- अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्याबास्य राष्ट्रमप हन्तु जीवितम्। शृणातु ग्रीवाः प्र शृणातुष्णिहा वृत्रस्येव शचीपतिः।।१।।

काव्यार्थ-

यह वज्र सत्य धर्म की तृप्ति करे तथा,
अपने समस्त राज्य की प्रजा को पाल दे;
इस शत्रु के राज्य को विनाशता, उसका-
जीवन विनाश करता कष्ट में बिठार दे;
शत्रु की गरदनों को यह तोड़ डाले, औ-
नस-नाड़ियों को, धमनियों को काट डाल दे।

मंत्र- अधरोऽधरउत्तरेभ्यो गूढ़ः पृथिव्या मोत्सृपत्। वज्रेणावहतः शयाम्।।२।।

काव्यार्थ-

वह शत्रु श्रेष्ठ लोगों के नीचे बहुत नीचे-
होकर, सदा छिपकर रहे पृथिवी के बीच में,
सिर अपना वह ऊपर नहीं उठाए, अन्त में-
मर वज्र से भू पर गिरे, सन जाय कींच में।

मंत्र- यो जिनातितमन्विच्छदं यो जिनाति तमिज्जहि। जिनतो वज्र त्वं सीमन्तमन्वंच मनु पातय।।३।।

काव्यार्थ-

हे वज्र! अत्याचारी को ढूंढ निकाल तू,
करता जो उपद्रव मिले उसी को मार डाल;
हे वज्र! तू सदैव अत्याचारी के मस्तक-
को भूमि पर गिराता, मृत्यु-लोक में बिठाल।

सूक्त १३५

मंत्र- यदश्नामि बलं कुर्वत्थं वज्रमा ददे। स्कन्धानमुष्य शातयन्वृत्रस्येव शची पतिः।।१।।

काव्यार्थ-

जो कुछ भी मैं खाता उसे शुभ रीति पचाता,
बल को बढ़ाता, हाथ में लेता हूं वज्र को;
उस शत्रु के कंधों को इसी भांति काटता।
ज्यों शूर शत्रु काटता भृकुटि से वक्र हो।

मंत्र- यत्पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः। प्राणान मुष्य संपाय सं पिबामो अमुं वयम्।।२।।

काव्यार्थ-

जो कुछ भी मैं पीता हूं उसे पीता विधि से,
जैसे समुद्र पीता जो, पीकर के पचाता;
उस पेय के जीवन के रस को चूसते हुए,
हम पीवें विधि से, वही जीवन को बचाता।

मंत्र- यदगिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः। प्राणानमुष्य संगीर्य स गिरामो अमुं वयम्।।३।।

काव्यार्थ-

जो कुछ भी मैं खाता हूं, उसे खाता विधि से,
जैसे समुद्र खाता, उसे खाकर पचाता;
हम भी सदैव खाद्य अन्न रस को चबाकर,
खावें, यही हम सबके जीवनों को बचाता।

सूक्त १३६

मंत्र- देवी देवयामि जाता पृथिव्यामस्योषधे। तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि।।१।।

काव्यार्थ-

है औषधि! तू दिव्य गुणी भूमि के अन्दर,
दिव्य गुणों से युक्त हो उत्पन्न हुई है;
हे नीचे फैलती हुई नितत्नी औषधि,
तू सर्वदा हम लोगों पर प्रसन्न हुई है;
हम केशों को दृढ़ करने हेतु तुझको खोदते,
पृथिवी पर इसी गुण से तू सम्पन्न हुई है।

मंत्र - दृंह प्रत्नान जनयाजातान् जातानु वर्षीयसंस्कृधि।।२।।

काव्यार्थ-

हे नितत्नी औषधि! पुराने केशों को दृढ़कर,
उत्पन्न न हुओं को तू उत्पन्न किया कर;
उत्पन्न हुए केश बहुत लम्बे बना दे,
हम पर कृपा करती हुई सदैव जिया कर।

मंत्र- यस्ते केशोऽवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते। इदं तं विश्वमेमेषज्याभि षिंचामि वीरूधा।।३।।

काव्यार्थ-

हे नर! यदि तव केश गिरा करता पतित हो,
अरू जो समूल टूटता है, ऐसे केश को-
मैं नितत्नी के रस में भिगो करके, लेप कर;
करता हूं ठीक केश के सारे प्रदेश को;
केशों के सभी रोगों को मिटाती यह सदा,
इसके समान औषधि जग में हितेश को।

सूक्त १३७

मंत्र- या जमदग्निरखनद्दुहित्रे केशवर्धनीम्। तां वीतहव्य आभारदसितस्य गृहेभ्यः।।१।।

काव्यार्थ-

जलती हुई अग्नि से तेजवान पुरूष ने,
निज कन्धों हेतु अति गुणी जिस केश वर्धनी
नितत्नी औषधि को उखाड़ा है भूमि से,
जो केशों के समस्त ही रोगों की मर्दनी।

दोहा

पाने योग्य पदार्थ को पाने वाला सन्त।
अति उदार उर में लिये सेवा भाव अनन्त।।
उस औषधि को लाया वह, उन सज्जन घर जाय।
जो कि महात्मा थे गुणी रखते मुक्त सुभाय।।

मंत्र- अभीशना मेंया आसन्व्यामेनानुमेयाः केशा नडाइव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि।।२।।

जो अंगुलि से नापने के योग्य रहे थे,
अब हाथ से नपते हुए वह हाथ को भरें
वह तेरे सिर पर काले काले केश सर्वदा,
नरकट समान बढ़ते हुए मन मुदित करें।

मंत्र- दृंह मूलमाग्र यच्छ वि मध्यं यामयौषधे। केशा नडाइव वर्धनतां शीर्ष्णास्ते असितः परि।।३।।

काव्यार्थ-

हे औषधे! केशो को मूल को सुदृढ़ बना,
अरू अग्र को बढ़ा व लम्बा मध्य भाग हो
सुन्दरता लिये, घने तथा काले रंग के,
नरकट समान तेरे सिर चढ़े निदाग हो।

सूक्त १३८

मंत्र- श्रेष्ठ त्वं वीरूधां तमामिश्रुतास्यसोषधे। इमं मे अद्य पुरूषं क्लीब मोपशिनं कृधि।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे औषधि! विद्वानों को तेरे बहुगुण ज्ञात।
तू औषधियों बीच है अति श्रेष्ठ विख्यात।।

मेरा यह जन जो हुआ बलहीन बेजान।
आज इसे सब भांति कर उपयोगी बलवान।।

मंत्र- क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि। अस्थास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे मिनत्त्वाण्ड्यौ।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

इस बलहीन पुरूष को हे सद्‌वैद्य! आप।
कर्मठ उपयोगी बना बल से दीजे ढाप।।
औषधि-ज्ञान-महारथी रोग-निवारक आप।
रखते हैं दृढ़ शस्त्र दो पत्थर जैसी छाप।।
इस रोगी का रोग जो अण्डकोशों बीच।
उसे मिटा दें आप द्रुत छिन्न-भिन्न कर, भींच।।

मंत्र- क्लीब क्लीबंत्वाकरं वध्र वध्रिं त्वाकरमरसारसं लाकरम्। कुरीमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे रोग! तू व्यक्ति को क्या करता बलहीन।
देख, तुझे मैंने अति ही निर्बल कर दीन।।
हे नर का बल बांधने वाले रोग नीच।
मैंने तुझको कर दिया शक्ति हीन अरू पीत।।
नीरस करते रोग! है व्यर्थ तेरा यह काज।
स्वयं तुझे ही कर दिया मैंने नीरस आज।।
रखते हैं इस व्यक्ति के सिर कर्मठता भार।
आभूषण विस्तृत सुभग रखते साधिकार।।

मंत्र- ये ते नाड्यौ देवकृते यथोस्तिष्ठति वृष्ण्यम्। ते ते भिनद्‌मि शम्ययामुष्या अधिमुष्कयोः।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तेरी द्वय नाड़ियों में जो है उन्माद रोग।
ढीलापन जिन बीच का तुझको देता सोग।।
मैं तेरे इस रोग को करने हेतु ठीक।
स्वस्थ नाड़ी से हटाता हूं दोनों की लीक।।

स्वस्थ नाड़ी से अलग इन दोंनों को ही भेद।
अण्ड कोशों को देता मैं शम्या शस्त्र से छेद।।

मंत्र- यथा नडं कशिपुने स्त्रियों भिन्दन्त्यश्मना।ऐवा भिनध्मि ते शेपोऽमुष्याअधि मुष्कयोः।।५।।

काव्यार्थ- दोहा

ज्यों स्त्रियां चटाई रचने की रख आस।
पत्थर से बहु कूटतीं नरकट आदि घास।।
वैसे ही मैं निरोगी तव नाड़ी को छोड़।
अण्डकोशों के रोग-बल को देता हूं तोड़।।

सूक्त १३६

मंत्र- न्यस्तिका रूरोहिथ सुभगंकरणी मम। शतं तव प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन्नितानाः। तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते।।१।।

काव्यार्थ- कवित्त

मुझ पर प्रकट हुई है विद्या, जो मुझे-
शुभ ऐश्वर्य देती, लेती है छदाम ना,
त्रयस्त्रिंश देव तत् नियमित विस्तार,
अरू शत शाखाओं का भूलते हैं ठाम ना।
पालने की शक्ति धारती है जो सहस्रों रही,
नित्य ज्योतिमान, जिसका कि कोई दामना,
ज्ञानवान विदुषी! मैं ऐसी विद्या का ज्ञाता,
तुझे प्रेम-मग्न कर, चाहता हूं थामना।।

दोहा

तेरे मन में प्रेम का करते हुए उजास।
तुझ देवी से ब्याह की करता हूं मैं आस।।

मंत्र- शुष्यतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्यम्। अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अहे ब्रह्मचारिणी! तेरा हृदय सूख जाये,
मम प्रति मन में वियोग के विचार से;
तुझको कहीं भी नहीं मिले रंचमात्र चैन,
सुख शुष्क होवे तेरा उसही प्रकार से;
तू भी निज प्रेम द्वारा मुझको सुखाया करे,
शुष्कता को धारूं मैं वियोग के प्रहार से
तू भी मुझसे विलग होवे सूखे मुंह वाली,
तेरा छिन जाये चैन विरह प्रसार से।।

मंत्र- संवननी समुष्पला बभ्रु कल्याणि सं नुद। अमूं च च मांसं नुद समानं हृदयं कृधि।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

पोषण जो करती औ मंगल प्रदानती जो,
सेवन के योग्य जो, बढ़ाती उत्साह है;
ऐसी विद्या तू, हम दोनों पति-पत्नी को,
आगे बढ़ा, जहां तक जाती सत-राह है।
उस विदुषी को अरू मुझको मिलाकर तू,
एक कर दे यही हृदय के बीच चाह है;
हम दोनों ही के हृदय, एक जैसे होवें सदा,
प्रेम का पुजारी सदा शाहों बीच शाह है।।

मंत्र- यथोदकमपपुषोऽपशुष्यत्यास्यम्। एवा निशुष्य मां कामेनाथोशुष्कास्या चर।।४।।

मंत्र- यथा नकुलो चिच्छिद्यं संदधात्यहिं। एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जैसे जल को जो नहीं पीता, उस व्यक्ति का-
मुख सूख जाता, तेज जाता है प्रयाण कर;
वैसे तुझसे अलग, दूर मुझ व्यक्ति को-
निज प्रेम द्वारा सुखा मम मुस्कान हर।

नेवला ज्यों सांप को काट होता शांत-चित्त,
वैसे बलवती! पीर आनन्द प्रदान कर;
स्वयं भी सूखे मुंह वाली हो विचर, निज-
मन बीच में विरह-वेदना प्रकाम भर।।

सूक्त १४०

मंत्र- यौ व्याघ्रववरूढ़ो जिघत्सतः पितरं मातरं च। तौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौं कृणु जातवेदः।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

जब शिशु में निकलें प्रथम ऊपर नीचे दांत।
होवें दृढ़ता को लिये बली व्याघ्र की भांत।।
दांत निकलने पर जगे मन में ऐसी चाह।
जिससे वह माता-पिता को काटे उमगाह।।
अन्नपति, ज्ञानी गृहस्थ तब तू उस काल।
अन्न-प्राशन से दांतों को सुख देकर बैठाल।।

मंत्र- ब्रहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिल मृ। एष्ञ वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तों मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

हे दांतों! तुम प्रथम लो जौं चावल सम अन्न।
फिर पुष्टि-दा उरद सम खाकर रहो प्रसन्न।।
फिर लो चिकनाई लिये तिल आदिक हैं जेतु।
निश्चित है तव भाग यह रत्न धारने हेतु।।
प्रथमावस्था में इसी रीति अन्न को लेओ।
मात पिता तन काटकर कभी कष्ट मत देओ।।

मंत्र- उपहतौ सयुनौ स्योनो दन्तौ सुमंगलौ। अन्यत्र वां घोरं तन्व १ः परैतु दन्तौ मा हिं सिष्टं पितरं मातरं च।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

एक दूसरे से मिले प्रतिस्पर्धी दांत।
मंगलकारी हों तथा देवें सुख अरू शांत।।

दांतों! तव दुख-दा कर्म नहीं किसी को भाय।
वह बालक का तन तजे और कहीं को जाय।।
बालक के माता-पिता को मत काटो दांत।
यह हितकारी हैं उसे सब काल, सब भांत।।

सूक्त १४१

मंत्र- वायुरेनाः समाकरत्वष्टा पोषाय ध्रियताम्। इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद्रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

वायु समान शीघ्र गति के धारक आचार्य।
शिष्य जुटाने का सदा किया करें शुभ कार्य।।
तत् पोषण हित थिर रहे सूक्ष्मदर्शी आचार्य।
वह वैभवधारी धरें वचनों में औदार्य।।
ज्ञान-दाता आचार्य तत् ज्ञान-वृद्धि के हेतु।
रखें नियंत्रण में उन्हें तथा प्रदानें चेतु।।

मंत्र- लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि। अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

हे आचार्य! आप शुभ सत्य ज्योति ले हाथ।
तथाआत्म धारण शक्ति सामर्थ्य के साथ।।
हम सब शिष्यों को करें सत्य-ज्ञान उपदेश।
मात-पिता देवें हमें शुभ-संस्कार विशेष।।
वह शुभ संस्कार हम शिष्यों में अधिकाय।
अरू आचार्य गण उन्हें विकसित करते जांय।।

मंत्र- चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत। एवा सहस्रपोशाय कृणुतं लक्ष्माश्विना।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

जैसे सद्व्यवहार पटु पहले के विद्वान्।
अरू मनुष्य शुभ-लक्ष्णों की थे धारक खान।।
सजग रहे कर्तव्यों के पालन में पितु-मात।
तद भांति शुभ गुणों का हममें करें प्रभात।।

सूक्त १४२

मंत्र- उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव मृणीहि विश्वा पात्राणि मात्वा दिव्याशनिर्वधीत्।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

हे यव! निज में रहा तू जो उत्तमता पाल।
उससे उठ अरू हो बहुत सब बर्तन भरडाल।।
नभ की बिजली आदि जो भी उत्पात दिखाय।
वह सब किंचित भी तेरा नाश न करने पाय।।

मंत्र- आशृण्वन्तं यवं देवं त्वाच्छावदामसि। तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्रइवैध्यक्षितः।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

हे यव! तू करता सदा हमको अंगीकार।
दिव्य गुणों से युक्त तू जीवन का आधार।।
तुझे उगाना चाहें हम जिस जिस भी स्थान।
नभ समान तू उठ वहां अक्षय जल धिसमान।।

मंत्र- अक्षितास्त उपासदोऽक्षिताः सन्तु राशयः। पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वक्षिता।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

हे यव अक्षय होय सब तेरे निकट के वासी।
अक्षय हो तोषक तथा अक्षय तव सब राशि।।
तुझको खाते लोग जो वह सब अक्षय होय।
तव अक्षयता दान से वंचित रहे न कोय।।

काण्ड ७

सूक्त १

मंत्र- धीती वा ये अनयन्वाचो अग्रं मनसां वा येऽ वदन्नृतानि।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनो।।१।।

काव्यार्थ- कवित्त

जिन्होंने वेद जन्य श्रेष्ठता को प्राप्त किया,
अरू करते तदनुसार श्रेष्ठ काम को;
अरू द्वितीय विज्ञान साथ सत्यता को-
बोला है तदैव दिन-रात प्रातः शाम को।
तृतीय कर्म विज्ञान से परे प्रभु के,
साथ वृद्धिकरते, न लेते हैं विराम को;
उन्होंने चौथा मोक्ष पद लभ जाना हुआ,
काम-धेनु सम तृप्ति दाता प्रभु नाम को।।

मंत्र- स वेद पुत्रः पितरं स मातरं स सूनुर्भवत्स भुवत्पुनर्मघः। स
द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्व१ः स इदं विश्वमभवत्स आभवत्।।२।।

काव्यार्थ- कवित्त

रक्षक सभी का वह जगदीश जानता है,
पिता के समान रहे सूरज प्रकट को;
वही सर्वप्रेरक हमारा प्रभु जानता है,
माता सम निर्माता पृथिवी सुघट को।
नभ और सूर्य लोक उसके आधीन, वह-
बार-बार धन दान करता दिखात हो;
इस जगती के बीच व्याप, वर्तमान हुआ,
वह सबही के अत्यन्त ही निकट हो।।

सूक्त २

मंत्र- अथर्वाणं पितरं देवबन्धु मातर्गर्भं पितुरसुं युवानम्। य इमं यज्ञं
मनसा चिकेत प्राणो वोचस्तमिहेह ब्रवः।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जिस आप ज्ञानी व्यक्ति ने साक्षात् किया,
प्रभु के गुणों का रह साधना की सरना;
प्रभु जो कि पूजनीय, पालक, हितैषी तथा,
पृथिवी के गर्भ सम व्याप्तियों का झरना।
प्राण सूर्य का, जो संयोजक वियोजक है,
आपको न जिसके प्रचार से मुकरना;
अतएव ऐसे आपको है उस आदि ब्रह्म-
का हमारे बीच सदा उपदेश करना।।

सूक्त ३

मंत्र- अया विष्ठा जनयन्कर्वराणि स हि घृणिरूरूर्वराय गातुः। स प्रत्युदैद्धरूणं मध्वो अग्रं स्वया तन्वातन्वं मैरयत।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

इस रीति से कर्मों को करते शुभ फल हेतु।
ज्ञान धारती श्रेष्ठता प्रभू उदित कर देतु।।
प्रभु जो अतिविस्तृत तथा सर्वशक्तिमय भूप।
पाने गाने योग्य जो अरू हैं ज्योतिस्वरूप।।
अंतः में धारे हुए अतुलित शक्ति अनूप।
किया उसी ने प्रकट अति विस्तृत सृष्टि रूप।।

सूक्त ४

मंत्र- एकया च दशभिश्चा मुहुते द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च। तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च वियुग्भिर्वाय इह ता वि मुंच।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे महत् दानी प्रभु! जीवन के यज्ञ की,
सफलता रही है तव योजना के जोर से;
एक और दस अर्थात् ग्यारह की तथा,
बाइस की दो व बीस आपस में जोड़ के।
तीन और तीस अर्थात् शुद्ध तैंतीस की,
योजनाओं से तू चले आनन्द करोड़ दे;

सर्वव्याप्त ईश्वर! वह विशेष योजनाएं,
तू यहां पर हममें विशेषकर छोड़ दे।।

(ग्यारह योजनाएं-दो नासिका, दो कान, दो नेत्र, एक मुख, एक पायु, एक उपस्थ, एक नाभि,एक ब्रह्म रन्ध्र। बाइस योजनाएं- पांच महाभूत, पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, एक अंतःकरण, एक बुद्धि। तैंतीस योजनाएं- आठ वसु, ग्यारह रूद्र, बारहआदित्य, एक विद्युत, एक प्रजापति।)

सूक्त ५

मंत्र- यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्व साध्याः सन्ति देवाः।।१।।

काव्यार्थ-

विद्वान लोग पूजनीय कर्मों के द्वारा,
अति पूजनीय ब्रह्म सदा पूजते रहे;
उन विज्ञों के जो धारणीय कर्म रहे, वह-
कर्तव्य मुख्य बन के सदा कूजते रहे।
उन ही ने सुख-समुद्र ब्रह्म प्राप्त किया था,
उस ही के आश्रय में पूर्व विज्ञ रहे थे;
वह पूर्व-विज्ञ श्रेष्ठ कर्म साधते हुए,
विजयी बने थे, शत्रुओं के दुर्ग ढहे थे।

मंत्र- यज्ञो बभूव स आ बभूव स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुनः। स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्मासु द्रविणमा दधातु।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सर्व पूजनीय हुआ वह परमेश्वर, और।
हुआ सर्वव्यापक तथा ज्ञापित सिगरे ठौर।।
वही सुनिश्चित कर बढ़ा देव अधिपति होय।
विनती वह हममें सुखद प्रापणीय बल बोय।।

मंत्र- यद्देवा देवान्हविषायजन्तामर्त्यान्मनसामर्त्येन। मदेम तत्र परमे व्योमन्पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य।।३।।

काव्यार्थ-

दिव्य पुरूष जिस ब्रह्म के अविनाशी दिव्य गुण,
आदान अरू प्रदान के निज कर्मों से कहें;

संगतिकरण, सत्कार, दान और जागरित-
मन द्वारा साक्षात्कार कर उन्हें गहें।
उस ब्रह्म को हम अंध-विनाशक प्रकाश-दा,
सूर्य के उदय बीच सदा देखाते रहें,
करते निवास उसमें हम आनन्द को भोगें,
पापों की चोट ग्लानि द्वारा सेकते रहें।

मंत्र- यत्पुरूषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत। अस्ति नु तस्मादोजीयो यद्विहव्येनेजिरे।।४।।

काव्यार्थ-

जब दिव्य व्यक्तियों ने अपनी आत्मा के साथ,
आदान अरू प्रदान के व्यवहारों के द्वारा;
फैलाया पूजनीय ब्रह्म, तब किया साक्षात्,
उस ब्रह्म से गतिवान है ब्रह्माण्ड हमारा।

मंत्र- मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गौरंगेः युरूधाजयन्त। य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्रणो वोचस्तमिहेह ब्रः।।५।।

काव्यार्थ-

विद्वान लोग ईश की महिमा के विषय में-
हो मूढ़ भी, उससे मिले निज ज्ञान घना से;
अरू उसको विविध भांति सदा पूजते रहे,
शुभ वेद वाणी अंगो लगी बुद्धि मना से।
जो तू स्वयं के ईश इस पूजनीय को,
विज्ञान द्वारा जानकर अज्ञान हना दे;
उस ईश का यहां ही तू उपदेश कर तथा
संसार को आगे बढ़ा, समृद्ध बना दे।

सूक्त ६

मंत्र- अदितिद्यौरादितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता सः पुत्रः विराम विश्वे देवा अदितिः पंच जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्।।१।।

काव्यार्थ-

हम सबको स्वर्ग जैसी यह पृथिवी है हमारी।।
पृथिवी हमारी सूर्य, पृथिवी है अन्तरिक्ष,

पृथिवी है जन्म देने वाली हमारी माता;
वह ही पिता हमारा, वही है पुत्र प्यारा,
पृथवी हमारी हमको सिगरे ही देव दाता।
पृथिवी ही सब्जियां है सब पंचभूत जन्मी,
पृथिवी समस्त जन्मे पदार्थ मोदकारी,
उत्पन्न होने वाले सब ही पदार्थ पृथिवी,
पृथिवी हमारी प्यारी आनन्द की बयारी।।

मंत्र- महीमुषु मातरं सुवृतानामृतस्य पत्नी मवसे हवामहे। तुविक्षत्रामजरन्तीमरूचीं सुशर्माणमादितिं सुप्रणीतिमू।।२।।

काव्यार्थ-

पृथिवी सुकर्मियों को माता सी है हितैषी,
वह सत्य की पालक है, वह सत्य धर्म रक्षक;
निज छात्र-तेज नाना विधि से दिखाने वाली,
अक्षीण अरू विशाल,दुष्टों की दर्प भक्षक।
पृथिवी समर्थ अपनी, दुःख दैन्य को भगाती,
अपने सुतों के हेतु है योग-क्षेम कारी;
जीवन व प्राणदाता, बहु अन्न दा पृथिवी को,
रक्षार्थ हम बुलाते, वह कष्ट हरे भारी।।

मंत्र- सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदिति सुप्रणीतिमू। दैवीं नारं स्वरित्रामनागसो रूहेमा स्वस्तये।।३।।

काव्यार्थ-

पृथिवी सभी को उत्तम रक्षाएं दिया करती,
पृथिवी प्रकाश धारक अरू तेज की प्रदाता;
पृथिवी जो अखण्डित है, पृथिवी जो है अहिंसक,
उत्तम सुखों को देना जिसको सदैव भाता।
जिसकी बहुत ही सुन्दर शुभ नीतियां रहती है,
अरू बल्लियां लगीं दृढ़ जिस नौका के मंझारी;
विज्ञों की बनाई इस नौका सी पृथिवी पर,
चढ़ने के लिये रहते हैं, हम सदा अगारी।

मंत्र- वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे। यस्या उपस्य उर्वऽन्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात्।।४।।

काव्यार्थ-

हम शक्ति औ समृद्धि को प्राप्त करें, जिससे
खेतों में बल प्रदाता उपजाएं अन्न नाना;
इस हेतु अन्न देती है पृथिवी जो हमारी,
उसके सुयश का हम सब गाते सदैव गाना।
सुविधा अरू अनन्त यह अन्तरिक्ष बैठा,
जिस माता जैसी पृथिवी की गोद के मंझारी;
वह पृथिवी आधिदैविक, आध्यात्मिक व भौतिक,
तीनों प्रकार के सुख हम हेतु करे जारी।

सूक्त ७

मंत्र- दितेः पुत्राणामदितेरकारिषमव देवानां बृहतामनर्मणाम्। तेषां हि घाम गभिषक् समुद्रियं नैनान्नमसा परो अस्ति कश्चन।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

फैलाने परतंत्रता असुर पृवृत्ति लोग।
गहरे सागर बीच रह करते दुष्ट प्रयोग।।
उन्हें हटाता हूं वहां से उन लोगों हेतु।
जो स्वतंत्र निज मातृ भू करने का प्रण लेतु।।
श्रेष्ठ गुणों युत अहिंसक वीरों के सिर-मौर।
उन सत्पुरूषों से अधिक योग्य न कोई और।।

सूक्त ८

मंत्र- भद्रादधि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु। अर्थममस्या वर आ पृथिव्या आरेशत्रु कृणुहि सर्ववीरम्।।१।।

काव्यार्थ-

हे नर तू अपने द्वारा कृत एक शुभ करम से।
कर परम शुभ करम को, कर पूर्ण निज धरम ले।
पथ का बने प्रदर्शक प्रभु-वर तेरा चहाता,
पालक बड़े-बड़े सब लोकों का जो कहाता।

पृथिवी का श्रेष्ठ थल यह जो है गुणों से पूर्ण,
वीरों के लिए कर तू, खल शत्रुओं से दूर।

सूक्त ६

मंत्र- प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः। उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन्।।१।।

काव्यार्थ- सवैया

प्रभु पोषक पोस रहा सबको,
सबमें सब ओर विराज रहा;
सब ही त्रिलोक थलों में, अरू,
द्यु मारग को वह साज रहा।
पृथिवी, नभ के सब भागन में,
रहता वह ही सरताज रहा;
दुहु थान अति प्रिय जान वही,
अति दूर, वही अति पास रहा।।१।।

मंत्र- पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्मां अभयतमेन नेषत्। स्वस्तिदा आधृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन्पुर ऐतु प्रजानन्।।२।।

काव्यार्थ- सवैया

इन सारी दिशाओं को, औ सबको,
प्रभुदेव यथावत जानता है;
शरणगत को बिन शूल रहे,
भयहीन पथों पर डालता है।
पथ उन्नत दे, हमको अति वीर,
सतेज बनाकर तानता है;
वह ही एक नेता हमारा, सदा-
गतिशील, प्रमाद न मानता है।।

मंत्र- पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदान। स्तोतारस्त इह स्मसि।।३।।

काव्यार्थ- सवैया

प्रभु जी! नित पोषण आप करें,
तव कर्म कदापि न रंच टले;

इससे हम लोग सदैव रहें,
तब सत्य ब्रतानुष्ठान तले।
तव रक्षण पा हम नष्ट न हों,
हमको न विनाश कदापि दले;
जितने भी समय जग बीच रहें,
तव गान सदा करते ही चलें।

मंत्र- परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम्। पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि।।४।।

काव्यार्थ- **सवैया**

जग पोषक वो प्रभुदेव हमें,
निज दाहिना हाथ प्रदान करे,
हम हों न कभी असहाय जरा,
गिरते हों जभी, वह त्राण करे।
बहु नाश पदारथ का जब हो,
होवें साधन हीन, विरान जरे,
फिर से उसको तब प्राप्त करें,
इतने हों बली, शुभ-ज्ञान धरे।।

सूक्त १०

मंत्र- यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूर्यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः। येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मात हे सरस्वती! तुम्हारा वेद स्तन है,
ज्ञान-दुग्ध भरा रहता है जहां जोर कर;
जो कि सुख देता अरू करता है उपकार,
श्रेष्ठतम पुष्टियों की रखता है भोर कर।
जो कि शुभ रीति से ग्रहण करने के योग्य,
हीनता व क्लीवता को रखता मरोर कर;
प्रार्थना है पुष्टियां प्रदानियेगा आप हमें,
ऐसे शुभ स्तन को रंच इस ओर कर।।

सूक्त ११

मंत्र- यस्ते पृथु स्तनयित्नुर्य ऋष्वो दैवः केतुर्विश्वमाभूषतीदम्।मा नो बर्धीर्विद्युता देव सस्यं मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य।।१।।

काव्यार्थ- कवित्त

जल से भरे कृपालु जल-मेघ! तू सदैव-
प्राणियों के कष्ट दुःख दूर करता सभी;
गर्जना से पूर्ण वृष्टि जल में प्रवाहित हो,
तृप्तियां प्रदानता, न रंच धारता कमी।
हो अतीव विस्तीर्ण, इत उत डोलता है,
जैसे मार्ग-दर्शक ध्वजा हो, धारता छवी;
विद्युत् से तू हमारा धान्य नहीं नष्ट कर,
न ही सूर्य किरणों से उसको सुखा कभी।।

सूक्त १२

मंत्र- सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुह्वितारौ संविदाने। येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारू वदानि पितरः संगतेषु।।१।।

काव्याथ

राजा प्रजापालक के लिये सभा और समिति,
द्वय पुत्रियों समान पालने के योग्य हों;
एकमत होती, मुझ राजा को वह तृप्त करें,
दूषण मिटाती हुई, देती आरोग्य हों।
जिस भी सभासद से शासन के हेतु मिलूं,
अपनी सु-सम्मति वह मुझको दिया करे,
पालक हे विज्ञ जन! मेरी शुभ वाणी द्वारा,
चलती सभाएं मधुरस को पिया करें।

मंत्र- विद्यम ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि। ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः।।२।।

काव्यार्थ-

राज्य की हे सभा तव नाम हम जानते हैं,
इष्ट देवी नाम की, नरों का नाश ना करें;

तेरे जो सभासद हैं, वह सब समता का-
भाषण सदैव मुझ भूपति को पा करें;
वह सब ही सदैव सम्मति को स्पष्ट-
शब्दों में, पक्षपातहीनता को ला करें

मंत्र- एवामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे। अस्याः सर्वस्यांः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु।।३।।

काव्यार्थ-

बैठे हुए इन सभासदों का प्रशासनिक-
श्रेष्ठ ज्ञान-तेज मैं महीप स्वीकारता;
परमेश! मुझको प्रदान इस सभा का ज्ञान,
औ प्रदान शुभ ऐश्वर्य की अगाहता।

मंत्र- यद्वो मनः परागतं यद्वद्धामिह वेह वा। तद्य आ वर्तयामसीमयि वो रमतां मनः।।४।।

काव्यार्थ-

हे सभासदों! तुम्हारा मन जो कि राज्य के-
शासन के विषयों से दूर गतिमान है;
अथवा इधर औ उधर प्रतिकूल रहे-
विषयों में बँध, रंच नहीं द्युतिमान है।
तुम्हारे उस मन को मैं राजा पुनः राज्य-
शासन की ओर मोड़ कर लिये चलता,
जिससे तुम्हारा मन मुझमें व राजकाज-
बीच रम जाय, छले रंच न विकलता।

सूक्त १३

मंत्र- यथासूर्यो नक्षत्राणामुद्यस्तेजांस्याददे। एवा स्त्रीणां च पुसां द्विषितां वर्च आ ददे।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

उदित हुआ रवि डाल ज्यों निज किरणों का जाल।
नक्षत्रों के तेज को हर लेता तत्काल।।

वैसे ही नर नारी जो रखते द्वेष सहेज।
उनका हर कर तेज मैं, कर देता निस्तेज।।

मंत्र- यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ। उद्यन्त्सूर्यइव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जैसे उगता सूर्य निज किरणों का दल भेज।
सोते पुरूषों का सदा हर लेता है तेज।।
वैसे मुझको आते, जो लखते अरि दल बीच।
उनका सब का तेज मैं लेता तत्क्षण खींच।।

सूक्त १४

मंत्र- अभियं देव सवितारमोण्योः कविक्रतुम्। अर्चामि सत्यसवं रत्नधाभि प्रियं मतिम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सूर्य, पृथ्वी के जो जनक हैं, महान् ज्ञानी,
सतत ही कर्मशील, सत्य को जो प्रेरते;
सबके ही प्यारे, रमणीयता को धारे जो हैं,
जिनके सभी हैं ध्याता, सब जन टेरते।
अति ही महान्, जो हैं सर्वशक्तिमान, सदा-
सत्कर्मियों के कष्ट शीघ्र ही अहेरते,
वो हैं प्रभुदेव सुखदाता, मैं तो उनकी ही,
ओउम् नाम माला नित रहता हूं फेरते।।

मंत्र- ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि। हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात्सवः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ऊपर फैली सब जगह जिसकी ज्योति अबाध।
जो द्युतिमान कर रही, सृष्टि रूप प्रासाद।।
शुभ बुद्धि शुभ कर्म मय जो प्रभु है जग-नाथ।
उसने मोक्ष सुख रचा निज तेजोमय हाथ।।

मंत्र- सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै। अथास्मभ्यं सवितर्वार्थीणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

ज्योति-स्वरूप प्रभुवर! ज्योति प्रदान कर्ता।।
तूने, जो हमसे पहले पालक महात्मा थे,
अरू इस अपर पुरूष को अति पूत आत्मा के,
दे श्रेष्ठता बनाया अति उच्च पद का धर्ता।।
अतएव सर्वप्रेरक परमेश्वर हमारे,
हमको असंख्य पशुओं, धन धान्य में जमा दें,
हमको बना दें उत्तम विज्ञान बीच तरता।।

मंत्र- दमूना देवः सविता वरेण्यो दधद्रत्नं दक्षं पितृभ्य आयुंषि। पिबात्सोमं ममददेनमिष्टे परिज्मा चित् क्रमते अस्य धर्माणि।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

व्यक्ति वरणीय, दिव्य गुण युक्त अरू शान्त,
जो कि चलाने वाला और दानशील है;
पालक विद्वानों हेतु जीवन के साधन औ-
धन, बल धारता, जो देता नहीं ढील है।
वह इस प्रभु को प्रसन्न करे यज्ञ बीच,
जो कि है दयालु बड़ा, रंच न हठील है;
गतिमान पुरूष ही, प्रभु-आज्ञा को पाल,
आनन्द को भोगता है, छोड़ता करील है।।

सूक्त १५

मंत्र- तां सवितः सत्यसवां सुचित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम् यामस्य। कण्वो अदुहत्प्रपीनां सहस्रधारां महिषो भगाय।।१।।

काव्यार्थ- **गीत**

सूर्य सम ज्ञानी हे विद्वान्।
मुझ जिज्ञासु व्यक्ति को दीजे, आप सुमति का दान।।
सबको ही स्वीकार्य, सत्य की प्रेरक, जो कि विलक्षण,
धारक सहस्र ज्ञान-धाराओं की परिपुष्ट विचक्षण,
जग-वैभव हित प्रभु ने जिसका दोहन किया महान्।।

सूक्त १६

मंत्र- बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय। संशितं चित्सन्तरं सं शिशाधि विश्व एनमनु मदन्तु देवाः।।१।।

काव्यार्थ-

सज्जन-रक्षक, विद्या अरू ऐश्वर्य युक्त उपदेशक।।
इस राजा को महनीय सौभाग्य हेतु बढ़ायें,
इसको ज्योतिवान कर धरती का अज्ञान हटायें,
इस मेधावी को कीजेगा तेजस्वी, उन्मेषक।।

दोहा

आप करायें राजा का शुभ-शिक्षा से योग।
इसका अनुमोदन करें दिव्य गुणी सब लोग।।

सूक्त १७

मंत्र- धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः। स नः पूर्णेन यच्छतु।।१।।

काव्यार्थ-

मामर्थ्यवान, सृष्टिकर्ता, जगत के पालक,
ऐश्वर्यवान् प्रभुवर! हम हेतु धन जुटायें,
हे सर्वशक्तिमान्। दाता सकल बलों के,
सम्पूर्ण बल प्रदाने, ऊंचा हमें उठाएं।

मंत्र- धाता दधातु दाशुषे प्राची जीवातुमक्षिताम्। वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः।।२।।

काव्यार्थ-

सारे जगत् के धारक, पोषक, हे श्रेष्ठ प्रभुवर,
दानी पुरूष में सम्मानित जीविका बिठारें;
हम उस प्रकाशरूप, सिगरे धनों के स्वामी,
प्रभु को नहीं बिसारें, उसकी सुमति को धारें।

मंत्र- धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे। तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वह दानी जिसके हृदय चाह प्रजा की होय।
धन-वैभव उसका बढ़े कमी रहे नहीं कोय।।

प्रभु जो सबको ही सदा धारण करता आप।
वह वरणीय पदार्थ सब उसके घर दें छाप।।
दैवी शक्ति अनन्त जो रहे प्रेम से युक्त।
सकल विज्ञ, ज्ञानी अमर उसको सुख दें ठुक्त।।

मंत्र- धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः। त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह व्यक्ति निज की विनय प्रार्थना को सुने,
शुभ उत्पादन व धारण जो करता,
जो है दानाध्यक्ष अरू पालक प्रजा का तथा
तेजस्वी विद्वान् अंध को जो हरता।
सर्वव्याप्त, सम्ययक्दाता, निर्माता प्रभु,
उसको बनाए धन, बल में विचरता,
जो प्रजा के साथ वर्तमान हो, पदार्थों का
संयोजन और वियोजन कर्म करता।।

सूक्त १८

मंत्र- प्रनभस्व पृथिवी भिन्द्धी३दं दिव्यं नभः। उद्नो दिव्यस्य नो धारतीशानो विष्या दृतिम्।।१।।

काव्यार्थ-

हे अन्तरिक्ष-वायु! तू नभ में रहे जल को,
शुभ रीति से गिरा तथा फैला दे दूर तक;
पोषक समर्थ सूर्य। तू जल-पात्र मेघ को,
हम हेतु खोल दे, न उसे रंच मात्र ढक।

मंत्र- न घ्रंस्तताप न हिमो जघान प्र नभता पृथिवी जीरदानुः। आपश्चिदस्मै घृतमित्क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित्तत्रं भद्रम्।।२।।

काव्यार्थ-

सूरज न तपावे चमकता, शीत न मारे,
गतिदायी अन्तरिक्ष जल गिरावे रीति से,

जग हेतु सब प्रजाएं घृत समान हो बहें,
कल्याण हैं वहां, जहां ऐश्वर्य प्रीति से।

सूक्त १९

मंत्र- प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः। संजानाना संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु।।१।।

काव्यार्थ-

इन सब प्रजाओं को जनम देता प्रजापालक,
पोषक जो कहाता तथा पोषण किया करता,
इस सर्वहितू से सभी जन ज्ञान हैं, पाते,
मत औ विचार एक से जन-जन हिया भरता,
सब एक ही कारण से बंधे हो रहा करते,
जन-जन सदैव एक में अपना ठिया करता,
वह सर्वशक्तिमान मुझे पुष्टियां देवे,
सृष्टि के जीवों को वही पुष्टि दिया करता।

सूक्त २०

मंत्र- अन्वद्य नोऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम्। अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम।।१।।

काव्यार्थ-

विद्वानों बीच अनुकूल बुद्धि हमारी,
सत्कर्म करने के लिये अनुकूलता पाये,
ग्राह्य-पदार्थ प्राप्ति में मुझ दान दाता का,
विक्रम सदैव फलता तथा फूलता जाये।

मंत्र- अन्विदनुमते त्वं मंससे शं च नस्कृधि। जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि रशस्व नः।।२।।

काव्यार्थ-

अनुकूल बुद्धि! हम सभी के बीच सदा ही,
हमारी प्रार्थना को मान और भला कर;
ग्रहणीय जो पदार्थ तुझे हम दिया करते,
उन सबको तू स्वीकार करते हुए चला कर;

हे देवि! तू सन्तानों भृत्यों आदि को देकर,
हम हेतु सदा ही सभी सुख-भोग फलाकर।

मंत्र- अनु मन्यतामनुमन्यमानः प्रजावन्तं रयिभक्षीयमाणम्। तस्य वयं हेडसि मापि सुमृणीके अस्य सुमतौ स्याम।।३।।

काव्यार्थ-

परमेश्वर न घटने वाला, प्रजायुक्त है,
अपनी प्रजा के कर्म निरन्तर ही जानता;
धन प्राप्त करने के लिए अनुमति हमें देवे,
हम पर कभी नहीं रखे, भृकुटि को तनता;
हम उसके श्रेष्ठ सुख में सदा ही बने रहे,
कल्याणी बुद्धि में रहें, छोड़े अजानता।

मंत्र- यत् ते नाम सुहवं सुप्रणीतेऽनुमते अनुमतं सुदानु। तेना नो यज्ञं विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर।।४।।

काव्यार्थ-

अनुकूल बुद्धि! हमको चलाती सुमार्ग पर,
सादर तेरा यश जो कि आवाहन के योग्य है,
जिसको महत् दानी व निरन्तर कहा गया,
वरणीय पदार्थों का, जो देता आरोग्य है,
उससे हमारे पूजनीय कर्म पूर्ण कर,
धन दे सुवीरों रूप जो प्रजा को भोग्य है।

मंत्र- एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम सुक्षेत्रतायै सुजातम्। भद्रा ह्यस्याः प्रमतिर्बभूव सेमं यज्ञमवतु देवगोपा।।५।।

काव्यार्थ-

अनुकूल बुद्धि! तू अति प्रसिद्ध हमारे-
सत्कर्म में आई सुवीर प्राप्त कराने;
आई है बनाने के लिये श्रेष्ठ थल तथा-
इस पूजनीय कर्म में कुविचार हराने;
कल्याणी हुई इसकी ही अति श्रेष्ठ बुद्धि है,
रक्षा किया करती यही विज्ञों के धराने।

मंत्र- अनुमतिः सर्वमिदं बभूव यत्तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति। तस्यास्ते देवि सुमतौ स्यामानुमते अनु हि मंससे नः।।६।।

काव्यार्थ-

जो कुछ खड़ा होता है औ जो कुछ भी है चलता,
जो कुछ भी हाथ-पैर चलता, चेष्टा करता,
अनुकूल बुद्धि! इस सभी में तू ही व्यापती,
हम तेरी सुमति में रहें, रक्खें तुझे सरता,
हे अनुमति! तू ही हमें अनुग्रह पूर्वक-
है जानती, तू ढारती हममें रहे नरता।।

सूक्त २१

मंत्र- समेत विश्वे वचसा पतिं दिव एको विभूरतिथिर्जनानाम्। स पूर्व्यो नूतनमाविवासत्तं वर्त निरनु वावृत एकमित्पुरू।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे समस्त लोगों! सत्यवचन से, सूर्य के-
स्वामी से मिलो, वह मिले सत्य विचार से;
एक वही सर्वव्याप्त प्रभु, सबका ही नित्य-
मिलने के योग्य अतिथि है वेद सार से।
सबसे ही पूर्व विद्यमान, वह अदृश्य ईश,
मिल रहता है जग रूप परिवार से;
प्रत्येक चलने के योग्य मार्ग, एक उसी-
प्रभु ओर घूमता है विविध प्रकार से।।

सूक्त २२

मंत्र- अयं सहस्रमा नो दृशे कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वह परमेश्वर हम सहस्र बुद्धिमानों के बीच।
व्याप रहा अदृश्य हो रखे दया से सींच।।
पंच-भूत जग बीच निज महिमा दर्शन हेतु।
ज्ञान रूप,ज्योति स्वरूप हो देता चेतु।।

मंत्र -बृघ्नः समीचीरूषसः समैरयन्। अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमश्चिते गोः।।२।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभो एक सूरज वृहदाकार।
अपनी तेजपूर्ण किरणों का किये हुए विस्तार।।
उषा-काल की किरणों सम किरणे प्रकाश देती हैं,
कोमलता से भरी, ज्ञान को यह विकास देती हैं,
करती हैं अज्ञान-अंध पर, किरणें सतत प्रहार।।
किरणें हैं अत्यन्त विमल, उत्साह बढ़ाने वाली,
हृदय बीच शुभता-ज्योति की, चाह बढ़ाने वाली;
इससे शक्ति प्राप्त कर इन्द्रिय, लेतीं कर्म सुधार।।

सूक्त २३

मंत्र- दौर्ष्वप्न्यम् दौर्जी नित्यं रक्षोअभ्वमराय्यः। दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि।।१।।

काव्यार्थ-

जीवन के कष्ट और नींद बीच व्यग्रता,
अलक्ष्मी अभाव, जो तन मन को चिता दे,
राक्षस बड़े व दुष्ट नाम वाले दुर्वचन,
इन सबको अपने बीच से हम लोग मिटा दें।

सूक्त २४

मंत्र- यन्न इन्द्रो अखनद्यग्निर्विश्वे देवा मरूतो यत्स्वर्काः। तदस्मभ्यं सविता सत्यधर्मा प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

ऐश्वर्यधारी व्यक्ति जैसा ऐश्वर्य हम-
सब वयक्तियों के लिए प्राप्त करते रहें;
हम हेतु जैसा ऐश्वर्य अग्नि के समान
तेजवान निज बीच व्याप्त करते रहें।
हम ही के हेतु जैसा ऐश्वर्य, व्यवहार-
पटु वज्रधारी पर्याप्त भरते रहें;

सत्य धर्मी प्रजापति ईश नियमानुसार,
वैसा ऐश्वर्य हम बीच धरते रहें।।

सूक्त २५

मंत्र- ययोरोजसा स्कभिता रजांसि यौ वीर्यैर्वीरतमा शविष्ठा। यौ पत्येते अप्रतीतौ सहोभिर्विष्णुमगन्वरूणं पूर्वहूतिः।।१।।

काव्यार्थ-

जिन राजा, मंत्री से लोक अरू लोकान्तर हैं थमे हुए,
निज विक्रम से जो अति वीर महाबली हो जमे हुए;
जो निज बल से अविराम हो ऐश्वर्यों में रमे हुए,
सूर्य वारि सम दोनों प्रति हम सबसे पहले नमे हुए।

मंत्र- यस्येदं प्रदिशि यद्विरोचते प्र चानति वि च चष्ट शचीभिः। पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुभगन्वरूणं पूर्वहुतिः।।२।।

काव्यार्थ-

देव रूप जिन राजा, मंत्री का रहता शुभ शासन है,
नीति, धर्म, विक्रम से चलता जिनका राज्य प्रशासन है;
जिन बल राज्य आंख खोलता, करता ज्योति प्रकाशन है,
व्यापन शील श्रेष्ठ उन द्वय को हम देते निज आसन हैं।

सूक्त २६

मंत्र- विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि। यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरूगायः।।१।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभु करेगा तुम्हारे दुख दूर, प्रभु का नित भजन करो।।

❖

सूर्य चन्द्र आदि का दल जो नभ में खचा हुआ है,
प्रभु ने उसको बड़ी कुशलता द्वारा रचा हुआ है;
लख उसकी शक्ति अपार, उसी की मन लगन धरो।।

❖

उसने अपने तीन पराक्रम से त्रिलोक बनाया,
यह द्यु-लोक सभी के ऊपर बिन आधार तनाया;

करें उसकी प्रशंसा अपार ऋषि मुनि वेद खरो।।

❖

भक्त जनों की बाधाएं वह चूर्ण किया करता है,
तथा सकल सद्-इच्छाओं को, पूर्ण किया करता है;
यह भरेगा तुम्हारे भण्डार, उसी में मन मगन करो।।

मंत्र- प्रतद्विष्णु स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुचरो गरिष्ठाः। परावत आ जगम्यात्परस्याः।।२।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभु है अतुल गुणों की खान।
प्रभु के गुण को देख, प्रभु की करियेगा पहचान।।
अपने पराक्रमों से वह प्रभु सदा प्रशंसा पाता,
सिंह भयानक सम पृथिवी पर इत उत आता जाता;
नर ही हृदय गुहा में उसका रहने का स्थान।।
ऐसा थल है नहीं, जहाँ पर उसका वास नहीं है,
दूर से भी दूर वास की उसके जगह रही है;
वह समीप से भी समीप है, करते वेद बखान।।

मंत्र- यस्योरूषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा। उरू विष्णो वि क्रमस्वोरू क्षयाय नमस्कृधि। घृतं घृतयोने पिव प्रप्र यज्ञपतिं तिर।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभु! अतुल पराक्रम वसवान, आपसे विनती है।।
प्रभु जी तीन पराक्रम कीनो,
पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यु दीनो;
बनी जिनकी स्थिति रंच, कभी नहीं छिनती है।।
हमको सुखद निवास हेतु प्रभु;
अरू शुभ-कर्म प्रकाश हेतु प्रभु,
दीजै शुभ विस्तृत स्थान, जिसकी नहीं गिनती है।।
आनन्द-रस के जनक अपारा,
भक्ति-रस लेवें आप हमारा;
प्रभु! हमरे सुख की नींव, आपसे चिनती है।।

मंत्र- इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदा। समूढ़मस्य पांसुरे।।४।।

काव्यार्थ- गीत

निरखिये प्रभु का विक्रम आप।
उसका विक्रम देख भक्ति से, मन को रखिये ढाप।।
व्यापक प्रभु त्रिलोकी अन्दर, तीन पांव धरता है,
तथा अतुल सामर्थ्य धार कर, सकल कार्य करता है,
सब लोकों के बीच उसी का, छाया हुआ प्रताप।।
इस पृथिवी पर उस प्रभुवर का, कार्य दिखाई देता,
द्यौ-लोक का कार्य देख, मन अचरज को भर लेता,
अन्तरिक्ष में गुप्त पांव की कठिन निरखना छाप।।

मंत्र- त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। इतो धर्माणि धारयन्।।५।।

काव्यार्थ- गीत

बड़ा ही कर्म-कुशल भगवान।
उसके कर्म देखकर उसकी होती है पहचान।।
सर्वव्याप्त भगवान किसी से रंच न दबने वाला,
सर्व-शक्ति सम्पन्न सभी की रक्षा करने वाला,
तीन लोक में रखता अपने तीन पांव बलवान।।
कारण, सूक्ष्म तथा स्थूल जग समर्थ वह करता,
पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ रच, उन बीच अर्थ वह धरता;
इससे वह सब धर्मो का है धारण कर्ता महान्।।

मंत्र- विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इ न्द्रस्य युज्यः सखा।।६।।

काव्यार्थ- गीत

विलोको प्रभुवर के यह काम।
सर्वव्याप्त प्रभु ने यह कैसी रचना रची तमाम।।
प्रभो रचयिता ने कैसा सुन्दर ब्रह्माण्ड बनाया,
पृथिवी, सूर्य, चन्द्र आदिक का कैसा जाल तनाया;
कर्मशील रहते जो, लेते रंच नहीं आराम।।

कैसा यह सुन्दर शरीर, प्रभुवर ने दिया हुआ है,
कैसा आंख, कान आदि का संगम किया हुआ है,
इस पर रीझ बनाया, कैसे, इसको अपना धाम।।
उसके यथायोग्य रीति से सारे व्रत चलते हैं,
सब गुण-कर्म देखता है वह, सब उससे पलते हैं,
श्रेष्ठ सखा वही जीव का, होता कभी न वाम।।

मंत्र- तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीन चक्षुराततम्।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रभु-कर्मों का सूक्ष्म कर दर्शन, हो मल हीन।
प्रभु-स्तुति में वेद के ज्ञाता होते लीन।।
लखों सदा प्रभु-परम-पद धारे ज्ञानालोक।
सूर्य-ज्योति में आंख ज्यों लखे जगत बेटोक।।

मंत्र- दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरारन्तरिक्षात् हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैरा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात्।।८।।

काव्यार्थ-

हे सर्वव्याप्त विष्णु! द्यौ पृथिवी लोक से,
धन-राशियाँ विभिन्न भांति की प्रकाम भर;
इस लम्बे-चौड़े अन्तरिक्ष लोक से भी तू,
शुभ रीति से निज कोष पूत धन प्रधान कर;
अरू अपने दोनों हाथ भरते दांए हाथ से,
अरू बाएं हाथ से हमें बहु धन प्रदान कर।

सूक्त २७

मंत्र- इडैवास्माँ अनु वस्तां ब्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः। घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जिस विद्या में रहकर के पवित्र होते,
वह व्यक्ति जो कि शुभ गुण-ग्राम चाहते;
विद्या जो स्नेह पद युक्त की, समर्थ अति,
ऐश्वर्य सींचती, अभाव हैं कराहते।

जो कि सब उत्तम पदार्थों को बखानती है,
पूजनीय व्यवहार रहते उछाहते;
ऐसी अति ही प्रशंसनीय विद्या सर्वदा ही,
श्रेष्ठ कर्मों में रखा नित अवगाहते।।

सूक्त २८

मंत्र- वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्ति! हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञमिमं जुषन्ताम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

यज्ञ करता है कल्याण तथा लकड़ी को-
काटती कुल्हाड़ी सदा कल्याण करती;
परशु सदैव कल्याण करता है, तथा
यज्ञ की वेदी सदा कल्याण करती।
कल्याण करता जो शस्त्र है हमारे पास,
हवि निर्माता करे कल्याण भरती,
पूजनीय व्यक्ति तथा यज्ञ चाहते जो, वह-
स्वीकारें यह यज्ञ-क्रिया, पीर हरती।।

सूक्त २९

मंत्र- अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम। दमे-दमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

विद्युत् औं सूर्य! तुम दोनों का बड़ा महत्व,
तुम दोनों खेत में पकाया अन्न करते;
तत् सार द्वारा रूधिर व वीर्य आदि-
सप्त धातु बना कर पुष्टियों को धरते।
तुम पार्थिव जल खींचते, बनाते मेघ,
वृष्टि द्वारा सदा अमृत की झार झरते;
हूजिये कृपालु सदा आप, हम सब तव-
उपकार-सर में सदैव रहें तरते।।

मंत्र- अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वा वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ। दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यात्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे विद्युत अरू सूर्य! जग जीवन के आधार।
इस जगती के हेतु हैं अति प्रिय नियम तुम्हार।।
हे पुष्टिकर सार रस! अन्न बीच अधिकाय।
उसके सार तत्वों का सेवन तुमको भाय।।
तव जय शक्ति सार रस लभे श्रेष्ठता साथ।
तुम घर-घर वृद्धि करो ले जन स्तुति हाथ।।

सूक्त ३०

मंत्र- स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरमयम्। स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत्।।१।।

काव्यार्थ-

मुझ शुभ कर्म के करने वाले पुरूष का बहुत,
सूर्य तथा पृथिवी ने मुदित हो किया स्वागत;
इस मित्र ने स्वागत किया अरू वेद-विषय के-
रक्षक रहे आचार्य भी मेरा करें स्वागत;
जो शूरवीर पुरूष प्रजा प्रेरते रहते,
वह भी मुझे उपकारी जान कर करें स्वागत।

सूक्त ३१

मंत्र- इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य यावच्छेष्ठाभिर्मधवंछर जिन्व। यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु।।१।।

काव्यार्थ-

राजन! हमारे महावीर औ महाधनी,
सृष्टि के सभी ऐश्वर्य आप धारते;
तू आज कर मुदित हमें, अनेक श्रेष्ठतम-
रक्षालु कर्म करते, शत्रु को संहारते;
जो तेरी हम प्रजाओं से है वैर ठानता,
वह नीचा होकर भाग जाय, भय बिठारते;
हम तव प्रजाएं जिसको अपना शत्रु मानती,
उसको भी उसका प्राण रहे नित्य मारते।

सूक्त ३२

मंत्र- उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम्। अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे।।1।।

काव्यार्थ-

हम वज्रधर पुरूषार्थ करने वाले लोगों को,
राजा हुआ है प्राप्त, हमसे प्रेम जो करता;
आदान औं प्रदान कर्म को जो बढ़ाता,
व्यवहार कुशल औं बली लख शत्रु है डरता;
वह मुझको और सबको दीर्घ आयु दे, हर एक-
तत् छत्रछाया में रहे सुख बीच विचरता।

सूक्त ३३

मंत्र- सं मा सिंचन्तु मरूतः सं पूषा सं बृहस्पतिः। सं मायमग्निः सिंचतु प्रजया च धनेर च दीर्घमायुः कृणोतु मे।।1।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वायु मुझे सींचे भली विधि भू भले प्रकार।
सूर्य भली विधि सींच कर सुख का करे प्रसार।।
यह अग्नि देकर बहु धन अरू सन्तान।
मुझे सींच, मुझको करे दीर्घ आयु प्रदान।।

सूक्त ३४

मंत्र- अग्ने जातान्द्र णुदा में सपत्नान्प्रत्यजातांजातवेदो नुदस्व। अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागसस्ते वयमदितस्याम।।1।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

राजन् हे बुद्धिमान! अग्निरूप! तू जन्मे-
उन वैरियों को मार भगा जो मुझे दहें;
अन्दर से शत्रुता जो करते हैं अप्रकट वैरी,
अविलम्ब हटा उनको, नहीं सांस वह गहे।
संग्राम चाहते विरोधी शत्रुओं को तू,
नीचे गिरा, भले ही क्षमा दान को कहें,
कर पाए नहीं कोई भी परतंत्र राष्ट्र को,
हम सब अदीन भूमि पर निर्विघ्न हो रहें।।

सूक्त ३५

मंत्र- प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहसा सहस्व प्रत्यजातांचजातवेदो नुदस्व। इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय विश्व एनमन मदन्तु देवाः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे राजन! अति ही धनी निज बल के आधार।
अन्य शत्रुओं को हरा दे तू भली प्रकार।।
इस राष्ट्र को शुभ समृद्धि से करने परिपूर्ण।
अप्रकट शत्रुओं को हरा अविलम्ब कर चूर्ण।।
सभी दिव्य जन से मिले अनुमोदन अर्हन्न।
सब व्यवहार-कुशल जन नित ही रहें प्रसन्न।

मंत्र- इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीरूत। तासां ते सर्वासामहमश्मना विलमप्यधाम्।।१।।

काव्यार्थ-

राजन! तेरी सौ नाड़ियाँ यह सूक्ष्म बहुत, औ-
स्थूल जो सहस्र धमनियाँ है तू लिये,
उन सब ही तेरी नाड़ियों और धमनियों के बीच,
जितने जहां जहां भी बने छिद्रों के हिये,
पाषाण के समान दृढ़ उपायों से उनको,
मैं पुष्ट करता हूं तेरी समृद्धि के लिये।

मंत्र- परं योनोरवरं ते कृणोमि वा त्वा प्रजाभि भून्मोत सुनुः। अस्वंश्त्वाप्रजसं कृणोम्यरश्मानं ते अपिधानं कृणोमि।।३।।

काव्यार्थ-

राजन्! तेरे घर का जो ईर्ष्यालु शत्रु है,
उस शत्रु को करता हूं मैं नीचा तेरे लिये;
तेरी प्रजा व पुत्र तेरे, फूट डाल कर,
ऐसा न करें, जिससे तू अपमान को पिये;
तुझको अताड़नीय, बुद्धिमान बनाकर,
तेरे कवच पत्थर समान मैंने दृढ़ किये।

सूक्त ३६

मंत्र- अक्ष्यौ नौ मधुशंकाशे अनीकं नौ समंजनम्। अन्तः कृणुष्व वां हृदि मन इन्नौ सहासति।।१।।

काव्यार्थ-

हम दोनों की आंखें हों मधु के समान मीठी,
हम दोनों का यथावत मुख हो विकास वाला
तू भी हृदय के भीतर मुझको सदा को रख ले,
हम दोनों का मन मिलकर बैठे, लगा के ताला।

सूक्त ३७

मंत्र -अभित्वामनुजातेन दधामि मम वाससा। यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तपाश्चन।।१।।

काव्यार्थ-

हे स्वामी! अपने मन में रहते विचार के संग,
अपने बनाये वस्त्र से तुझको बांधती हूं,
जिससे करे न ध्यान तू अन्य स्त्रियों का,
केवल मेरा ही होवे, यह तुझसे मांगती हूं।

सूक्त ३८

मंत्र- इदं खनामि भेषजं मा पश्यमभिरोरूदम्। परायतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम्।।१।।

काव्यार्थ-

हे स्वामी! यह प्रतिज्ञा औषधी मैं खोदती हूं,
मम ओर ही तेरी दृष्टि को लगाने वाली;
जाता कुमार्ग पर जो, वापिस उसे लाती यह,
जो संयमित है, उसका आनन्द बढ़ाने वाली।

मंत्र- येना निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि। तेना नि कुर्वे त्वामहं यथा तेऽसानि सुप्रिया।।२।।

काव्यार्थ-

हे स्वामी! पूर्व काल में जिस उपाय द्वारा,
विद्वानों की बुद्धि ने अति ऐश्वर्यशाली;

नर को नियत किया था उत्तम गुणों को पाने,
जिसको निरख सभी जान हो जांय भाग्यशाली;
उस ही उपाय से मैं तुझको नियत करती हूं,
सुप्रिया बनूं मैं जिससे होकर बसन्त डाली।

मंत्र- प्रतीची सोममसि प्रतीच्युत सूर्यम्। प्रतीची विश्वान्देवान्ता त्वाच्छावदामसि।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

निश्चित ज्ञान सम्पन्न तू विदुषी वधू,
शान्ति के प्रदाता नभ-चन्द्र के समान है;
हे अडिग, शुभपथ गामी! तू गगन बीच-
तेजपूर्ण, गतिमान सूर्य के समान है।
करती उपाय तू प्रतिष्ठा के साथ सदा,
अन्य अन्य उत्तम गुणों से युत खान है;
ऐसे गुण युक्त हे पत्नी! तू प्रशंसनीय,
तू है उपमेय अरू तू ही उपमान है।

मंत्र- अहं वदामि नेत्वं सभायामह त्वं वद समेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे पति! घर में जिस समय मैं बोलूं कुछ बात।
तब अनुमोदन कर मेरा रंच न कर व्याघात।।
सभा मध्य नेतृत्व कर भले प्रभावी रीति।
लेकिन घर आकर दिखा तू मुझसे ही प्रीति।।
मेरा ही प्रिय पति बना रह मेरे अनुकूल।
अन्य नाम तक लेने की करना कभी न भूल।।

मंत्र- यदि वासि तिरोजनं यदि नद्यास्तिरः। इयं ह मह्यं त्वामोषधिर्वद्दृध वेवन्यानयत्।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे पति! दूर मनुष्यों से रहना, करके विचार।
यदि जंगल जा रहे या बहती नदिया पार।।

तो भी प्रतिज्ञा रूप यह औषधि सुख की रास।
तुझे बांध ले आएगी द्रुत ही मेरे पास।।

सूक्त ३९

मंत्र- दिव्यां सुपर्ण पयसं बृहन्तमपां गर्भं वृषभमोषधीनाम् अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तमा नो गोष्ठे रचिष्ठां स्थापयाति।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दिव्य गुण पूर्ण, जो कि अन्तरिक्ष मध्य बने-
गर्भ सम रहता है बीच में निवास कर;
औषध का गर्भ जो बढ़ाता तथा सब विधि-
वृष्टि द्वारा तृप्त करता है जल दान कर।
जो है गतिशील,धन बीच में ठहरता है,
शुभ किरणों से युत सूर्य के समान वर;
ऐसे विद्वान को लाये यह व्यक्ति शीघ्र,
हम विज्ञों की वार्ता के स्थान पर।।

सूक्त ४०

मंत्र- यस्य ब्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः। यस्य व्रते पुष्पपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हवामहे।।१।।

काव्यार्थ-

उससे है प्रार्थना, वह रक्षा करे हमारी।।

❖

जल, थल तथा गगन के पशु-पक्षी जीव सारे,
यह सब ही है विचरते जिसके नियम सहारे;
जिसने नियम के द्वारा सृष्टि रची, संवारी।।
जिसके नियम से वायु सर-सर का शब्द कहता,
जिसके नियम से जल है कल-कल के स्वर में बहता;
जिसके नियम से सबको ही पुष्टियां थमा दी।।
जिसने लगाये स्वादु फल-फूल डारियों पर,
बरसारता जो कि अमृत-रस प्राण-धारियों पर;
जिसके लिए लगाते ऋषि और मुनि समाधी।।

मंत्र- आ प्रत्यंचं दाशुषे दाश्वांस सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम्। रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम।।२।।

काव्यार्थ-

वह देव जो कहाता जग में सुखों का दाता,
दुःख दूर कर हमारे हमको बनाए प्रमुदित।।
सब जीवधारियों को जो पालता सदा ही,
सबको सदैव पोषण करते हुए विचरता;
ऐश्वर्य को बढ़ता, थिरता प्रदान करता,
हर वक्त हरेक दाता को धन प्रदान करता।
उस देव से विनय है उसकी कृपा से हम सब -
रहते हुए यहां पर होवें सदा सुरक्षित।।
जो सर्वदा ही रहता शोभा अतुल्य धारे,
सबको सदैव ही जो शोभाओं में बिठाता;
जो विपुल अन्न वाला, समृद्धियों का स्वामी,
जो देव सदा अमृत-रस पूर्ण रस-प्रदाता।
सब धन सदैव रहते जिस देव के सहारे,
हम सब उसी के आगे, रहते सदा समर्पित।।

सूक्त ४१

मंत्र- अति धन्वान्यत्यपस्तर्द श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः। तरन्विश्वान्यवरा रजांसीन्द्रेण सख्या शिव आज गम्यात्।।१।।

काव्यार्थ-

गीत

प्रभू है मित्र रूप, जग-नाथ।
मिले हमें सब लोक तराता, सब ऐश्वर्यों साथ।।
सभी मनुष्यों के कर्मों को जाना करे यथावत्,
अंतिम दशा समझता सबकी, रखता नहीं अदावत;
कष्ट पड़े भक्तों के सिर पर रखता अपना हाथ।।
जल की वर्षा कर यथेष्ट अरू देकर उन्मेषों को
किया हुआ है वशीभूत उसने निर्जन देशों को;
ज्ञानवान अति श्रेष्ठ प्रभु के मंगलकारी पाथ।।

मंत्र- श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः। स नो नि यच्छाद्वसु यत्पराभृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत्।।२।।

काव्यार्थ- **गीत**

सतत वह धन देवे भगवान।
होता प्राप्त जो कि विक्रम से, जो देता सम्मान।।
प्रभु सहस्र पांवों से सब ही जगह गमन करता है,
शत उत्पादन शक्ति धारता, भूमि चमन करता है;
नर कर्मों का करे निरीक्षण, करता फल प्रदान।।
उत्तम किरणों वाला उसका अति ही दिव्य स्वरूप,
सबका अन्न प्रदाता वह है, अति ही ज्ञानी भूप;
कर दे पितर आत्म धारण की शक्ति से बलवान।।

सूक्त ४२

मंत्र- सोमारूद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश। बाधेथां दूरं निऋर्तिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे हमारे सुख दाता राजा अरू त्राता वैद्य,
आप दोनों सूर्य अरू मेघ के समान हां;
घर में हमारे घुसा भीषण विषूचिका है,
कृपा कर नष्ट करो इसकी उठान को।
दुर्गति छीन रही है हमारा चैन, आप-
बन्द कर दीजै शीघ्र इसकी दुकान को;
इसने दियेहैं हम सबको अतीव कष्ट,
दीजै अविलम्ब छुड़ा, आप सा सुजान को।।

मंत्र- सोमारूद्रा युवमेतान्यस्मद्विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम्। अव स्यतं मुंचतं यन्नो असत्तनूषुबद्धं कृतमेनो अस्मत्।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे हमारे उपकारी राजा अरू त्राता वैद्य,
आप दानों सूर्य अरू मेघ के समान हो;
औषधियां यह सब थाप दीजियेगा आप-
हमरे शरीर, हितकारी रसपान को।

तन सम्बन्ध से किये जो हमने हैं पाप,
उनसे बचाकर, करिये विहान को;
अपनी प्रमाद वश प्राप्त दुर्गति से हमें-
मुक्त कर दीजे आप, आप सा सुजान को।।

सूक्त ४३

मंत्र- शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः।
तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन्तासामेका वि पापतानु घोषम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे मनुष्य! तेरी एक वाणी शुभ कहलाती,
दूसरी अशुभ अरू माध्यमिक तीसरी;
श्रेष्ठ मन वाला इन सबको तू धारता है
तुझमें है गुप्त रूप यह इक्कीस-सी।
उनमें प्रथम वाणी जो कि कहलाती शुभ,
जन-जन बीच तेरे गर्व पूर्ण सीस-सी;
होकरके ऐश्वर्यवान तुझे बोलने के-
साथ तुझे भेंटती है ऐश्वर्य-मीसरी।।

सूक्त ४४

मंत्र- उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां वेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे राजा, सेनापति विद्युत, वायु समान।
बल, विक्रम से पूर्ण अरू परमैश्वर्यवान्।।
हुए पराजित तुम नहीं किसी युद्ध के बीच।
तुम दोनों ही सहज में अरि को लेते जीत।।
जब मिलकर ललकारते अरि मुख करते पीत।
किंकर्तव्यविमूढ़ वह हो जाता भयभीत।।
ऊंचे, नीचे, मध्य के तीन थलों के सूर।
सहस्र शत्रुओं को विविध विधि कर देते दूर।।

सूक्त ४५

मंत्र- जनाद्विश्वजनीनान्धुतस्पर्याभृतम्। दूरात्वा मन्य उद्भतमीर्ष्याया नाम भेषजम्।।१।।

काव्यार्थ- **गीत**

भय तथा भ्रान्ति-निवारक ज्ञान।
ईर्ष्या की प्रसिद्ध औषधि के रूप तेरी पहचान।।
जगत् हितैषी, सागर से गंभीर जो कि कहलाए,
उन विज्ञों से तुम्हें हितू विद्वान् दूर से लाए;
उत्तमता से तुम्हें विकासा अरू की पुष्टि प्रदान।।

मंत्र- अग्नेरिवास्यं दहतो दावस्य दहतः पृथक्। एतामेतस्येर्ष्यांमुद्नाग्निमिव शमय।।२।।

काव्यार्थ- **गीत**

भयंकर ईर्ष्या को कर शान्त।
इस नर को भीतर ही भीतर जला करे जो क्लान्त।।
ज्वलित अग्नि सम नर का अंतः जला राख करती जो,
ज्वलित वनाग्नि रूप जलाती, हृदय चाक करती जो,
वेद-ज्ञान जल डाल, शान्त कर इसका ज्वलित वृतान्त।।

सूक्त ४६

मंत्र- सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा। जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अन्नवती पत्नी तेरी स्तुति करें अनेक।
तू फैलाती दिव्य गुण दे कर्मों की टेक।।
कर व्यवहार सर्वदा सेवनीय ग्रहणीय।
अरू प्रदान हम लोगों को सन्तानें यज्ञीय।।

मंत्र- या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी। तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहूतन।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे जननी! शुभबाहु की शुभ अंगुलियों पूर।
तू करती उत्पन्न है सन्तानें शुभ सूर।।
उस जन पालक, अन्नयुत् अग्रगामी प्रजार्थ।
गृह-पत्नी को दान दो देने योग्य पदार्थ।।

मंत्र- या पिश्पत्नीन्द्रमसि प्रतीरची सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी! विष्णोःपत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवि राधसे चोदयस्व।।३।।

काव्यार्थ-

सन्तानों को पालक सुनिश्चित ज्ञान की धारक,
तूने हरेक छोर को गतियों से दिया भर,
कवियों से प्रशंसित सहस्र स्तुति धारक,
हे देवि! वैभवों के बीच तूने लिया घर,
व्यापक रहे कर्मों में वीर पुरूष की पत्नी,
तव हेतु हमने देय-पदारथ को लिया धर,
अपने पति को सर्वदा सम्पत्ति कमाने,
प्रेरित किया कर तू तथा गतिशील किया कर।

सूक्त ४७

मंत्र- कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन्यज्ञे सुहवा जोहवीमि। सा नो रयिं विश्वारं नि यच्छाद्दातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सुन्दर अतीव, शुभ-कर्म करती जो सदा,
दिव्य गुण वाली, कर्तव्य करे ध्यान दे;
अद्भुत स्वभाव वाली इस स्त्री को मैं,
यज्ञ में बुलाता सविनय सम्मान दे।
वह हमें सबके ही द्वारा स्वीकारणीय-
धन नित्य देवे, हमें बना धनवान दे;
अरू शत-शत दान करती रहे जो, ऐसी-
गुणी औं प्रशंसनीय वीर सन्तान दे।।

मंत्र- कुहर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्यहविषो जुषेत। शृणोतु यज्ञमुशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विद्वानों के बीच जो अमर पुरूष कहलाय।
उसकी बुलाने योग्य जो पत्नी सुख पहुंचाय।।
रखे विचित्र स्वभाव अरू पालन करती धर्म।
सेवन करे हमारा वह ग्रहण योग्य शुभ-कर्म।।
अरू सत्संग चाहती धारे उत्तम ज्ञान।
सुने हमें, हमको करे धन समृद्धि प्रदान।।

सूक्त ४८

मंत्र- राकामहं सुहवा सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना। सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

पत्नी को बुलाता हूं, प्रशंसा के साथ, जो कि-
शोभा पूर्ण चन्द्र सी प्रकाम भरती रहे;
वह सौभाग्यशाली मेरी प्रार्थना को सुने,
आत्मा से उसको प्रधान वरती रहे।
अपनी अटूट सुई द्वारा कर्तव्य-कर्म,
सीने की दिशा में वह प्रयाण करती हरे;
शतशः धनों से युक्त अति ही प्रशंसनीय,
वीर सन्तान को प्रदान करती रहे।।

मंत्र- यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि। ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रापोषं सुभगे रराणा।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

पूर्ण चन्द्र के समान शोभनीय पत्नी! तेरी-
सुमतियां बहुत उत्तम, मन सीप सा;
जिनसे मैं धन का प्रदाता तेरा पति सदा,
धन का प्रकाश प्राप्त करता प्रदीप सा।
हे अतीव सौभाग्यवती मेरी पत्नी! उन-
पुष्टियों के साथ तू प्रसन्न हो समीप आ;
अरू सहस्र प्रकार की प्रदान कर पुष्टि सदा,
जिन द्वारा अंध से कहूं मैं दूर छीप जा।।

सूक्त ४९

मंत्र- देवानां पत्नीरूशतीखन्तु नः प्रावन्तुनमस्तुजये वाजसातये। याः पार्थिवासो या अपामणि प्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु।।१।।

काव्यार्थ-

राजाओं व विद्वानों की गुणवान पत्नियां,
उपकार भावनासे भरी तृप्ति प्रदानें;
देने के लिए अन्न तथा बल की विपुलता,
रक्षा करें हमारी, सुरक्षाओं को तानें;
पृथिवी की अन्य देवियां उपकारी जल समान,
वह सब कृपालु हों, हमें सुख से सदा सानें।

मंत्र- उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनीराट्। आ रोदसी वरूणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम्।।२।।

काव्यार्थ-

दिव्य जनों तथा महत् देश्वर्यधारियों,
अति शीघ्रगामियों तथा तेजस्वी जनों की-
शुभ पत्नियां बनाया करें स्त्रियों की एक-
न्याय सभा जो न्याय करे सब ही ठनों की।
ज्ञानी की पत्नी, श्रेष्ठ जन की पत्नी, सभी-
विवाद सुने, न्याय करे द्वन्द्व सनो की;
सब न्याय-दिन की चाहना करें तथा होवें-
न्याय सभा की बात निष्पक्ष, अनोखी।

सूक्त ५०

मंत्र- यथा वृक्षमशिनिविर्वश्वाहा हन्त्यप्रति। एवाहमद्य कितवानक्षैर्बध्‍ यासमप्रति।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जैसे विद्युत जो बनी रहती बीच आकाश।
कर देती है वृक्ष का पूर्ण रूप से नाश।।
वैसे ही मैं आज इन निज पाशों के साथ।
देकर मृत्यु जुआरियों को, द्रुत करूं अनाथ।।

मंत्र- तुराणामतुराणा विशामवर्जषीणाम्। सुमैतु विश्वतो भर्गो अन्तर्हस्तं कृतं मम।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पहली प्रजा जो शीध्र ही करती कार्य समाप्त।
अरू दूसरी जिसकी गति रहे मन्द पर्याप्त।।
प्रजा तीसरी जो रहे अपने मद में चूर।
जो कि बुराई को नहीं कर सकती है दूर।।
इन सबका धन एक थल रहे इकट्ठा जोय।
वह मुझ नृप के हाथ में मेरे द्रव्य सम होय।।

मंत्र -ईडे स्वावसुं नमोभिरिह प्रसक्तो वि चयत्कृतं नः। रथैरिव प्र भरे वाजयद्भि प्रदक्षिणं मरूतां स्तोममृध्याम्।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वह राजा जो बन्धुओं को धन देता जाय।
मेरे द्वारा वह सदा स्तुतियों को पाय।।
वह देखे मम कर्म, बन कुशल विवेचन-हार।
तद् प्रदक्षिणा मैं करूं धारण भली प्रकार।।
धन-संग्रह हित लोग ज्यों रथ प्रयोग में लॉय।
त्यो मम सब सुकर्म-धन एकत्रित हों जांय।।
तद् धन का उपभोग मम द्वारा ऐसा होय।
जो शूरों के हृदय में ख्याति-बीज को बोय।।

मंत्र- वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे। अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्णया रूज।।४।।

काव्यार्थ-

सम्पूर्ण ऐश्वर्य युक्त हे बली राजन!
हम तेरी श्रेष्ठतम सहायता से जुड़े रह,
उस शत्रु की सेना को सरलता से जीत लें,
जो हमको घेरे हुए कष्ट दे रहा असह।
प्रत्येक ही संग्राम में हमारे प्रयत्नों-
को श्रेष्ठता के साथ तू रक्षाएं दिया कर,

हम हेतु ही बने हुए विस्तीर्ण देश को,
सुगमता साथ प्राप्ति के योग्य किया कर।

दोहा

हे महनीय धनी! हे प्रबल बली भूपाल!
तू शत्रु के बलों को छिन्न-भिन्न कर डाल।।

मंत्र- अजैषं त्वां संलिखितमजैषमुत संरुधम्। अर्वि वृको यथा मथदेवा मध्नामि ते कृतम्।।५।।

काव्यार्थ-

दोहा

नित पहुंचाते कष्ट बहु पालन करें अनीति।
अहे शत्रु! मैंने तुझे जीत लिया हर रीति।।
तेरे जैसा शत्रु भी मैंने लीन्हा जीत।
जो बाधाएं डालता करता था भयभीत।।
मैंने मथ डाला तेरा कर्म शत्रुता पूर्ण।
ज्यों बकरी को भेड़िया मथ देता है तूर्ण।।

मंत्र- उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले। यो देवकामो न धनं रूणद्धि समितं गयः सृजति स्वधाभिः।।६।।

काव्यार्थ-

दोहा

विजयेच्छुक अरू उपद्रवी रहता जो कि अभीत।
ऐसा घातक शत्रु भी मैं लेता हूं जीत।।
ऐसा मूढ़ मनुष्य जो धन का करता नाश।
कृत कर्मों को भोग वह पाता है दुख राश।।
शुभ-गुण-कामी धन करे व्यय शुभ कर्मों बीच।
पाता वही अनेक धन अतुल आत्मबल सींच।।

मंत्र- गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरूहूत विश्वे। वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम।।७।।

काव्यार्थ-

बहुतों से प्रशंसित तथा आहूत हे राजन्!
जैसे मिटाते भूख को यवादि अन्न से;
वैसे ही दुर्गति रूपी कुमति को हम-
सब ही मिटायें अति बली विद्या अर्हन्न से।

राजाओं बीच हम सभी उत्कृष्टता गहें,
उन बीच सर्वदा अजेय बन कर दिखायें;
अपनी अनेक शक्तियों सामर्थ्यों के द्वारा,
पाएं यथेष्ट धन तथा सम्मान को पायें।

मंत्र- कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजित्भूयासमश्वजिद्धनंजयो हिरण्यजित्।।८।।

काव्यार्थ- दोहा

कर्म दाहिने हाथ मम जीत है बांधे हाथ।
भू, धन, अश्व, सुवर्ण को जीतूं, करूँ सनाथ।।

मंत्र- अक्षाःफलवती द्युवं दत्त गां क्षीरिणीमिव। सं मा कृतस्य धारया धनुः स्नाव्नेव नह्यत।।९।।

काव्यार्थ-

व्यवहार कुशल पुरूषों! मुझे गौ दुधारू सम,
व्यवहार शक्ति श्रेष्ठ फल से युक्त, दान दो;
जैसे कि डोरी से धनुष को बांधते, वैसे-
पुरूषार्थी को फल साथ बांधने का ज्ञान दो।

सूक्त ५१

मंत्र- बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः। इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

अहित हमारा चाहते हैं जो शत्रु लोग।
उनको अतुलित विक्रमी सेनापति दे सोग।।
हमें बचाये पीछे अरू ऊपर से सर्वत्र।
हमें बचाये नीचे से धार विजय का छत्र।।
अपने मित्र के लिये जैसा करता मित्र।
त्यों वैभव मय भूप दे कर्मक्षेत्र पवित्र।।
वह ऐश्वर्य धारता आगे से अरू मध्य।
विस्तीर्ण स्थान दे हम लोगों को सद्य।।

सूक्त ५२

मंत्र- संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः। संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु निः यच्छतम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

निज लोगों संग हमारी रहे एकता नेक।
तथा बाहरी लोगों के साथ मति हो एक।।
मात-पिता दीजे यहां हमें एकता सीख।
हम लोगों की एकता रंच न होवे फीक।।

मंत्र- सं जनामहै मनसा सं चिकित्वा मा युष्महि मनसा दैव्येन। मा घोषा उत्थुर्बहुले विनिर्हते मेषुः पप्तदिन्द्रयाहन्यागते।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हम सबके मन परस्पर मिले रहें सुख साथ।
तथा ज्ञान द्वारा करें एक मति हो बात।।
कर देवें अज्ञानता पूर्ण रूप से लुप्त।
हों न विरोधी हम कभी बने दिव्य मन युक्त।।
करें न ऐसे काम, मन जिनसे हो उन्मन्न।
आपस में हो युद्ध अरू दुःखद शब्द उत्पन्न।।
महनीयऐश्वर्य का धारक राजा हमार।
नहीं न्याय के दिन करे हम पर दण्ड प्रहार।।

सूक्त ५३

मंत्र- अमुत्रभूयादधि यद्यमस्य बृहस्पतेरभिशस्तेरमुंच।प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अग्नि रूप प्रभु! आप देख कर मानव को-
छोड़ कुविचार, पाप-कर्म चूर करते;
उस पर करते कृपा हैं, उसे पर लोक-
बीच के भयों से सर्वदा ही दूर करते।
रक्षक बड़ों के, नियमनकर्ता राजा, उसी-
कारण से तत् राज-दण्ड भूर क्षरते;

वैद्य रूप मात-पितु तत् कारणों से, मृत्यु-
दु:ख हर, संतति को सुख-पूर करते।।

मंत्र- सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविहस्ताम्। शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्राण अपान मिलकर चलें करें न तन का त्याग।
वह नर के सहचारी बन नित ही रहें निदाग।।
हे नर तू सौ वर्षों तक बढ़ता हुआ लखाय।
जीता रहे सदैव ही उन्नति करता जाय।।
अग्नि रूप प्रभु अत्यधिक श्रेष्ठ, अतीव महान्।
तेरा रक्षक अधिपति अतुलित कृपा-विधान।।

मंत्र- आयुर्यत्ते अतिहितं परचैरपानः प्राणः पुनरा तावितम्। अग्निष्टदाहार्निर्ऋतेरूपस्थात्तदात्मनि पुनरा वेशयामि ते।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पाप कर्म से जो तेरी आयु घटती जाय।
प्राण-अपान तेरा उसे फिर वापिस ले आय।।
ज्ञानी, दुर्गति पास से जिसको लाया खींच।
वह आयु बैठाऊं मैं पुनः तेरे तन बीच।।

मंत्र- मेमं प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात्। सप्तर्षिभ्य एनं परि ददामि त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्राण तजे नहीं जीव यह न ही अपान दे छोड़।
इस प्राणी को रखता मैं सप्तऋषि के क्रोड।।
स्वस्थ रखें वह सब इसे सिर पर रखकर हाथ।
तथा बुढ़ापे तक इसे ले जायें सुख साथ।।

(सप्त ऋषि=सात ज्ञानेन्द्रियाँ)

मंत्र- प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्। अयं जरिम्णः शेवधिररिष्टइह वर्धताम्।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्राण अपान चलते हो तुम इस विधि तन की गैल।
ज्यों आएं गौशाला में रथ-वाही दो बैल।।
दीर्ध आयु तक जीव यह पूर्ण आयु का कोष।
यहां न घटता, नित बढ़े रहे सदा निर्दोष।।

मंत्र- आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते। आयुर्नो विश्वतो दध ादयमग्निर्वरेण्यः।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तेरा प्राण मैं प्रेरता बनकर नभ का सूर।
अरू तव राजरोग को कर देता हूं दूर।।
जठराग्नि वरणीय यह नित-नित तेरे बीच।
सब प्रकार से आयु को रखे पुष्टि से सींच।।

मंत्र- उद्वयं तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्मज्योतिरूत्तमम्।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

उत्तम सुख में उच्च चढ अन्धकार को छोड़।
सूर्य-प्रभु से लिया है मैंने नाता जोड़।।
उत्तम ज्योतिस्वरूप वह करता ज्योति प्रदान।
तथा प्रकाशों में रहे नित्य प्रकाशमान।।

सूक्त ५४

मंत्र- ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वते।ऐते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु यच्छतः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हमको आदरनणीय हैं मोक्ष व स्तुति धर्म।
इनसे मानव उन्नति के होते सब कर्म।।
जगत्-सदन में विराजकर यह दोनों ही ज्ञान।
शुभ कर्मों को थापते विज्ञों के दरम्यान।।

मंत्र- ऋचं साम यदप्राक्षं हविरोजो यजुर्बलम्। एष मा तस्मान्मा हिंसीद्वेद पृष्टः शचीपते।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

स्तुति विद्या, मोक्ष की विद्या, गुरू-सत्कार।
विद्या-दान, पदार्थों के संगतिकरण को धार।।
मैंने पूछा आपसे तन बल, मन-बल ज्ञान।
अरू पूछा सत्कर्म वह जिससे बनूं महान्।।
हे ज्ञानी आचार्य! वह ज्ञान सुखों को बोय।
उन्नति में हो सहायक बाधक बने न कोय।।

सूक्त ५५

मंत्र- ये ते पन्थानोऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः। तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो।।१।।

काव्यार्थ- **प्रार्थना**

हे सर्वश्रेष्ठ प्रभुवर! सबके ही देखे भाले,
सब मार्ग सुनिश्चित हैं तेरे प्रकाश वाले;
तू जिनके द्वारा सारे संसार को चलाता,
प्रभुवर! हमें भी उन पर चलता हुआ बनाले,
सबओर से हमें तू धन-धान्य अपरिमित दे,
सुख औ समृद्धि देकर बहु पुष्टियाँ बिठाले।

सूक्त ५६

मंत्र- तिरश्चिराजेरसितात्पृदाकोः परि संभृतम्। तत्कङ्क पर्वणो विषमियं वीयदनीनशत्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

काला, वक्र रेखा का नाग फिरे विष धार।
अरू कौए के पर्व का सांप भरे फुंकार।।
मैंने इनके काटे के विष को सोच विचार।
इस औषधि से कर दिया पूर्ण रूप से खार।

मंत्र- इयं वीरून्मधुजाता मधुश्चुन्मधुला मधूः। सा विह्रतस्य भेषज्यथो मशकजम्भनी।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अति उपकारी यह औषधि मधुरता से-
जन्मी, मधुरता का दान दिया करती;
विष जन्य दुःख हरने के हेतु यह सदा,
मधुता को टपकाते हुए जिया करती।
रखती है अपना स्वभाव यह मधुरता का,
रूक्षता के बीज नहीं रंच हिया करती;
अति ही कुटिल सर्प विष की यह औषधि है,
यह मच्छरों का सर्वनाश किया करती।।

मंत्र- यतो दष्टं यतो धीतं ततस्ते निर्हयामसि। अर्भस्य तृप्रदंशिनो मशकस्यारसं विषम्।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

छोटे मच्छर आदि ने धार तीक्ष्णता दून।
काटा जिस स्थान पर दिया जहां पर खून।।
उसके छोड़े विष को, जो नीरसता से पूर।
हम देकर उक्त औषधि कर देते हैं दूर।।

मंत्र- अयं यो वक्रो विपरूव्यंङ्गो मुखानि वक्र वृजिना कृणोषि। तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नमः।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

यह विष-रोगी जो कि टेढ़े-मेढ़े गात वाला,
धारे हुए जोड़ अति विकृत तथा असम;
मुख के समस्त अवयव टेढ़े किये हुए,
ऐंठे हुए इस भांति जैसे कि गये हों जम।
ढीले ढाले हाथ पैर, थिरता से शून्य ऐसे,
लगता कि जैसे इस बीच में नहीं है दम;
वैद्यराज! इसके तू अंग सभी ठीक कर,
रस्सी के बनाने हेतु सीधी हुई मूंज सम।।

मंत्र- अरसस्य शर्कोट्स्य नीचीनस्योपसर्पतः। विषं ह्य१स्यादिष्यथो एनमजीज भम्।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

नीरस बिच्दू नीचे से रेंग-रेंग जो आय।
तथा मनुज को काटकर टेढ़ा देत बनाय।।
इसके विष को पूर्णतः मैंनें किया असार।
अरू यह विषमय जीव भी दिया कुचल कर मार।।

मंत्र- न तेवाह्वोर्बलमस्ति न शीर्षे नोत मध्यतः। अथ किं पापयामुया पुच्छे बिभर्ष्यर्भकम्।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे बिच्छू! तव भुजा, सिर मध्य भाग बल हीन।
फिर क्यों पाप वृत्ति से पूंछ मध्य विष कीन।।

मंत्र- अदन्ति त्वा पिपीलिका वि वृश्चन्ति मयूर्यः। सर्वे भल ब्रवाथ शार्कोटमरसं विषम्।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मोरनियाँ काटे तुझे चीटियां तुझको खाँय।
हे बिच्छू! अति शुष्कता भरी तेरे तन माँय।।
बतलाते हैं भली विधि तुझको ज्ञानी लोग।
तेरा विष पैदा करे बहुत शुष्कता सोग।।

मंत्र- य उमाभ्यां प्रहरसि पुच्छेन चास्येन च। आस्येऽन ते विषुं किमु ते पुच्छधावसत्।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे बिच्छू! तू पूंछ अरू मुख से भली प्रकार।
अपना लक्ष्य विलोक कर करता सदा प्रहार।।
तेरे मुख में विष नहीं फिर क्यों बिच्छू नीच।
थोड़ा सा विष धारता पूंछ थैलिका बीच।।

सूक्त ५७

मंत्र- यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे यद्याचमानस्य चरतो जनां अनु। यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं सरस्वती तदा पृणद् घृतेन।।१।।

काव्यार्थ-

मुझ वक्ता की वाणी ने अज्ञानता कारण,
हिंसित किया लोगों को, जो कि मन को डासता,

अथवा मनुष्यों के पास चलकर मांगने-
से मन हुआ व्याकुल, नहीं क्षण भर हुलासता;
अथवा जो मेरे तन के बीच हीनता हुई,
जो आत्मा बुझी रही मुझको हताश पा;
उस क्षोभ, हीनता को भरे शीघ्र ही देवी-
सरस्वती घृत को लिये विद्या-प्रकाश का।

मंत्र- सप्त क्षरन्ति शिशवे मरूत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवृतन्नृतानि। उभे इदस्योभे अस्य राजत उभे यतेते उभे अस्य पुष्यतः।।२।।

काव्यार्थ-

जिस भांति अपने जन्म-दाता ताल के लिये,
पुत्र सदा सत्कर्मों को करते हैं प्रीति से,
उस ही प्रकार प्राण वाले बाल के लिये,
सप्त इन्द्रियां जीवन का रस बहाती प्रीति से,
हो जाते वर्तमान औ भविष्य तेजमय,
अरू ऐश्वर्यवान हो छुड़ाते भीति से,
दोनों ही हुआ करते हैं, प्रयत्नशील भी,
पोषण किया करते सदा विशेष रीति से।

सूक्त ५८

मंत्र- इन्द्रावरूणा सुतपामिवं सुतं सोमं पिवतं मद्यं धृतव्रतौ। युवो रथो अध्वरो देववीतये प्रति स्वसरमुप यातु पीतये।।१।।

काव्यार्थ-

सन्तानों की रक्षा का भार जो उठा रहे,
धारण किये हुए जो श्रेष्ठ कर्म की चीजें,
ऐसे प्रजाजन राजा! वायु बिजली के समान,
इस पुत्र को ऐश्वर्य-रस आनन्द-दा दीजे,
अरू दिव्य पदार्थों की प्राप्ति वृद्धि के लिये,
प्रति दिन, प्रत्येक घर में आप आगमन कीजे।

मंत्र- इन्द्रावरूणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृष्णा वृषेयाम्। इदं वामन्धः परिषिक्तमासधास्मिन्वर्हिषि मादयेथाम्।।२।।

काव्यार्थ-

विद्युत व वायु सम बलिष्ठ राजा, प्रजाजन,
बरसाओ ऐश्वर्य बलप्रदाता ज्ञान युत,
संलग्न रहते श्रेष्ठ अन्न-वृद्धि कर्म में,
भू के प्रत्येक व्यक्ति को आनन्द दो अच्युत।

सूक्त ५९

मंत्र- यो नः शपादशपत शपतोयश्च नः शपात्। वृक्ष इव विद्युता हत आ मूलादनु शुश्यतु।।१।।

काव्यार्थ-

हम शाप न देते हुओं को शाप जो देता,
दुष्टों को शाप देते हुए हमको शाप दे;
विद्युत से मारे गये वृक्ष के समान वह,
जड़ साथ सूख जाये अतुल पाप शाप ले।

सूक्त ६०

मंत्र- ऊर्जं बिभ्रद्वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण। गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत।।१।।

काव्यार्थ-

मैं श्रेष्ठ बुद्धि वाला, शांत, मन मेरा सुमन,
सबके प्रति धारे हूँ मित्र-भाव सलोना,
अपने सामर्थ्य से मैं धनोपार्जन करता,
घर बीच आता कहता हुआ तुमको मैं सोना,
तुम सर्वदा प्रसन्न-चित्त ही रहा करो,
तुम मुझसे कभी रंच भी भयभीत न होना।

मंत्र- इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः। पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः।।२।।

काव्यार्थ-

घर के सभी यह लोग हैं आनन्द प्रदाता,
धारे हुए धन-धान्य के पर्वत की उठाने;
दुग्धादि से परिपूर्ण बली औ पराक्रमी,
गाते सदैव देश की भक्ति के तराने;

आगन्तुकों का मान करते वे सदा कहते,
हमको अतिथि सत्कार परायण सभी जाने।

मंत्र- योषामध्येति प्रवसन्येषु सोमनसो बहुः। गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः।।३।।

काव्यार्थ-

परदेश गये व्यक्ति जैसे घर के लोगों को,
करते ही रहते याद, अधिक ही चहा करें;
वैसे ही घर के लोग भी उनको सदा जानें,
अरू प्रेम-भाव रखाते बुलाते रहा करें।

मंत्र- अपहूता भूरिधनाः सखायः : स्वादुसंमुदः। अक्षुध्यया अतृष्यास्त गृहा मास्मद बिभीतन्।।४।।

काव्यार्थ-

स्वादिष्ट पदार्थों से मुदित होते जो, ऐसे
धनवान मित्र लोग बुलाये गये घरों;
स्वादिष्ट भोज्य से रहो भरपूर हे घरों,
भूखे व प्यासे मत रहो, हमसे न भय करो ।

मंत्र- उपाहूता इह गाव अपहूता अजावयः। अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः।।५।।

काव्यार्थ-

हमारे घरों गायें बुलाई गईं तथा-
भेड़ और बकरियों को भी बुलाया गया है;
इसके ही साथ साथ घरों बीच अन्य का,
जो सत्व भाग है उसे भी लाया गया है।

मंत्र- सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः। अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन।।६।।

काव्यार्थ-

हे सत्य प्रिय वचन सदैव बोलने वालो,
महनीय ऐश्वर्य, श्रेष्ठ भोज्य, पय भरो;
हंस-हंस प्रसन्न करने वाले सबको ही, घर के-
हे लोगों! तुम भण्डार को धन-धान्य मय करो;

करते रहो सत्कार तुम विद्वान जनों का,
भूखे व प्यासे मत रहो, हमसे न भय करो।

मंत्र- इहैव स्त मानु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत। ऐष्यामि भद्रेण सह भूयांसो भवता मया।।७।।

काव्यार्थ-

इस ठौर ही रहो, न कभी दूर तुम जाओ,
नाना स्वरूप वाले प्राणियों को पुष्टि दो;
कल्याण साथ तुमको मैं सदैव प्राप्त हूं,
हो जाओ बहुत मेरे साथ, सबको तुष्टि दो।

सूक्त ६१

मंत्र- यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः। प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः।।१।।

काव्यार्थ-

तेजस्वी हे आचार्य! द्वन्द्वों के सहन से हम,
ऐश्वर्य प्राप्ति हेतु विविध तप किया करते;
उस तप से हम बनते हैं, वेद-शास्त्र के प्रेमी,
दीर्घायु तथा तीव्र बुद्धि पा लिया करते।

मंत्र- अग्ने तपस्तप्यामह उप तप्यामहे तपः। श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः।।२।।

काव्यार्थ-

तेजस्वी हे आचार्य! द्वन्दों के सहन से हम,
ब्रह्मचर्य आदि सत्यव्रत के तप को साधते,
अरू वेद-शास्त्र का श्रवण करते हुए सदा,
दीर्घायु, श्रेष्ठ बुद्धि से निज को आच्छादते।

सूक्त ६२

मंत्र- अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीनजयत्पुरोहितः नाभापृथिव्यां निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ते पृतन्वयवः।।१।।

काव्यार्थ-

अग्नि समान तेजपूर्ण औं महाबली,
सबका ही अग्रगामी जो बना रहा करे;

पृथिवी के केन्द्र पर हुआ आरूढ़ शक्ति से,
श्रेष्ठ जनों पर रक्षणों की जो छंहा करे;
ऐसा हमारा सेनापति रथी योद्धा सम,
अरि सेना पर स्व जीत को सदा महा करे;
अरू सैन्य ले चढ़ाई करने वाले शत्रु को,
पांवों तले सदैव दबाता, दहा करे।

सूक्त ६३

मंत्र- पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्तथैर्हवामहे परमात्सधस्थात्। स नः पर्णदति दुर्गाणि विश्वा क्षामछेवोऽतिदुरितान्यग्नि।।१।।

काव्यार्थ- कवित्त

सर्व संग्राम जित् अग्नि सम सेनापति,
जो कि विजयश्री निज कोष धरता रहे;
उसको प्रशस्तियों के साथ तत् उत्कृष्ट-
थल से बुलाते वो अनर्थ हरता रहे।
वह दिव्य तेजपूर्ण सेनापति शत्रु के,
समस्त गढ़ तोड़ता अकर्थ करता रहे;
विघ्न रूप शत्रुओं को पूर्णतः हटाता हुआ,
पार लगा हमको समर्थ करता रहे।।

सूक्त ६४

मंत्र- इदं यत्कृष्णः शकुनिरभिनिष्पतन्नपीपतत्। आपो मा तस्मात्सर्वस्माछुरितात्पान्त्वंहसः।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

काले शकुनी पक्षी सम हे विपदा अति भ्रष्ट।
मम सम्मुख आ, कर दिया तूने मुझको नष्ट।।
मेरे उत्तम कर्म सब मेरे बनें सहाय।
तथा कठिन उस कष्ट से मुझको लेंय बचाय।।

मंत्र- इदं यत्कृष्णः शकुनिरवामृक्षन्निर्ऋते ते मुखेन। अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्र मुंचतु।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

कठिन विपद तव मुख सहित काले शकुनि समान।
तू निन्दित रह कष्ट दे करती मुझे नमान।।
मेरे चारों ओर जो देती कष्ट जुड़ाय।
मेरा आत्म पराक्रम देगा मुझे छुड़ाय।।

सूक्त ६५

मंत्र- प्रतीचीनफलो हि त्वमपामारूरोहिथ। सर्वान्मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अपामार्ग! प्रतिकूल गति के रोग हैं जेतु।
निश्चित ही तू जन्मी है तत् विनाश के हेतु।।
तू इस मुझसे सकल ही दोष तथा सब शाप।
साधिकार कर नष्ट, दे ज्वलित अग्नि का ताप।।

(अपामार्ग- औषधि विशेष)

मंत्र- यद्दुष्कृतं यच्छामलं यद्वा चेरिम पापया। त्वया तद्विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मलिन कर्म जो कुछ भी या जो कुछ भी दुष्कर्म।
पाप बुद्धि से कर, नहीं पाला हमने धर्म।।
दूरदर्शी है औषधि अपामार्ग गुण-पूर।
तव सहायता से उसे हम करते हैं दूर।।

मंत्र- श्यावदता कुनखिना बुण्डेन यत्सहासिम। अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे।।३।।

काव्यार्थ-

जब हम दूषित नख तथा काले दांतों युक्त,
अति विरूप रोगी निकट होते हैं संयुक्त,
अपामार्ग औषधि तेरी तब सहायता पाय,
आये दोषों को त्वरित देते दूर भगाय।

सूक्त ६६

मंत्र- यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस यदि वृक्षेषु यदि वोलपेषु। यदस्रवन्पशव उद्यमानं तद ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैतु।।१।।

काव्यार्थ-

इस अन्तरिक्ष, वायु, वृक्षों व घास बीच,
जो ब्रह्म निज को व्याप्त करता अपार होवे,
सब जीवों में स्रवित जो, सर्वत्र ही प्रकाशित,
उस ब्रह्म से मिलन अपना बार-बार होवे।

सूक्त ६७

मंत्र- पुन मैंत्विन्द्रिपं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च। पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मुझको फिर से प्राप्त हो मेरी इन्द्रिय शक्ति।
आत्म-चेतना धन पुनः, पुनः वेद अनुरक्ति।।
यथायोग्य थल, वाक्पटु विज्ञ मुझे शुभ अर्थ।
इस जन्म में ही करें भली प्रकार समर्थ।।

सूक्त ६८

मंत्र- सरस्वती व्रतेषि ते दिव्योषु देवि धामसु। जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजा देवि रास्व नः।।१।।

मंत्र- इदं ते हव्यं घृतवत्सरस्वतीदं पितृणां हविरास्यं१यत्। इमानि त उदिता शान्तमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सरस्वती देवी! निज दिव्य व्रतों, धर्मों बीच,
जन के प्रदत्त ग्राह्य कर्म स्वीकार कर;
देवि! हमको प्रजा प्रदान श्रेष्ठ ज्ञानवान,
मिष्ट बना हमको, सदैव सुविचार भर।
पितर जनों के मुख पर शोभनीय बना-
ग्राह्य पदार्थ रखाती तू जो बिठार कर;
यह जो तेरे हैं शांति दाता बोल, उन बीच,
जीवन बिताएं हम नित ही विहार कर।।

मंत्र- शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति। मा ते युयोम संदशः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

नाना भांति की कलाएं, अरू ज्ञान विज्ञान-
करते हैं मात तव बीच में सदा ठंही;
तुझसा न कोई कल्याणकारी, तू हमारा-
हित करने में कभी करती मना नहीं।
अत्यन्त शांति की प्रदायिनी, दुःखों के बीच-
तुझसे सदैव सर्व-सुख की हवा बही,
विनती है हम पर रख तू कृपा की दृष्टि,
निज दृष्टि से तू हमें ओझल बना नहीं।।

सूक्त ६९

मंत्र- शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः। अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां शमुषा नो व्युच्छतु।।१।।

काव्यार्थ-

हम हेतु सदा सुखकर रीति से बहे वायु,
सूर्य हमें सुख देने के हेतु रहे तपता,
हम प्राणियों के हेतु दिन रात्रि हों सुखदायक,
सुखदायी उषा हो नर प्रभु नाम रहे जपता।

सूक्त ७०

मंत्र- यात्किं चासौ मनसा यच्च वाचा यज्ञैर्जुहोति हविषा यजुषा।तन्मृत्युना निर्ऋतिः संविदाना पुरा सत्यादाहुतिं हन्त्वस्य।।१।।

काव्यार्थ-

यह दुष्ट दूसरों को सताने के लिए जो,
कटु वाण छोड़ता है वाणि की कमान से;
रचता है योजनाएं कुटिल अपने हृदय से,
अरू संगति कर्मों से, भोज्य से व दान से।
उस दुष्ट को सेनापति से अपनी मृत्यु संग,
पायी हुई अलक्ष्मी, धन-धान्य की च्युति;

वह इसकी सफलता से पूर्व कर संहार दे,
इसकी दुखों की दायिनि विनाश आहुति।।

मंत्र- यातुधाना निर्ऋतिरादु रक्षस्ते अस्य धनन्त्वनृतेन सत्यम्। इन्द्रेषिता देवा आज्यमस्य मथ्नन्तु मा तत् सं पादि यदसौ जुहोति।।२।।

काव्यार्थ-

निर्धनता घिरे शत्रु तथा दुःख घिरे राक्षस,
मिथ्याचरण से नष्ट करें इसकी सफलता;
प्रेरित हुआ सेनापति से विजयी शूर दल
देता रहे इस शत्रु को अत्यन्त विकलता।
हरता हुआ उत्साह तथा ऊर्जा को वह,
इस शत्रु के तत्व पदार्थ को रहे दलता;
उसकी विनाशकारिणी आहुतियां सबकी सब,
होवें न सिद्ध वह रहे निज हाथों को मलता।

मंत्र- अजिराधिराजौ श्येनौ संपातिविव। आज्यं पूतन्यतो हतां यो नः कश्चाभ्यघायति।।३।।

काव्यार्थ-

अति शीघ्रगामी पक्षीराज श्येन जिस तरह,
अविराम झपट करते हैं आघात परस्पर,
उस ही प्रकार जो भी दुष्ट-आचरण करे,
आकाश व्याप्त गरजते बादल सा बरस कर;
मृत्यु तथा दारिद्रय उसका तत्व पदारथ,
कर देवें त्वरित नष्ट, नहीं छोड़े तरस कर।

मंत्र- अपांचौ त उभौ बाहू अपि नह्याम्यास्यम्। अग्नेर्देवस्य मन्युना तेन तेऽवधिषंहविः।।४।।

काव्यार्थ-

तुझ शत्रु के दोनों ही बाहु पीछे मोड़कर,
बांधे तथा मुख दण्ड रूप सूत्र से सिया,
तेजस्वी विजयी सेनापति के क्रोध से तेरी-
हवि का सभी ग्राह्य पदार्थ नष्ट कर दिया।

मंत्र- अपि नह्यामि ते बाहू अपि नह्याम्यास्यम्। अग्नेघोरस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः।।५।।

काव्यार्थ-

हे शत्रु! मैंने तेरी भुजाएं हैं बांध दीं,
मुख को सुदृढ़ता से मैंने बन्द कर सिया,
भयकारी तेजपूर्ण सेनापति के क्रोध से,
मैंने हवि का ग्राह्य सभी नष्ट कर दिया।

सूक्त ७१

मंत्र- परित्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि। घृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः।।१।।

काव्यार्थ- **स्तुति**

अति ही कृपालु प्रभुवर! हम आपके उपासक,
सब ओर से सदा ही स्तुति अनेक गाते।।
हे अग्नि रूप, अग्नि समान तेजधारे,
हे सर्व ज्ञान पूर्ण अत्यन्त शक्ति वाले;
करते सदैव रहते शत शत्रुओं का घर्षण,
रहते सदैव उन पर निज क्रूर दृष्टि डाले।
अविलम्ब मार देते जो बन रहा विनाशक,
हम आप से ही निज को निर्भय सदैव पाते।।

सूक्त ७२

मंत्र- उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम्। यदि श्रातं जुहोतन यद्यश्रातं ममत्तन।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

उठो निहारो ईश को जो है जग का मूल।
अन्न भाग कैसा दिया उसने ऋतु अनुकूल।।
यदि वह अच्छी तरह से पका हुआ है अन्न।
तब उसको स्वीकार कर बनो शक्ति सम्पन्न।।
पका नहीं शुभरीति से तो न लगाओ हाथ।
करो प्रतीक्षा अरू रहो आनन्द के साथ।।

मंत्र- श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो वि मध्यम् परि। त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्रजपतिं चरन्तम्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे ऐश्वर्यवान् नर! यह अन्न का भाग।
तुझे सिद्ध है, पूर्णतः बना हुआ बेदाग़।।
उत्तम विधि से पा इसे बनकर के तू आप्त।
ज्यों सूर्य निज मार्ग के मध्य भाग को प्राप्त।।
तेरे चतुर्दिशि मित्र सब बैठें निधियों साथ।
ज्यों सुत अपने पिता संग बैठे पकड़े हाथ।।

मंत्र- श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुशृतं मन्ये तदृतं नवीयः। माध यन्दिनस्य सवनस्य दघ्नःपिवेन्द्र वाज्रिन्पुरूकृज्जुषाणः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पाता है परिपक्तवा पहली पहली बार-
दूध गाय के थनों में करता मैं स्वीकार।।
परिपक्व वह अग्नि पर होता तत्पश्चात्।
तभी सत्य परिपक्व वह स्वीकारूं यह बात।।
महनीय ऐश्वर्य के धारी अहे मनुष्य।
हे बहु कर्मी, वज्र धर आप्त जनों के तुल्य।।
श्रेष्ठ स्वास्थ्य के हेतु तुम मध्याह्न को जान।
इसका सेवन करो, अरू करो दही का पान।।

सूक्त ७३

मंत्र- समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस्तप्तो घर्मोदुह्यते वामिषे मधु। वयं हि वा पुरूदमासो अश्विना हवामहे सधमादेषु कारवः।।१।।

काव्यार्थ-

दोनों पराक्रमी स्त्री अरू पुरूष! आपके हेतु,
ज्योतिमान् आचार्य यहां जो तेज अग्नि से लेतु;
वह प्रकाश के रथ जैसा ऐश्वर्यवान कहलाता,
तव ज्ञानार्जन हेतु ज्ञान का दोहन करता जाता।
हे पटु स्त्री-पुरूष! आप विद्या वारिधि कहलाते,
अरू हम दमनशील, कर्म करने से रखते नाते;

हम सभी आप विज्ञों को निज उत्सव पर सदा बुलाते,
तथा आपके सत्संग से बहु-बहु लाभ उठाते।

मंत्र- समिद्धो अग्निरश्विन तप्तोवां धर्म आ गतम्। दुह्रन्ते नूनं वृषणेह धेनवो दस्रा मदन्ति वेधसः।।२।।

काव्यार्थ-

हे दोनों ही चतुर रहे स्त्री अरू पुरूष! तुम्हारे-
पथ-दर्शन को अति ज्ञानी आचार्य यहां पधारे;
यह ऐश्वर्य युक्त, ज्वलित अग्नि समान तेजस्वी,
इनके निकट आओ तुम, दोनों बनने हेतु मनस्वी।
देखो दोनों दर्शनीयों, हे विक्रम धारी दोनों,
निश्चय पूर्वक यहां वेदवाणी का दोहन होनों;
कर जिसका रसपान विज्ञ जन सदा मुदित होते हैं,
कष्ट नष्ट होते क्षण में, सौभाग्य उदित होते हैं।

मंत्र- स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो ये अश्विनोश्चमसो देवपानः। तमु विश्वे अमृतासो जुषणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दोनों जो चतुर नर नारी श्रेष्ठ गुण युक्त,
शुभ कर्म करने में नित्य उमगाहते;
तुमने जिसे कि है सुवाणि द्वारा सिद्ध किया,
रक्षा जिसकी पवित्र विद्वान् चाहते।
वह है कहाता पूजनीय सद्-व्यवहार,
मेघ के समान जो कि चलता उछाहते;
वही व्यवहार कर अमृत गुणी समस्त,
सूर्य मुख जैसे तेजवान हो सराहते।।

मंत्र- यदुस्रियास्वाहुतं घृतं पयोऽयं स वामश्विना भाग आ गतम्। माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं धर्मं पिवतं रोचने दिवः।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे चतुर नर अरू नारियों प्रवीण अति,
आओ तुम, जाओ नहीं जनता को छोड़ के;

जैसे गउओं से घृत, दूध लेते, वैसे तुम-
ज्ञान लेओ जगत पदारथ निचोड़ के।
वेद-शास्त्र ज्ञाता, धाता जानने के योग्य कर्म,
सत् पुरूषों को रक्ष, रखते हो जोड़ के;
तुम ब्रह्मविद्या रूप सूर्य के प्रकाशबीच,
धर्म रक्ष, रख दो अधर्म गढ़ तोड़ के।।

मंत्र- तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता प्रावामंध्वर्युश्चरतु पयस्वान्।
मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पातं पयस उस्रियायाः।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे चतुर नर नारी! तुम दोनों ही सदैव,
धर्म प्राप्त करो, जो अति प्रकाशमान हैं;
जो कि धन देने वाला और ऐश्वर्ययुक्त,
जो सदैव ही अहिंसा कर्म प्रधान है।
जन-जन हितकारी, उपकारी विद्या का,
परिपूर्ण मधुमय ईश-दत्त ज्ञान है;
जैसे गौ का दूध प्राप्त करते, सुरक्षते हैं,
वैसे तुम समझो अतीव रस खान है।।

मंत्र- उपद्रव पयसा गोधगषमा घर्मे सिंच पय उस्रियायाः। वि
नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनुप्रयाणमुषसो वि राजति।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

गौ का दूध दोहने समान, अत्यन्त श्रेष्ठ-
विद्या को दोह रहे विज्ञ तू हितेश है;
ज्योतिमान यज्ञ बीच विज्ञान द्वारा तेरा-
अन्धकार-नाशन में रहता प्रवेश है।
जैसे सूर्य का प्रकाश सर्व द्वीप देशों बीच,
भरता प्रकाश, रहता न अंध शेष है;
उस ही प्रकार जग को चलाता जगदीश,
वेद द्वारा देता मोक्ष प्राप्ति उपदेश है।।

मंत्र- उप ह्वये सुदुधां धेतुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्। श्रेष्ठं सवं
संविता साविषन्नोऽभीद्धोधर्मस्तदु षु प्र वोचत्।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जैसे स्वीकार करता मैं वेद-विद्या को,
पूर्ण करती जो शुभ-रीति शुभ कामना;
वैसे ही सुहस्त विज्ञ विद्या को दोहता जो,
इसे दुह, करे बुद्धि बीच स्थापना।
हम हेतु ऐश्वर्यवान् प्रभु ऐसा श्रेष्ठ-
ऐश्वर्य देवे जो कि होवे कभी वाम ना;
अति ही प्रदीप्त वो प्रतापी प्रभु वेद द्वारा-
देता हमें उपदेश, लेता है छदाम ना।।

मंत्र- हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन्। दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वृद्धि करती जो, धन रक्षती है, श्रेष्ठों बीच-
उपदेश कर्ता को नित ही चहा करें;
ऐसी वेद-वाणी निश्चय कर मन बीच,
आकर के उस पास, उसको महा करें।
सर्वदा अहिंसक यह दुहु नर नारी हेतु,
विज्ञान दुहती सदैव ही बहा करे;
अरू हम सब अति श्रेष्ठ प्रजाओं बीच,
महत् सौभाग्य को बढ़ाती ही रहा करे।।

मंत्र- जुष्टो दमूनाअतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान्। विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्य शूयतामा भरा भोजनानि।।९।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे अग्नि के समान राजन! हमारे द्वारा-
सेवित, दमित मन,गतिशील रहता;
तू हमारे घर आ अतीव ज्ञान-बूढ़ विज्ञ,
सादर स्वीकार यह श्रेष्ठ दान महता।
शत्रु के समान आचरण करता जो भूप,
करके सशस्त्र जो चढ़ाई, हमें दहता;

उस शत्रु के समस्त दल को समाप्त कर,
अपनी प्रजा को पाल, जन-जन चहता।।

मंत्र- अग्ने रार्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु। सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रुयतामभि तिष्ठामहांसि।।१०।।

काव्यार्थ- कवित्त

हे अतीव बलवान, अग्नि सम विद्वान-
राजन! रहा जो तेज तुझमें निवास कर;
नित ही बढ़ाये वह जनता का महनीय-
ऐश्वर्य, उनको प्रदाने सुखराशि वर।
तू हमारे पत्नी-पति धर्म को भली प्रकार-
शुभ नियमों का बना, उनमें सुहास भर;
शत्रु सम आचरण करते हमारे साथ-
जो भी, उनके बलों का अविलम्ब नाश कर।।

मंत्र- सूयवसाद्भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तःस्याम। अद्धि तृणमध्न्य विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती।।११।।

काव्यार्थ- कवित्त

हे प्रजा! तू कर सुन्दर अन्न आदि भोग,
निज को बना तू बहु ऐश्वर्यवान, वर;
फिर हम लोग होवें बहु ऐश्वर्य वाले,
हिंसा न कर तू प्रजा, ये बात कान धर।
तू समस्त दानों की क्रिया का कर आचरण,
हिंसा करती न कभी गाय, पहचान कर,
थोड़े व्यय से ही रहे गाय का आहार अरू,
व्यवहार शुद्ध, अरू शुद्ध पेय पानकर।।

सूक्त ७४

मंत्र- अपचितां लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम। मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम्।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

लाल गण्डमाला की है माता काले रंग।
ऐसा हमने है सुना रखाती नाना ढंग।।

बड़े-बड़े वह वैद्य जो मननशीलता खान।
उनके मूल ग्रन्थों से समझ रोग-विज्ञान।।
अरू रोगी के रोग का जान सभी इतिहास।
छेद गण्डमालाओं को कर देता हूं नाश।।

(गण्डमाला रोग में पहले काले धब्बे पड़ते हैं, फिर वह रक्त वर्ण हो जाते हैं। मूल औषधि विशेष भी है, जिसे पीपलामूल कहते हैं।)

मंत्र- विध्याम्यासां प्रथमा विध्याम्युत मध्यमाम् इदं जघन्यामासामाच्छिनादि्भ स्तुकामिव।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

इन गण्डमालाओं में से पहली देता बेध।
तथा बीच वाली को मैं तोड़ करूँ उच्छेद।।
इनमें से नीचे की मैं सर्वदिशि तत्काल।
छिन्न-भिन्न कर देता हूं जैसे उनके बाल।।

मंत्र- त्वाष्ट्रेणाहं वचसा वि त ईर्ष्याममीमदम्। अथो यो मन्युष्टे पते तमु तेशमयामसि।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

हे नर! मैंने जग-जनक प्रभु की वाणी लीन।
अरू तव ईर्ष्या को किया पूर्ण रूप मदहीन।।
हे स्वामी परमेश्वर! जो तेरा है क्रोध।
उसे शान्त करते त्वरित तू दे हमें प्रबोध।।

मंत्र- व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमनादीदिहीह। तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं प्रजावन्त उप सदेम सर्वे।।४।।

काव्यार्थ- दोहा

हे व्रत पालक शुभ व्रतों से हो तू संयुक्त।
ज्योतिमान रह सर्वदा चिन्ताओं से मुक्त।।
ख्यात बुद्धि हे धनपति! ज्योतित भली प्रकार।
हम वेदोक्त कर्म कर रखते अशुभ प्रजार।।
हम सब शुभ प्रजाओं के करते सत्य प्रचार।
तव प्रशस्ति करते तुझे पूजें भली प्रकार।।

सूक्त ७५

मंत्र- प्रजावतीः सूयवसे रूशनतीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिवन्तीः। मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रूद्रस्य हेतिर्वृणक्तु।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

शुभ सन्तान वाली, शुभ यव-थल बीच,
सर्वदा जो अपने भ्रमण को महा करें;
शुभ जल स्थान में पिये जो शुद्धजल,
ऐसी प्रजाएं सब पर ही छहां करें;
कोई चोर कर न सकें कभी भी वशीभूत,
डाकू औ लुटेरे नहीं उनको दहा करें,
रूद्र प्रभु अपनी हनन शक्ति के द्वारा
शत्रुओं से उनको बचाते ही रहा करें।।

मंत्र- पदज्ञा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः। उप मा देवीर्देवेभिरेत। इमं गोष्ठमिदं सदो घृतेनास्मान्त्समुक्षत।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

विज्ञों के मार्ग को यथावत् जो जानती है,
क्रीडा करती जो, मिल बैठती सुहास से;
जो है बहु नाम वाली अरू दिव्य गुणवाली,
ऐसी प्रजा, सम्बन्ध जिसका विकास से।
हे प्रजाओं! उत्तम गुणों के साथ आओ तुम,
और करो दूर हम सबको उदास से;
बैठो इस बैठक में अरू वाचनालय में,
नित्य ही बढ़ाती रहो हमको प्रकाश से।।

सूक्त ७६

मंत्र- आ सुस्रसः सुस्रसो असतीभ्यसो असत्तराः। सहोररसतरा लवणाद्विक्लेदीयसीः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बहने वाली वस्तु से भी बहती कुछ भूरि।
अपर अति बुरी से अधिक लिये बुराई पूरि।।

लवण पदारथ से अधिक पानी को कुछ ढोंय।
शुष्क से भी शुष्क कुछ गण्डमालाएं होंय।।

मंत्र -या ग्रैव्या अपरिचितोऽथो या उपपक्ष्याः। विजाम्नि या अपचितः स्वयंस्रसः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो गण्डमाला गले में जो कन्धों को जोड़।
जो गुप्त स्थान बन देती कष्ट करोड़।।
यह सब की सब स्वयं में बहने वाली होंय।
बिन उपचार व्यक्ति की सुख शांति को खोंय।।

मंत्र- यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्यमवतिष्ठति। निरस्तं सर्व जायान्यं यः कश्च ककुदि श्रितः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

रोग जो तोड़े पसलियां तलवे पर जम जाय।
जो सिर ठहरे उन सभी को दे वैद्य भगाय।।

मंत्र- पक्षी जायान्यः पतित स आ विशति पूरूषम्। तदक्षितस्य भेषजमुभयोः सुक्षतस्य च।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पंख वाला उड़ाऊ क्षय उड़े जनम के साथ।
अरू करता प्रवेश वह अन्य पुरूष के गात।।
अंतः के अरू व्रण भरे क्षय के दुहु प्रकार।
करिये सब ही का त्वरित औषधि से उपचार।।

मंत्र- विद्म वै ते जायान्य जानं यतो जायान्य जायसे। कथं ह तत्र हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे क्षय! तेरा जनम थल हमें सुनिश्चित ज्ञात।
तथा जानते हैं जहां से उत्पन्न दिखात।।
जिस घर ग्राह्य कर्म हम करते सायं प्रात।
कैसे मारा जाता तू वहां हमें है ज्ञात।।

मंत्र- घृषत्पिब कलशे सोमिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम। माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिष्ठानो रयिमस्मासु धेहि।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! निर्भय शूर, अरू परमैश्वर्यवान्।
धन प्राप्ति हित युद्ध में ले शत्रु की जान।।
जग रूपी शुभ कलश का करके मधु-रस पान।
बन मध्याह्न सूर्य सम तेजस्वी बलवान।
तू धन के स्थान में रहता रह सानन्द।
अरू हम लोगों बीच में धन को थाप अमन्द।।

सूक्त ७७

मंत्र- सांतपना इदं हविर्मरूतस्तज्जुष्टन। अस्माकोती रिषादसः।।१।।

काव्यार्थ-

हे महत् ऐश्वर्य में निवास करते तथा-
हिंसकों के प्राण हर्ता विज्ञ शूरवीर जन;
नित्य ही बढ़ाइये हमारी रक्षा हेतु आप-
अपना करणीय यह वह कर्म-रूप धन।

मंत्र- यो नो मर्तो मरूतोः दुर्हृणायुस्तिरश्चिवत्तानि वसवो जिघांसति।
द्रुहः पाशान्प्रति मुंचतां स तपिष्ठेन तपसा हन्तना तम्।।२।।

काव्यार्थ-

हमको निवासदाता शूरों! अति क्रुद्ध दुष्ट,
आड़े हो हमारे चित्त, मारना जो चाहता,
उस पर छोड़िये अनिष्टता के पाश, तथा-
मारियेगा देकर तपन, अति ताप-दा।

मंत्र- संवत्सरीणा मरूतः स्वर्का उरूक्षया सगणा मनुषासः। ते
अस्मत्पाशान्प्र मुंचन्त्वेनसः सांतपना मत्सरा मादयिष्णवः।।३।।

काव्यार्थ-

अपनी प्रजा के द्वारा, प्रार्थित रहे जीवन भर,
रक्षार्थ बड़े व्रज धारण किये करों में;
विद्वान, मननशील, अति शूर, रहने वाले-
सेना समूह साथ विस्तृत बड़े घरों में।
सबके ही कष्ट हरते, सबको प्रसन्न रखते,
जो अग्रणी कहाते, प्रसन्नता भरो में;

वह पाप के फन्दों से, सबको ही छुड़ा देवें,
ऐश्वर्यधारी अतुलित ज्ञानी सभी नरों में।

सूक्त ७८

मंत्र- वि ते मुंचामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम्। इहैव त्वमजस्र एध्यग्ने।।१।।

काव्यार्थ-

हे अग्नि सम बली आत्मा! तव रस्सी की जोत तथा,
उसकी गांठे तीन जिन्होंने तुझे कष्ट में झोंक रखा;
उनको विविध प्रकार खोलता हूं मैं मन में हुलसाये,
अब तू अपना वास यहीं कर बिना किसी दुःख को पायें।।

(तीन गांठें- आध्यात्मिक, अधिदैविक तथाअधिभौतिक क्लेश)

मंत्र - अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन। दिदिह्य१स्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेम वोचे हविर्दा देवतासु।।२।।

काव्यार्थ-

अग्नि जैसी पराक्रमी हे सबल आत्मा मेरी हितू,
इस प्राणी के लाभ हेतु तू नाना बल धारण करती;
तुझको मैं नियुक्त करता हूं, प्रभु के वेद ज्ञान द्वारा,
अपने कोष मध्य कर नाना धन आनन्द राशि भरती;
इस मनुष्य को विद्वानों में तूने यही बताया है,
देता है यह देय वस्तुएं जो सबकी पीड़ा हरती।

सूक्त ७९

मंत्र- यत्ते देवा अकृण्वन्भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा। तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सब ही के साथ बसी शक्ति परमेश्वर,
रमते हैं तुझमें ही हम विद्वान् नर;
तेरी महिमा से सेवनीय सब काम करें,
प्राप्त करें वांछनीय, तेरा आह्वान कर।

सब की ही स्वीकारणीय परमेश-शक्ति
भक्तों के पूज्य व्यवहार पर ध्यान धर;
पूर्ण कर उनको हे ऐश्वर्यधारी शक्ति,
श्रेष्ठ वीर, श्रेष्ठ धन हमको प्रदान कर।।

मंत्र- अहमेवास्म्यमावास्या३मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे। मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे।।२।।

काव्यार्थ- गीत

मैं हूं सर्वव्याप्त एक शक्ति, सभी का करती हूं, कल्याण।।
मेरी चाहना करते हैं यह सभी सुकर्मी लोग,
मेरे आश्रय रहते, दहते सभी रोग अरू सोग,
मैं ही उन्हें रक्षती, उनका मैं ही करती त्राण।।
अन्तर्यामी होकर मैं ही जग को वश में करती,
स्थावर अरू जंगम दोनों मैं ही करती भरती,
जीवित दिव्य पदारर्थ मुझसे, मुझसे पाते प्राण।।

मंत्र- आगन् रात्री संगमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती। अमावस्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन्।।३।।

काव्यार्थ- कवित्त

पुष्टियां प्रदाता अरू बल को बढ़ाता धन-
देती हुई अरू बहु सुख को प्रदानती;
परमेश शक्ति आ गयी है, अहा भाग्य जगे,
सब लोकों को मिलाती, नियमों को तानती।,
पूजें इसे हम पूर्ण भक्ति के साथ, यह-
भक्तों की प्रेम-भावनाएं पहचानती;
आकर मिली है यह हमसे पराक्रम को-
ज्ञान साथ परिपूर्ण करती, बखानती।।

मंत्र- अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जनान। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम।।४।।

काव्यार्थ-

हेचर-अचर सभी के संग वास करने वाली,
परमैश्वर्य-शक्ति! हम पर कृपा बना दे।।
तेरे सिवा किसी ने भी सर्वव्याप्त होकर,
पैदा नहीं किये यह सब रूपमय पदार्थ;
जिस वस्तु प्राप्ति के हित स्वीकार तुझे करते,
उस वस्तु को प्रदान, हम लोगों के हितार्थ।
हे चर-अचर सभी के संग वास करने वाली,
हे शक्ति! तू धनों का स्वामी हमें बना दे।।

सूक्त ८०

मंत्र- पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय। तस्या देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सकल पदारथ जगत के रखते जो आकार।
परमेश्वर की शक्ति है उन सबका आधार।।
सृष्टि पूर्व में, मध्य में तथा बाद के काल।
वर्तमान होने से यह सर्वश्रेष्ठ हर हाल।।
निज महिमा, निज श्रेष्ठ गुण रखते अपने पास।
उस परमेश्वर शक्ति में करते सदा निवास।।
हम अपने पुरूषार्थ से ऊंचाई पर जांय।
तथा प्रभु की भक्ति कर सुखद मोक्ष को पांय।।

मंत्र- वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे। स नो ददात्वाक्षितां रयिमनुपदस्वतीम्।।२।।

काव्यार्थ-

प्रभु सबसे श्रेष्ठ है वह सबसे महाबली है,
परिमेय पदार्थों का आधार एक वही है;
अविनाशी तथा अक्षय सम्पत्ति वह हमें दे,
हम उसको पूजते हैं उसकी शरण लही है।

मंत्र- प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि पिरिभूर्जजान। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

हे प्रजापति परमेश, तुम सा न दूसरा कोई।
तुम सा न दूसरा कोई, यह सृष्टि तुम्ही से होई।।
हे प्रजापति.....
आकारवान जितने जग के बीच पदारथ दिखते,
उत्पन्न किये वह तुमने यह तुमसे ही हैं टिकते;
नहीं सर्वव्याप्त कोई और जिसने यह सृष्टि बोई,
जिसने यह सृष्टि बोई जो रचै पुनः दे धोई।।
हे प्रजापति .....
हमें मिले वस्तु वह जिसकी हम करें कामना प्रभुवर,
अरू किया करें तन मन से स्वीकार आपको प्रभुवर;
बने स्वामी सभी धनों के जो चाह करें, मिलै सोई,
जो चाह करें मिलै सोई चले अपने दुखड़े धोई।।
हे प्रजापति.....

मंत्र- पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु। ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

परमेश शक्ति! तू आधार शक्ति है, सब-
परिमेय जितने पदार्थ हम देखाते;
दिनों बीच तथा रात्रियों के घने अंध बीच,
तुझको प्रथम पूजनीय हम रेखाते।
पूजनीय शक्ति। पूजते हैं तुझे यह सब,
और वह जो कि सुकर्मों को नहीं छेकते,
करते आनन्द में प्रवेश ऐसे सब लोग,
नित पूत आत्मा को स्वर्ग बीच टेकते।।

सूक्त ८१

मंत्र- पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशु क्रीडन्तौ परि यातोऽणवम्। विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः।।१।।

काव्यार्थ-

यह दोनों रवि शशि अम्बर में प्रभु के नियम बीच चलते;
द्वय शिशुओं सम यह चारों दिशि खेल खेलते हैं पलते।
उनमें एक सभी भुवनों को ज्योतिमान किया करता,
अपर बार-बार नव होता ऋतु निर्माण किया करता।

मंत्र- नवो नवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम्। भागं देवेभ्यो वि दधास्यचन्द्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः।।२।।

मंत्र- सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि। अनूनं दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

चन्द्रमा! तू शुक्ल पक्ष बीच रोज़ नया दिखे,
उषाओं के अग्र चले केतु-सा निशान बन;
आता हुआ पृथिवी के उत्तम पदार्थों में,
सेवनीय गुण डाल, करे रसखान वर।
अमृत प्रदाता अहे युद्ध-पति चन्द्रमा! तू-
पार है लगाता नर-जीवन का यान हर;
निश्चित ही तूहै अन्यून यशधारी एक,
दर्शनीय! हमें प्रजावान, धनवान कर।।

(युद्ध-पति- पौर्णमासी को समुद्र का जल चन्द्रमा की ओर लहराता है।)

मंत्र- दर्शोऽसि दर्शतोऽसि समग्रोऽसि समन्तः। समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन।।४।।

मंत्र- योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं दिष्मस्तस्यं त्वं प्राणेना प्यायस्व। आ वयं प्यासिषीमहि गोभरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

चन्द्र! तू है दर्शनीय, देखने का साधन तू,
सम्पूर्ण गुण वाला, कला सम्पूर्ण सों;
हम भी गऊ व अश्व, अन्य पशु, धन, घर
अरू संतति से अन्त तक परिपूर्ण हों।

हम से जो द्वेष करे, हम करें जिससे द्वेष,
चन्द्रमा!तू उनको विनाश, वह चूर्ण हों;
हम लोग गउओं से, घोड़ों, अन्य पशुओं से,
संतति व घर, धन आदिक से पूर्ण हों।।

मंत्र- यं देवा अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षिता भक्षयनित। तेनास्मानिन्द्रो वरूणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु भुवनस्य गोपाः।।६।।

काव्यार्थ- कवित्त

शुक्ल पक्ष बीच चन्द्रमा के जिस अमृत-
रस को बढ़ाती सूर्य किरणें मुदित हो;
वही अति व्यापक किरणें कृष्ण-पक्ष बीच,
बिन घटे चद्रमा को भक्षती क्षुधित हो।
उस ही नियम से अखिल जग के हितैषी,
प्रजा-रक्षकों का कर्तव्य भी उदित हो;
परमैश्वर्यवान् राजा, वैद्य, ज्ञानवान गुरू,
हमको बढ़ावें, दुःख नाशें वे कुपित हो।।

सूक्त ८२

मंत्र- अभ्यर्चत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त। इमं यज्ञं नयत देवतानों घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ताम्।।१।।

काव्यार्थ-

हे विद्वानों! उत्तम स्तुति योग्य जो कि कहलाता है,
ऐसे प्राप्ति योग्य प्रभु को तुम पूजो भली प्रकार।।
स्वर्ग प्राप्ति के लिए मात्र परमेश्वर हितकारी है,
इस ज्योतिर्मय पूजनीय को हम सब तक पहुंचाओ,
श्रेष्ठ कर्म की शुद्ध ज्ञान की धाराएं करती हों,
हमें सदा कल्याणकारी धन प्राप्त कराते जाओ।
प्राप्त कराओ आप हमें उद्देश्य मनुज जीवन का,
सबका हितू बनाओ हमको, करते हों उपकार।।

मंत्र- मय्यग्र अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन। मयि प्रजां मज्यायुर्दधामि स्वाहा मययग्निम्।।२।।

काव्यार्थ-

क्षात्र-शौर्य, वर्चस्व, प्रताप औं अपने बल साथ प्रभो।
पहले ग्रहण आपको करता तेजरूप परमेश विभो।।
पुनः प्रजा को तथा आयु को औ अग्नि उद्दीप्त महा।
पूत वेद की वाणी द्वारा अपने अन्दर धार रहा।।

मंत्र- इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन्पूर्वचित्ता निकारिणः। क्षत्रेणाग्ने सुयमस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टट्तः।।३।।

काव्यार्थ-

धन को साधिकार धारण कर इसी जगह हे अग्निप्रभो।
घाती अपकारी जन तव प्रति करें नहींअपकार कभो।।
हे सर्वज्ञ! क्षात्र बल से तव उत्तम नियमन हुआ करे।
तेरा उपासक अजेय होकर उन्नतियों को छुआ करे।

मंत्र- अन्वग्निरूषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः। अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश।।४।।

काव्यार्थ-

सर्वव्याप्त प्रभु उषाकाल का अग्र भाग ज्योतित करता।
पहला जातवेद वह ही प्रभु दिवसों को आभित करता।।
वही सूर्य सम प्रभू उषाओं बीच सतत ही व्याप्त रहा।
रवि किरणों में वही ज्योतिमय अपने को है ज्ञाप रहा।।
द्यु अरू पृथिवी लोक उसी ने निज विक्रम से फैलाया।
उनके बीच रमा होकर वह सर्वव्याप्त है कहलाया।।

मंत्र- प्रत्यग्निरूषसामग्रमख्यत्प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः। प्रति सूर्यस्य पुरूधा च रश्मीन्प्रति द्यावापृथिवी आ ततान।।५।।

काव्यार्थ-

सर्वव्याप्त प्रभु ने उषाओं का शुभ विकास प्रसिद्ध किया।
पहले जातवेद उस ही ने दिवसों को प्रसिद्ध किया।।
वह विशेष विधि रवि-किरणें प्रत्यक्ष प्रकाशित करता है।
सर्वादिशि द्यु अरू भू को वह ही विस्तारित करता है।।

मंत्र- घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेनत्वां मनुरथद्या समिन्धे। घतं ते देवीर्नप्त्य१आ वहन्तु घृतंतुभ्यं दुह्रतां गावो अग्ने।।६।।

काव्यार्थ-

अग्निरूप तेजस्वी प्रभुवर! तव प्रकाश अति गहरा है।
उससे कारण रूप तथा यह कार्य रूप जग ठहरा है।।
उत्तम गुण से युक्त प्रजाएं पतित नहीं जो होती हैं।
वह तेरी किरणें दें हमको जो माणिक हैं, मोती हैं।।
तव प्रकाश संग मनुज यथावत तुझे प्रकाशित करता है।
वेद प्रकाशें तव प्रकाश, जो जग को शासित करता है।।

सूक्त ८३

मंत्र- अप्सु ते राजन्वरूण गृहो हिरण्ययो मिथः। ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामिन मुंचतु।।१।।

काव्यार्थ-

सर्वश्रेष्ठ राजाधिराज प्रभु! तेरा तेजमय धाम महा।
सब प्राणों में वर्तमान हो एक दूसरे साथ रहा।।
सत् नियमों के पालक राजन! भरते सत्‌गुण ठुक्त रहें।
तथा उसी से निडर बनायें हम सब बन्धन मुक्त रहें।।
बनें नहीं हम कभी प्रमादी कभी नहीं हम सुप्त रहें।
तथा धर्म में हो प्रवृत्त हम सब क्लेशों से मुक्त रहें।।

मंत्र- धाम्नोधाम्नो राजन्नितो तो वरूण मुंच नः। यदापो अघ्न्या इति व रूणेति यदूचिम ततो वरूण मुंच नः।।२।।

काव्यार्थ-

सर्वश्रेष्ठ राजा-प्रभु! काटो बन्धन हमें जो घेरे हैं।
जिस कारण से अबध्य गौ सम बने प्राण यह मेरे हैं।।
सर्वश्रेष्ठ प्रभु! तू ही श्रेष्ठ है हमें श्रेष्ठता-सोम पिला।
मुक्ति चाह ले स्तुति करते प्रभु! तू हमको मुक्ति दिला।।

मंत्र- उदुत्तमं वरूण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम।।३।।

काव्यार्थ-

हे स्वीकारणीय प्रभो! यह उत्तम, अधम, मध्य पाश।
उपर, नीचे तथा विविध विधि खोल, बना अपना दास।।

सर्व प्रकाशक प्रभु! हम तेरे अनुशासन में रहा करें।
निष्पापी होकर निर्बन्ध मुक्त अवस्थागहा करें।।

मंत्र- प्रास्मत्पाशान्वरूण मुंच सर्वान्य उत्तमा अधमा वरूणा ये।
दुःखस्वप्न्यं दुरितं निःष्वास्मदथ गच्छेम सुतस्य लोकम्।।४।।

काव्यार्थ-

दुःखहर्ता प्रभु! खोल हमारे पाश, महादुःख जो लाये।
उत्तम, अधम जो कि हमने तुझ दोष-निवारक से पाये।।
द्रुत निकाल नींद में उठते कुविचार अरू विघ्न बड़े।
फिर हम सज्जन, आप्तजनों में आदर पाकर रहें खड़े।।

सूक्त ८४

मंत्र- अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यों विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह। विश्वा अमीवाः प्रमुंचन्मानु-षीभिः शिवामिरद्य परि पाहि नो गयम्।।१।।

मंत्र- इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोजायथा वृषिभः चर्षणीनाम। अपानुदो जनम मित्रायन्तमुरूं देवेभ्यो अकृणोरू लोकम्।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

राजन्! तू सब विधि है अजेय, महाज्ञानी,
तू अमर्त्य है, महत् ऐश्वर्य धारता;
हे मनुष्यों में श्रेष्ठ! तू प्रसिद्ध विक्रम में,
धारने में श्रेष्ठ क्षात्र-बल की अपारता।
राज्य का पोषक होकर हो प्रकाशमान,
दुःख और दरिद को रख तू प्रजारता;
सब ही जनों का करता हुआ तू कल्याण,
सबके घरों को चल रक्षता, निखारता।।

दोहा

तूने विस्तृत थल दिया विजय कामियों हेतु।
तथा मृत्युलोक दिया रहे शत्रु थे जेतु।।

मंत्र- मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगम्यात्परस्याः।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं विशत्रून्ता वि मृधो नुदस्व।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

राजन्! जो दायें-बायें, ऊपर व नीचे जाते,
पर्वतों पर रहते हैं, उनको खंगालते;
ऐसे अपना शिकार ढूंढते जो सिंह आदि,
उनके समान तू भी घूमता उबाल दे।
दूर से भी दूर शत्रु पर करता चढ़ाई,
शीघ्र सब हिंसकों को बाहर निकाल दे;
निज उत्साह को बढ़ाते वाण वज्र धार,
शत्रुओं को ताड़ना दे, भय को बिठाल दे

सूक्त ८५

मंत्र- त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तारूतारं रथानाम्। अरिष्टनेमिं पृतनाजिमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम।।१।।

सूक्त ८६

मंत्र- ज्ञातार मिन्द्रमवितार मिन्द्रं हूवेहवे सुह्वं शूरमिन्द्रम्। हुवे नु शक्रं पुरुषोमिन्द्रं स्वास्ति नन इन्द्रो मघवान्कृणोतु।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

विज्ञ जन प्रेरित, अपार धन-धान्य युक्त,
रथों को जो शीध्रगामी गति से चलात है;
महाबली-शत्रु-सैन्य शीध्र जीत लेने वाला,
महा वेगवान, शीध्रकारी जो लखात है।
महाऐश्वर्यवान, रक्षक व पालक जो,
बहुतों के द्वारा प्रार्थनाएं जो कि पात है;
ऐसे शक्तिमान राजा को मैं बुलाता हूं, वह-
प्रजा कल्याण हेतु देर न लगात है

दोहा

सुदृढ़ व्रजधारी सबल धारे हुए प्रताप।
संग्राम-संग्राम को लड़े, जीत ले आप।।

सूक्त ८७

मंत्र- यो अग्नौ रूद्रो यो अप्स्वऽन्र्य औषधीर्वीरूध अविवेश। य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रूद्राय नमो अस्त्वग्नये।।१।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्यारे प्रभु के घर तक जो मार्ग पहुंचाता है,
उस मार्ग पग बढ़ाये नित ही गमन करें हम।।
जो प्रभु महान् ज्ञानी है अग्नि और जल में,
औषधियों, वनस्पतियों के फैले हुए दल में;
ऐसा प्रभू दिशाओं में जो सुगन्ध भरता,
उसकी शरण में जाकर गंधित चमन करें हम।।
रच कर जो लोक-लोकान्तर को प्रकाश भरता,
जो सर्वव्याप्त सबके दुख-दोष नाश करता;
जो है दया का सागर, सब पर बड़ा कृपालु,
उसको ही सिर झुकाकर, नित ही नमन करें हम।।

सूक्त ८८

मंत्र- अपेध्यरिरस्यरिर्वा असि। विषे विषमपृक्था विषमिद्वा अपृक्थाः। अहिमेवाभ्यपेहि तं जहि।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तू शत्रु है, शत्रु ही है हे विष, जा भाग।
तू ने विष में विष मिला उसे कर दिया आग।।
हां तूने विष ही मिला उसे बनाया तेज।
अब जा सांप पास ही उसे मृत्यु मुख भेज।।

सूक्त ८९

मंत्र- अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि। पयस्वानग्न आगमतं तं मा सृज वर्चसा।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अति ही स्तुतियोग्य वह दिव्य गुणी प्रबुद्ध।
जो जल के सम दूसरों को कर देते शुद्ध।।
मैं उनको पूजूं कि जो करते दुर्गुण दूर।
अरू तद् विक्रम से स्वयं को कर लेता पूर।।
तेरे पास आया हूं मैं सक्रियता को धार।
अब हे विज्ञ! तू मुझे तेज निकट बैठार।।

मंत्र- सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा। विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे विद्वान् कर मुझे तेजपूर्ण शुभ रीति।
संतति युत् शुभ रीति से जीवन धारे प्रीति।।
मैं विद्वान् लोगों में प्राप्त करूं सम्मान।
गुरूजन, ऋषि गण शरण से मेरी हो पहचान।।

मंत्र- इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत्। यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभिरूणम्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जल के समान शुद्धि-कर्म करते हे विज्ञ,
आप मेरे बीच के कलुष देख लीजिये;
जो कुछ भी मेरे निन्दनीय औ मलिन कर्म,
जो कुछ असत्य कहा, आप बहु खीझिये।
निरपराधी जन को कहा है जो भी दुर्वचन,
जो कुछ भी द्रोह किया, आप ना पसीजिये;
उन सबको ही बहा दीजिये तुरन्त, मुझे-
पूर्ण रूप शुद्ध, निर्दोष बना दीजिये।।

मंत्र- एधोऽस्येधिषीय समिदसि समेधिषीय। तेजोऽसि तेजोमयि धेहि।।४।।

काव्यार्थ-

हैं आप बड़े, वैसे ही मैं भी बड़ा होऊं,
रखते प्रकाश आप, मैं भी प्रकाश बोऊं।
तेजस्वी आप अतुलित, हैं आप तेज धारी,
मुझमें भी तेज होवे, होऊं निहाल भारी।

सूक्त ९०

मंत्र- अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितम्। ओजो दास्यस्य दम्भय।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

लता लकडियों की हो ज्यों दीरध सूखी काय।
त्यों हिंसक का बल समझ काटो, देओ दबाय।।

मंत्र- वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजामहै। मम्लापयामि भ्रजः शिभ्रं वरूणस्य व्रतेन ते।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हम वैभवशाली महत् इस राजा के साथ।
इस रिपु के उस संकलित धन को लेवें बाट।।
हे रिपु! शत्रु निवारते राजा के व्रत हेत।
तेरी तमक ढिठाई को ले मैं मेटे देत।।

मंत्र- यथा शेपो अपायातै स्त्रीषु चासदनावयाः। अवस्थस्य क्रदीवतः शाङ्कुरस्य नितोदिनः पदाततमव तत्तनु यदुत्ततं नि तत्तनु।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हिंसा में वास करते जो शंका के जनक,
नित्य ही सताते उन्हें जो कि भले आप्त नर;
जैसे उनका पराक्रम मिट जावे, तथा-
क्रोधित हो स्तुत्य नारी उसे प्राप्त कर।
राजन! उसी प्रकार उनका जो बल फैला,
उसको तू विक्रम से पूर्ण रूप शान्त कर;
उनका जो कुछ ऊंचा फैला है सामर्थ्य, उसे-
पूर्ण रूप अधोमुख करके समाप्त कर।।

सूक्त ९१

मंत्र- इन्द्रः सुत्रामा स्ववां अवोभिः सुमृडीको भवतु, विश्ववेदाः। बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यमस्य पतयः स्याम।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

महनीय ऐश्वर्य को धारे हुए महीप।
सबका रक्षक बन बड़ा सबके रहे समीप।।
अतुल आत्मविश्वास ले धन को धार अनूप।
कहलाये रक्षाओं से अति सुखकारी भूप।।

हमें बनाये वह निडर वैरी देय भगाय।
हम शुभ धन, शुभ पराक्रम के स्वामी कहलाँय।।

सूक्त ६२

मंत्र- स सुत्रामा स्ववां इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु। तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

महा प्रतापी, अतिधनी रक्षा अलख जगाय।
निर्णय पूर्वक दूर तक शत्रु देय भगाय।।
हम उस पूज्य राजा की सुमति बीच ठहराय।
तद् उत्तम मन भावों के थिर वासी कहलाय।।

सूक्त ६३

मंत्र- इन्द्रेण मन्युना वयमभि ष्याम पृतन्यतः। घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

थाम शूर उत्साहमय सेनापति का हाथ।
हम सब युद्ध काल में रहकर उसके साथ।।
पापी दुष्ट शत्रु को दें बेरोक हनाय।
अरू ससैन्य जो आ चढ़े उनको देंय भगाय।।

सूक्त ६४

मंत्र- ध्रुवं ध्रुवेण हविषाव सोमं नयामसि। यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः संमनसस्करत्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वैभवमय दृढ़ राजा जो अरि से ले प्रतिकार।
हम निज आत्मदान संग करें उसे स्वीकार।।
जिससे वह अति प्रतापी राजा हम सब हेतु।
सेवा-भावी प्रजाओं को एक मना कर लेतु।।

सूक्त ६५

मंत्र- उदस्य श्यावौ विथुरौ गृधौ द्यामिव पेततुः। उच्छोचनप्रशोचनावस्योच्छोचनौ हृदः।।१।।

काव्यार्थ-

काम और क्रोध रूपी दो गतिशील गीध हैं,
जो भाव रूपी व्योम मे उड़ते हैं जीव के;
यह इसकी व्यथा को बढ़ाते तीव्र गति से,
लोभी बड़े भक्षक हैं ये जीवन की नींव के।
यह दोनों काम क्रोध इसका शोक बढ़ाते,
इसको सभी दिशाओं से प्रतिकाल सुखाते;
इसका हृदय भी दोनों ही सुखाते हैं, तथा-
आशा व निराशा के बीच डाल दुखाते।

मंत्र- अहमेनावुदातिष्ठिपं गावौ श्रान्तसदाविव। कुर्कुराविव कूजन्तावुदवन्तौ वृकाविव।।२।।

काव्यार्थ-

थक कर के बैठे हुए द्वय बैलों के समान,
या घुरघुराते भौंकते कुत्ते हों जिस तरह,
या घुस गये दो भेड़ियों से काम क्रोध को,
मैंने उठा दिया हृदय से दोनों को असह।

मंत्र- आतोदिनौ नितोदिनावथो सन्तोदिनावुत। अपि नह्याम्यस्य मेढ्रं य इतः स्त्री पुमांजभार।।३

काव्यार्थ-

सब ओर से सताते, नित सताते औं मिलकर-
अति ही सताते काम-क्रोध को मैं बांधता,
जिस स्त्री या पुरूष ने काम और क्रोध को,
स्वीकार किया, उसको कष्टों बीच पांगता ।

दोहा

पाप बन्धनों में जकड़ हन कर उसका चेत।
तत् प्रजनन सामर्थ्य मैं शक्ति-हीन कर देत।।

सूक्त ९६

मंत्र- असदन्गावः सदनेऽपप्तद्वसतिं वयः। आस्थाने पर्वता अस्थुः स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम्।।१।।

काव्यार्थ-

स्थिर सभी पर्वत हैं ज्यों अपने स्थान पर,
गौशाला बीच गौवें, पक्षी घोंसलों रैने;
वैसे ही काम क्रोध जो कि रोक डालते,
उनको स्व-स्थान बीच, है ठहरा दिया मैंने।

सूक्त ६७

मंत्र- यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्होतश्चिकित्वन्नवृणीमहीह। ध्रुवमयो ध्रुवमुता शविष्ठ प्रविद्वान्यज्ञमुप याहि सोमम्।।१।।

काव्यार्थ-

यह प्रयत्न साध्य अरू संगति योग्य कर्म हमारा,
जिसके लिए आज हमने शुभ वरण किया है तुम्हारा;
तुम सर्वोत्तम ज्ञानवान, बलवान, दानी कहलाओ,
इस कर्म के लिये धार दृढ़ता, अति दृढ़ता लाओ।

दोहा

पहले से ही ज्ञात है तुम्हें पूज्य यह कर्म।
वैभव लभो समीप से पालन कर यह धर्म।।

मंत्र- समिन्द्र नो मनसा नेष गोभिः सं सूरिभर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या। सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमतौ यज्ञियानाम्।।२।।

काव्यार्थ- **गीत**

हे किरण युक्त, ऐश्वर्यधारी, महा ज्ञानी,
कर्म-कुशल बनाओ, हमको प्रभो हमारे।।
विज्ञान, पुष्ट इन्द्रियों से युक्त करो हमको,
विद्वानों युक्त, कल्याण युक्त करो हमको;
विद्वानों का हितकारी शुभ ज्ञान दो सकारे।।
हम पूजनीय विद्वानों की सुमति में होवें,
उनकी सुमति में रहकर अज्ञान सारा धोवें;
हो कर्म- कुशल, तोड़ें नभ में जड़े सितारे।।

मंत्र- याना वह उशतो देव देवांस्तान्प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे। जक्षिवांसः पापिवांसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि।।३।।

काव्यार्थ-

अत्यनत ज्योतिमान विद्वान हे अध्यापक,
तुझको प्रजा के मार्ग-दर्शन के हेतु भेजा;
जिन श्रेष्ठ ज्ञान-जिज्ञासु विज्ञों को तू लाया,
अपने सभा-भवन में, बैठक में उन्हें लेजा;
हे विज्ञों! मधु-पदार्थ खाते व रस को पीते,
इस पुरूष हित प्रदानो शुभ-ज्ञान और तेजा।।

मंत्र- सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्म सवने मा जुषाणाः।
वहमाना भरमाणाः स्वा वसूनि वसूं धर्मं दिवमा रोहतानु।।४।।

काव्यार्थ-

निज ऐश्वर्य में हम सबको प्रसन्न करते,
आगत है श्रेष्ठ विज्ञों! हम लोगों के घर आओ;
हमने तुम्हारे हेतु, सुखदायी आसनों का,
निर्माण किया, इन पर आसीन हो सुख पाओ;
हमको स्वयं का श्रेष्ठ धन देते, पुष्ट करते,
दिन और कर्म बीच उन्नतियां करते जाओ।

मंत्र- यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ। स्वां योनिं गच्छ स्वाहा।।५।।

काव्यार्थ--

हे पूजनीय व्यक्ति पूजा को योग्य है तू,
अपने व्यवहार को भी तू पूजनीय कर ले;
तू पूजनीय कर्म व्यवहार का सुपालक,
उत्तम पुरूष का साथ करता हुआ विचर ले;
शुभ श्रेष्ठ वेद-वाणी का साथ नित्य करता,
अपना स्वभाव वेदानुसार श्रेष्ठ करले;
मानव-धर्म के सारे कर्तव्य को निभा तू,
वेदानुसार अपने स्वभाव को संवर ले।।

मंत्र- एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः। सुवीर्यःस्वाहा।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पूजनीय व्यवहार के पालक हे नर श्रेष्ठ।
कर्मों की प्रेरक बना वैदिक वाणी ज्येष्ठ।।

हितू वेद-उपदेश कर कर्म हेतु स्वीकार।
उससे विक्रम युक्त कर अपने सब व्यवहार।।

मंत्र- वषड्ढुतेभ्यो वषडूहुतेभ्यः। देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमित।।७।।

काव्यार्थ-

माता-पिता आदि जो अग्रज रहे हैं, उनसे-
पाये पदार्थों हित हो सर्वदा समर्पण।
उनसे न मिले हें जो, अपने ही परिश्रम से-
पाये पदार्थों हित हो सर्वदा समर्पण।
पृथिवी के सुज्ञाता, हे वीरों विजय कामी,
तुम अपना प्राप्त पथ चल, भूपति बनो सुनामी।

मंत्र- मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञमृ। स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिवव्या स्वाहान्तरिक्षे स्वाह वाते धां स्वाहा।।८।।

काव्यार्थ-

मानव हे मन के स्वामी! संगतिकरण विस्तरण-
को कर द्यु के दिव्य पदार्थों बीच धारण।
सुन्दर सुवाणि साथ कर सूर्य बीच धारण,
पृथिवी में धार करके शुभ वाणी का प्रसारण।
आकाश बीच धार बन वाणी का सु-चारण,
वायु में धार वाणी से अंध कर विदारण।

दोहा

सूर्य, पृथिवी, व्योम अरू वायु का विज्ञान।
पाकर मानव जाति का कर उपकार महान्।।

सूक्त ९८

मंत्र- सं बर्हिरक्त हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरूद्भिः। सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

ग्रहण व सेचन से ठीक से संभाला जिन्हे;
ऐश्वर्य, धन जिन्हें ठीक से संभालते;

जिनको कि तत्वदर्शी अतीव विद्वान,
जगत हितार्थ रखाते सदा खांगालते।
सुधरे हुए वृद्धि कर्म और सब प्रकाशमान-
शुभ गुण जिन्हें ठीक रखाना न टालते,
ऐसे ग्राह्य पदार्थ, यशवान जन पास,
शुभ वेद वाणी साथ जांय उमगाहते।।

सूक्त ९९

मंत्र- परि स्तृणीहि परि धेहि वेदिं मा जामिं मोषीरमुया शयानाम्। होतृषदनं हरितं हिरण्ययं निष्का एते यजमानस्य लोके।।१।।

काव्यार्थ-

हे विज्ञ! तू सब ओर से विद्या प्रसार कर,
अरू उसको परिपुष्ट तू भली प्रकार कर;
विद्या के साथ वर्तमान उसकी गति को,
रोके बिना, गतिमान बनाकर प्रचार कर।
सोने भरा, हरा-भरा घर विद्या-दानी का,
रहता सदा ही, अंधकार पर प्रहार कर,
सब स्वर्ण अलंकार उनके घर रहा करते,
पाते प्रसन्नता जो विज्ञों का सत्कार कर;

सूक्त १००

मंत्र- पर्यावर्ते दुःष्वप्नयात्पापात्सवप्न्यादभूत्याः। ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पाप कुनिद्रा में उठे, उठे स्वप्न के बीच।
उनकी निर्धनता को मैं देता शीघ्र उलीच।।
अपने अन्दर ईश को करता मैं लवलीन।
तथा दुःस्वप्न जनित दुःख दूर हटाता बीन।।

सूक्त १०१

मंत्र- यत्स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते। सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् दृश्यते दिवा।।१।।

काव्यार्थ-

जिस अन्न का मैं स्वप्न बीच करता भोग हूं,
वह अन्न प्रातः काल प्राप्त होता नहीं है;
मेरे लिये वह सब सदा कल्याण- दा होवे,
वह दिन में दृश्यता की शक्ति बोता नहीं है।

सूक्त १०२

मंत्र- नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे। मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन्मा मा हिंसिषुरीश्वरा।।१।।

काव्यार्थ-

द्यु लोक, पृथिवीलोक, अन्तरिक्ष लोक को,
अरू मृत्यु को आदर के साथ करता नमन हूं;
इनका मैं ऊंचा खड़ा हो निरीक्षण करता,
मुझको न विनाशे कोई बलवान कबन हू।

सूक्त १०३

मंत्र- को अस्या नो द्रुहोवद्यवत्या उन्नेष्यति क्षत्रियों वस्य इच्छन्। को यज्ञकामः क उ पूर्तिकामः को देवेषु वनुते दीर्घमायुः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सकल प्रजा को पलता हो क्षत्रिय जो कोय।
वह प्रजार्थ धन-वृद्धि की रक्षा करता होय।।
प्रजा मध्य आपस में जो उपजे द्रोह रूप।
उस दुर्गति से उठाए रहे प्रजा को भूप।।
प्रजा का पालक चाहता पूजनीय व्यवहार।
वही प्रजा को पूर्णता का है देवनहार।।
प्रजा का पालक स्वयं बन उत्तम गुण की खान।
करता अपनी प्रजा को दीर्घायुष्य प्रदान।।

सूक्त १०४

मंत्र- कः पृश्नि धेनु वरूणेन दत्तामथर्वणे सुदुधां नित्यवत्साम्। बृहस्पतिना सख्यं जुषाणो यथावशं तन्वः कल्पयाति।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्रजा पालता मनुष्य, नित्य लोकपति प्रभु-
साथ निज तन-मित्रता को वरता रहे,
अरू जो कि सर्वदा ही प्रश्न करने के योग्य
ऐसी वेदवाणी को समर्थ करतारहे।
अत्यन्त पूरण जो करती, जिसे कि प्रभु,
स्थिर स्वभाव जन बीच धरता रहे,
जो कि नित्य उपदेश देती, कल्याणी बड़ी,
वाणी-पतवार ले, तराता तरता रहे।।

सूक्त १०५

मंत्र- अपक्रमन्पौरूषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः। प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तज कर जन-सामान्य के कर्म जो हैं करणीय।
कर सदैव प्रभु-वचनों में कहे कर्म वरणीय।।
उत्तम नीति नियमों का प्रभु प्रदत्त शुभ पाथ।
तत् अनुकूल आचरण कर मित्रों के साथ।।

सूक्त १०६

मंत्र- यदस्मृति चकृम किं चिदग्न उपारिमं चरणेजातवेदाः। ततः पाहित्‍वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतवमस्तु नः।।१।।

काव्यार्थ-

प्रभु देव सर्वव्यापक! हम उन पर बड़े लज्जित,
दुष्कर्म किये जो भी हमने बिना विचारे।।
उत्तम पदार्थों के हे जानने वाले प्रभु,
हमने स्व-आचरण में जो किया अपराध;
बन करके खिवैया उन सबको कर किनारे।।
प्रभुदेव सर्वज्ञाता! प्रभुवर महान् विद्वान्,
निष्पाप, सच्चरित्र जन पर दया की खान;
शुभ-मार्ग में मित्रों को अमरत्व तू दिला दे।।

सूक्त १०७

मंत्र- अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः। आपः समुदिया धरास्तास्ते शल्यमसिस्रसन्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

किरणें नभ के सूर्य की विचरण करतीं सात।
वह समुद्र जलधारों को द्यु से नीचे लात।।
जल-धाराऐं मेघ रच वर्षा झड़ी लगाय।
दुर्भिक्ष आदि क्लेशों को देतीं दूर भगाय।।

सूक्त १०८

मंत्र- यो नस्तायद्दिप्सति यो न आविः स्वो विद्वानरणो वा नो अग्ने। प्रतीच्येत्वरणी दत्वती तान्मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम्।।१।।

काव्यार्थ-

राजन्! जो सताना हमें चाहें छिपे छिपे,
अथवा सताना चाहें जो हमको खुले खुले;
वह चाहे अपना ही सगा विद्वान हो, अथवा-
परकीय क्यों न हो, जो प्राण लेने को तुले।
उस पर चढ़ाई करता अस्त्र-शस्त्र से सज्जित-
वर सैनिकों का दल तुरन्त युद्ध को रचे,
ऐसी मचावे मार-काट सर्व दिशि राजन्!
इनका न तो धर और न बालक कोई बचे।

मंत्र- यो नः सुप्तांचजाग्रतो वाभिदासात्तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः। वैश्वानरेण सयुजा सजोषास्तान्प्रतीचो निर्दह जातवेदः।।२।।

काव्यार्थ-

अति ही प्रसिद्ध ज्ञानी हे राजन्। कोई हमें-
सोते हुए या जागते यदि मारना चाहे;
अथवा वह चाहे मारना ठहरे पर हमारे,
या नाशना चाहे हमारे चलने के माहे।
सबके हितू समान मित्र ईश के साथ,
अति प्रीति करने वाले भूप! युद्ध तू रचे;

अरू चलते जो प्रतिकूल हमारे उन्हें सतत,
कर दे तू भस्मीभूत, कोई शेष ना बचे।

सूक्त १०६

मंत्र- इदमुग्राय बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी। घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृणातीदृशे।।१।।

काव्यार्थ-

तेजस्वी और पोषक प्रभुवर को यह नमन है,
करता है तन नियंत्रित कर्मों में वह हमारे।
मैं ज्योति साथ गिनने वाले परम पिता को,
नित सीख उपासन से चलता उसे बुलाने।
तन मन से शुद्ध होकर रहता हूं परोपकारी,
वह हमको ऐसे उत्तम कर्मों में सुख प्रदाने।

मंत्र- घृत मप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च। यथाभागं हव्यदातिं जुषाणां मदन्ति देवा उभयानि हव्या।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

नर की व्यापक शक्ति हित कार्य-सिद्धि हितार्थ।
हे विद्वान् पुरूष! तू सतत कर्म कर सार्थ।।
भू विद्या, जल-विद्या के द्वारा जगत् हितार्थ।
तू भू-थल, जल-थलों से पहुंचा सार पदार्थ।।
ग्राह्य पदार्थ दान कर फिर सेवन कर लोग-
पूर्ण ग्राह्य पदार्थों का करते हैं भोग।।

मंत्र- अप्सरसः सदमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च। ता मे हस्तौ सं सृजनतु घृतेन सपत्नं म कितवं रन्धयन्तु।।३।।

काव्यार्थ-

भूमि तथा सूर्य सब ग्राह्य पदारथ के आधार रहे,
तथा वायु जल आदि आकाशीय शक्ति को बैठार रहे।
शक्ति स्वकर्मों के करने में अत्यन्त सशक्त रही,
यह शक्तियां परस्पर करती आनन्द अभिव्यक्त रहीं।

सार पदारथ से भू सूर्य हाथ मेरे संयुक्त करें,
अरू कर नष्ट जुआरी शत्रु, तत् पीड़ा से मुक्त करें।

मंत्र- आदिनवं प्रतिदीव्ने घृतेनास्मां अभि क्षर। वृक्षमिवाशन्या जहि यो अस्मान्प्रतिदीव्यति।।४।।

काव्यार्थ-

प्रभु तू विपक्षी के विनाश हित, प्रकाश संग-
हमारे पर सु-स्तुति के बोध को छिड़क,
हमसे अति प्रतिकूल जो व्यवहार है करता,
उसको तू मार, वृक्ष को ज्यों बिजलियां तिड़क।

मंत्र- यो नो द्युवे धनमिदं चकार यो अक्षाणं ग्लहनं शेषणं च। स नो देवो हविरिदं जुषाणो गन्धर्वेभिः सधमादं मदेम।।५।।

काव्यार्थ-

हम सबही के आनन्द को धन जिसने बनाया ,
जिसने ग्रहण, विशेषीकरण कर्म है किया;
स्वीकारे वह प्रभू हमारे भक्ति-दान को,
विद्या-धरों संग मिल करे आनन्दमय हिया।

मंत्र- संवसव इति वो नामधेयमुग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्यक्षाः तेभ्यो व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम्।।६।।

काव्यार्थ-

विज्ञों 'परस्पर मिलकर रहने वाले' नाम तव,
सम्यक् धनों के धारने वाले भी कहाते;
तुम तेजमय हो, राज्य के पोषक बड़े भारी,
व्यवहार कुशल हो, बड़ा ऐश्वर्य गहाते।
ऐसे तुम्हें हम आत्म बल से पूजते रहें,
होकर विपुल धनों के स्वामी कूजते रहे।

मंत्र- देवान्यन्नाधितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदूषिम्। अक्षान्यद् बभ्रूनालभे ते नो मृडन्त्वीदृशे।।७।।

काव्यार्थ-

जिस कर्म से मैं प्रार्थी, विज्ञों को बुलाता,
जिस कर्म से ब्रह्मचर्य में होता निवास है;

व्यवहार पालनीय ग्रहण करता हूं जिससे,
सुख देवें विज्ञ ऐसे कर्म के विकास से।

सूक्त ११०

मंत्र- अग्न इन्द्रश्च दाशुषे हतो वृत्राण्यप्रति। उभा हि वृत्रहन्तमा।।१।।

काव्यार्थ-

वैभव भरे राजा, सतेज मंत्री आप द्वय-
बाधाओं के अत्यन्त नाश-कर्ता कहाते;
दानी प्रजा हितार्थ आप दोनों ही मिलकर,
बेरोक-टोक उनके सब व्यवधान हटाते।

मंत्र- याभ्यामजयन्त्स्व१रग्र एव यावतस्थतुर्भुवनानि विश्वा। प्रचर्षणी वृष्णा वज्रबाहू अग्निमिन्द्रं वृत्रहणाहुवेऽहम्।।२।।

काव्यार्थ-

सुखदाता, परोपकारी जिन राजा व मंत्री से-
पहले महात्माओं ने सुख प्राप्त किये हैं;
जो शीघ्रगामी औ अतीव शूर वीर है,
जो दोनों सभी प्राणियों में ठहर लिये हैं;
उन दोनों को बुलाता हूं मैं बाधा नाशने,
उन दोनों ही ने विघ्न सभी नाश दिये हैं।

मंत्र- उप त्वा देवो अग्रभीच्चमसेन बृहस्पतिः। इन्द्र गीर्भिर्न आ विश यजमानाय सुन्वते।।३।।

काव्यार्थ-

हे राजा! लोकपति दिव्य ईश ने तुझे,
दे अन्न सहारा दिया, न त्यागा लेश भर;
सामर्थ्य से उसके तू धर्मात्माओं की-
भरपूर कर सहायता, स्तुतियां पेश कर;
तू योग औ वियोग कर्ता, तत्व वेत्ता-
अति श्रेष्ठ पुरूष के लिये, हममें प्रवेश कर।

सूक्त १११

मंत्र- इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधान आत्मा देवानामुत मानुषाणाम्। इह प्रजा जनय यास्त आसु या अन्यत्रेह तास्ते रमन्ताम्।।१।।

काव्यार्थ-

परमेश्वर्य धारने वाले परमपिता,
देवों, नरों का आत्मा, तू सोम का धारक;
उत्पन्न कर ऐसी प्रजाओं को तू यहां पर,
जो तेरी प्रजा बीच बनें शांति प्रसारक;
अन्यत्र भी निवास करती हों जो प्रजाएं,
वह होवें यहां सब तेरे आदेश की पालक।

सूक्त ११२

मंत्र- शुम्भनो द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते। आपः सप्तसुस्रुनुर्देवीस्ता नो मुंचन्त्वंहसः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

शोभित द्यु, भूलोक यह निज पथ नियमित चाल।
निज गति से सुख को झरें प्रभु नियमों को पाल।।
दिव्य गुणी सप्त इन्द्रियां हमें हुई जो प्राप्त।
नियमों में रहती हुईं दुःखड़े करें समाप्त।।

मंत्र- मुंचन्तु मा शपथ्या ३दथो वरूण्यादुत। अथो यमस्य पड्वीशाद्विश्वस्माद्देवाकिल्विषात्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

श्रेष्ठ गुणी सप्त इन्द्रियां निज में संयम धार।
श्रेष्ठों में अपराध अरू दें मम शाप निवार।।
न्यायकारी राजा का वज्र दण्ड प्रयुक्त।
अरू प्रभु-प्रति अपराध से कर दे मुझको मुक्त।।

सूक्त ११३

मंत्र -तृष्टिके तृष्टवन्दन उदमूं छिन्धि तृष्टिके। यथा कृतदिष्टासोऽमुष्मै शेप्यावते।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे कुत्सित तृष्णा! अहे लोलुपता की बेल।
पीड़ा को तू काट दे उसको दूर धकेल।।

टिकती लालच बीच तू उस उपाय को खोल।
जिससे ईष्या द्वेष हन पुरूष करे अनमोल।।

मंत्र- तृष्टासि तृष्टिका विषा विषातक्यऽसि। परिवृक्ता यथासस्यृषभ्रस्य वशेव।।२।।

काव्यार्थ-

हे तृष्णा! लोभ में तू टिकने वाली भावना,
अपने विषैले विष से सब सुखों को तोड़ दे;
वैसा किया जावे कि तू परित्यक्ता हो जावे,
घर तक न जाये, नर तेरे पावों को मोड़ दे;
सेनापति ज्यों युद्ध में शरणागत हुई-
अपने रिपु की सेना दया करके छोड़ दे।

सूक्त ११४

मंत्र- आ ते ददे वक्षणाभ्य आ तेऽहं हृदयाद्ददे। आ ते मुखस्य शंकाशात्सर्वं ते वर्च आ ददे।।१।।

काव्यार्थ-

हे शत्रु। मैंने बल तेरी छाती से ले लिया,
अरू तेरे हृदय से भी बल को ले लिया मैंने;
तेरे सुमुख के पास से तव तेज लिया सब,
गरदन न उठा पाए तू, झुका चले नैने।

मंत्र- प्रेतो यनतु व्याध्यः प्रानुध्याः प्रो अशस्तयः। अग्नी रक्षस्विनीर्हन्तु सामो हनतु दुरस्यतीः।।२।।

काव्यार्थ-

सब रोग, यहां से चले जायें, सभी अनुताप-
अपकीर्तियां रहें नहीं, बाहर चली जायें;
तेजस्वी राजा द्वारा राक्षसों से युत सेना-
अरू दुष्ट प्रजायें सदैव मृत्यु को पायें।

सूक्त ११५

मंत्र- प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः यत। अयस्मयेनअंकेन द्विषते त्वा सजामसि।।१।।

काव्यार्थ-

हे पापमय लक्ष्मी! यहां से दूर जा,
छिप जा यहां से, और वहां से भी तू हट जा;
हम तुझको लौह काँटें से चिपकाते द्वेषी मे,
तू उसके ही वस्त्रों से, उसके तन से लिपट जा।

मंत्र- या मा लक्ष्मी पतयालूरजुष्टामिचस्कन्द वनदनेव वृक्षम्। अन्य त्रास्मत्सवितस्ताभितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः।।२।।

काव्यार्थ-

सेवन के अयोग्य, गिराने वाली लक्ष्मी,
मेरे पर चढ़ गयी, चढ़े ज्यों बेल वृक्ष पर,
परमेश! यहां से तू उसे दूर रख कहीं,
रख पूत स्वर्ण धन सदा हमारे कक्ष पर।

मंत्र- एकशतं लक्ष्म्यो३मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषोऽधि जाताः। तासां पापिष्ठा निरितः प्रहिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

एक सौ एक लक्षण, लिये शुभ अरू अशुभ की गाथ।
जो उपजे हैं जनम से ही नर-तन के साथ।।
पापी लक्षण जो चलें नित ही टेढ़ी चाल।
दृढ़ निश्चय से हम उन्हें द्रुत ही देत निकाल।।
ज्ञाता जनित पदार्थों के है प्रभो महान्।
हमें नियम से मांगलिक लक्षण करो प्रदान।।

मंत्र- एता एनाव्याकरं खिले गा विश्ठिताइव। रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम्।।४।।

काव्यार्थ- दोहा

यह शुभ लक्षण जो मनुज जीवन सुखी बनाय।
तथा अशुभ लक्षण दुखद मैंने दिये बताय।।
जैसे चराऊ भूमि पर बैठा करतीं गाय।
वैसे शुभ कर थिर, अशुभ मैंने दिये मिटाय।।

सूक्त ११६

मंत्र- नमो रूराय च्यवनाय चोदनाय घृष्णवे। नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने।।१।।

काव्यार्थ-

जो ज्वर है दाह का जनक, जो देता तन हिला,
वह ज्वर जो है भड़काता, डराता जो घूरते;
जो पूर्व अवस्था को काटता है, और जो-
लग शीत के आता है, नमस्कार दूर से।

मंत्र- यो अन्येद्युरुभयधरुरभ्ययतीमं मण्डूकमभ्येत्वव्रतः।।२।।

काव्यार्थ--

एकान्तरा चढ़ता, जो ज्वर दो अन्तरा चढ़ता,
अथवा जो नियम छोड़ आता, व्यक्ति को दहता,
वह उस पुरूष पर जा चढ़े, बेचैन बनाये,
जो नित्य ही मेंढक समान टर्राता रहता।

सूक्त ११७

मंत्र- आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः। मा त्वा के चिद्वि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव तां इहि।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

राजन! होवे मोर के पंखों सा स्पर्श।
ऐसी पूंछ के घोड़ो संग तू आकर दे दर्श।।
चिड़ीमार ज्यों जाल से पक्षी पकड़ता होय।
राजन! तद्भांति तुझे पकड़ न पायें कोय।।
रेतीले स्थान पर चलते व्यक्ति समान।
तू अपने खल शत्रुओं ऊपर हो गतिमान।।

सूक्त ११८

मंत्र- मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजा मतेनानु वस्ताम्। उरोवरायो वरूणस्ते कृणोतु जयन्तंत्वानु देवा मदन्तु।।१।।

काव्यार्थ-

हे शूर! मैं सेनापति तव मर्मथलों को-
ढकता हूं कवच द्वारा न वे निज को कटावें;
ऐश्वर्यवान् राजा तुझको मृत्यु निवारक-
अस्त्र और शस्त्र से ढके, उत्साह जगावें;
थल देवें बड़े से भी बड़ा पथ के प्रदर्शक,
तुझ वीर को वह मोद-पाग बीच पगावें;
हे विजयी शूर! विजय को जो लोग चाहते,
वह तुझको देख मोद से जयकार लगावें।

काण्ड ८

सूक्त १

मंत्र- अन्तकाय मृत्येव नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् इहायमस्तु पुरूषः सहासुना सर्यस्य भागे अमृतस्य लोके।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो प्रभु करता मनोहर अरू देता है चेतु।
उस प्रभुवर को नमन हो मृत्यु नाश के हेतु।।
हे नर! सर्वश्रेष्ठ अरू सब सद्गुण की खान।
इस प्रभु में नित ही रमे तेरे प्राण अपान।।
परमैश्वर्य धारता जग-चालक प्रभु-देव।
श्रेष्ठ जनों को मोक्षपद देना उसकी टेव।।
इस जग में यह श्रेष्ठ नर निज बुद्धि के साथ।
उसी मोक्ष पद में रहे चल वेदों का पाथ।।

मंत्र- उदेनं भगो अग्रभीदुदेनें सोमो अंशुमानं। उदेनं मरूतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

इस मेधावान्, विज्ञान वान व्यक्ति को,
उच्च स्थान है बिठाया सूर्य-देव ने;
सम्मान करते बिठाया इसे उच्च-पद,
श्रेष्ठ किरणों के धारी चन्द्रमा स्वमेवने।
इसको बिठाया उन्नति के अति उच्चशृंग,
दिव्य वायु गणों रही हितकारी टेव ने;
विद्युत व अग्नि ने बिठाया इसको सदैव,
उच्च स्थान, कल्याण-सर खोवने।।

मंत्र- इह तेऽ सुरिह प्राणा इहायुरिह ते मनः। उत्तवा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

इस परमेश्वर में हो तेरी बुद्धि थिर,
तेरे प्राण इसमें सदैव थिरता गहें;
इसमें ही अचल हो जीवन समस्त, रहे-
मन इसमें ही, नहीं रंच फिरता रहे।
हम तुझे दिव्य वेद-वाणी से उठाते हैं, तू-
इस वेद-वाणी से सदैव धिरता रहे;
तुझको अविद्या-रूपी पाशों से छुड़ातें हैं, तू-
ज्ञान-सर बीच नित्य-नित्य तिरता रहे।।

मंत्र- उत्क्रामातः पुरूष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुंचमानः। मच्छित्था अस्माल्लो कादग्नेः सूर्यस्य सन्दृशः।।४।।

काव्यार्थ- **प्रेरणा गीत**

पुरूषार्थी बन हे पुरूष! पुरूषार्थ किये चल।।
तू वर्तमान स्थिति से अग्र पग बढ़ा,
नीचे नहीं गिर, अपने को ऊपर ही तू चढ़ा,
पाएगा शीघ्र लक्ष्य को, तुझमें है तेज बल।।

प्रभु सर्वशक्तिमान से अपने को तू जुडा,
अरू मृत्यु की बेड़ी से अपने आप को छुड़ा,
खुशियों के साथ भोग दीर्ध आयु के सुफल।।
नर-श्रेष्ठ! स्वप्न में भी तू नर लोक सरस से,
अग जग में बसी अग्नि से अरू सूर्य-दरस से;
अपने को दूर करता हुआ, हाथ नहीं मल।।

मंत्र- तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः। सूर्यस्ते तन्वे३शं तपाति त्वामृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः।।५।।

काव्यार्थ-

वह वायु जो कि अन्तरिक्ष बीच में रहे,
तेरे लिये पवित्रता को धारती बहे,
बरसा करे जल-धार भी, अमृत लिये प्रतिपल।।
तेरे लिये नित सूर्य शांति से तपा करे,
मृत्यु न रूष्ट होवे दया को जपा करे,
कर दीर्घ आयु प्राप्त, कभी हो नहीं विकल।।

मंत्र- उद्यानं ते पुरूष नावथानं जीवांतु ते दक्षतातिं कृणोमि। आ हि रोहेमम मृतं सुखं रथमय जिर्विविदथमा वदासि।।६।।

काव्यार्थ-

हे पुरूष तेरी उन्नति की ओर ही गति हो,
अवनति दिशा में तेरी किंचित नहीं मति हो;
इससे सुदीर्ध जीवन की प्राप्ति हेतु तुझको,
करता हूं मैं बलशाली, तेरी नहीं क्षति हो।
अमरत्व के प्रदाता, सुखकर शरीर-रथ पर,
आरूढ़ हो तथा लभ सुन्दर सुदीर्ध जीवन;
स्तुति के योग्य होकर, तू दूसरों को योग्य-
उपदेश में समर्थ होकर बना सुखी मन।

मंत्र- मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भूम्ना जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितृन्। विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह।।७।।

काव्यार्थ-

जाए न उस अधर्म, कुमार्ग पर तेरा मन,
अरू उसमें भूलकर भी न हो लीन एक भी क्षण;
सब जीवों के विषय में कर्तव्य जो तेरा है,
उसको निभा तू, आये प्रमाद को सदा हन!
माता-पिता व विज्ञ आदि जो पितर जन हैं,
उनसे कभी भी न्यून होकर के तू नहीं चल;
अरू तन के बीच तेरी जो स्वस्थ इन्द्रियां हैं,
वह रक्षा करें तेरी, त्यागें न एक भी पल।

मंत्र- मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम्। आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे।।८।।

काव्यार्थ-

ले जाते धर्म से हैं जो दूर मनुष्यों को,
तू फंस कभी न ऐसे कुमार्गियों के मत में;
तज अंध, ज्योंति पर हो आरूढ़, हाथ तेरा-
हम थामते हैं, तेरे इस कार्य महत् में।

मंत्र- श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ। अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मना।।९।।

काव्यार्थ-

तुझको न त्यागे चलता प्राण, अपान जाता,
यह दोनों मार्ग-रक्षक कुत्तों समान तन में;
इनको नियंत नर के रक्षण के हेतु भेजा,
दोनों ही सावधान रहते प्रत्येक क्षण में,
तू आ समीप, मत कर किंचित विरूद्ध क्रीड़ा,
अरू मत ठहर यहां पर होकर उदास मन में।

मंत्र- मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पर्वं नेयथ तं ब्रवीमि। तम एतत्पुरूष मा प्रा पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक्।।१०।।

काव्यार्थ-

तू इस अधर्म पथ पर किंचित कभी नहीं चल,
यह है बहुत भयानक, इसमें भरा अनय है;
पहले नहीं गया है तू इस अधर्म पथ से,
इस हेतु इसका वर्णन करना मेरा विषय है;
हे मननशील मानव! यह है अंधेरा मारग,
इस पर न पैर रख, यह कंटक भरा अदय है;
विपरीत धर्म मारग, अधर्म मार्ग की दिशि-
भय है, परन्तु धर्म मारग सदा अभय है।

**मंत्र- रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्व१न्ता रक्षतु त्वा मनुष्या३ यमिन्धते।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग्विद्युता सह।।११।।**

काव्यार्थ-

जो अग्नियां जलों में है, वह करें सुरक्षा,
जिस अग्नि को जलाते, वह रक्षणा दिखावे;
जो सब नरों में रहती, ज्ञान और धन को जनती,
वह अग्नि करे रक्षा, सुख राशियां दिलावे;
जो सर्वदा ही रहती विद्युत् के साथ है, वह-
द्यु लोक वासी अग्नि तुझको नहीं जलावे।

मंत्र- मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात्संकसुकाच्चर। रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षता चन्द्रमाश्च। अन्तरिक्षं देवहेत्याः।।१२।।

काव्यार्थ-

कोई भी मांस-भक्षक तेरा नहीं करे वध,
नाशक से चल सदैव हो दूर-दूर न्यारा;
द्यु लोक तुझको रक्षे, पृथिवी तुझे सुरक्षे,
सूर्य व चन्द्रमा भी रक्षा करे अपारा;

दैवी आघात से अरू इन्द्रिय आघात से तव-
रक्षा सदैव करता हो अन्तरिक्ष प्यारा।

मंत्र- वेधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम्। गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम्।।१३।।

काव्यार्थ-

ज्ञान तथा विज्ञान रक्षा तेरी करता हो,
सोता जो, भागता जो रक्षा तेरी करता हो;
जो चौकसी करता हो, जो जागता रहता हो,
वह तेरी रक्षा करता हो, रंच न टरता हो।

मंत्र- ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायनतुतेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा।।१४।।

काव्यार्थ-

रक्षा करें वे तेरी, पालन करें वे तेरा,
उनको नमन, उन्हीं को सुन्दर वचन है मेरा।

(नोट- वे अर्थात् मंत्र ११ से मंत्र १३ तक में वर्णित सभी)

मंत्र- जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः। मा त्वा प्राणों बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि।।१५।।

काव्यार्थ-

हे व्यक्ति! वायु, मेघ अरू सूर्य जगत् पालक-
पोषक व सर्व-प्रेरक, चलता जो अंध हरते;
यह सब के सब ही तुझसे जीवों की भलाई अरू-
उत्तमता हेतु तुझमें बहु पुष्टि रहें धरते;
तव प्राण बल न छोडे, तव उन्नति के कारण-
हम तेरी बुद्धि पावन विकसित सदैव करते।

मंत्र- मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वः बर्हि प्रमयुः कथा स्याः। उत्तवादित्या वसावो भरन्तूर्दिन्द्राग्नी स्वस्तये।।१६।।

काव्यार्थ-

छाये नहीं कभी भी अंधियार तेरे ऊपर,
अरू पास तक न पहुंचे घातक तथा विनाशक;
तव श्रवण-पथ में आवे कटु शब्द ना किसी के,
तू नाश को न पाये बनकर के यज्ञ नायक;
श्रेष्ठ पदार्थ अरू विज्ञ उन्नति दिलायें,
मेघ और अग्नि तेरी उन्नति में हों सहायक।

मंत्र- उत्वा द्यौरूत्पृथिव्युत्प्रजापतिरग्रभीत्। उत्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन्।।१७।।

काव्यार्थ-

तुमको उठाया द्यु ने ऊपर को और भू ने-
ऊपर उठाकर तुमको ऊंचाइयों में डाला,
तुमको प्रजा के पालक जन-जन हितू प्रभु ने,
सन्मार्ग को दिखाते ऊंचाइयों में ढाला;
औषधियां ऐसी जिनका राजा रहा है सोम,
तुमको उन्होंने मृत्यु से अलग करके पाला।

मंत्र- अयं देवा इहैवास्त्वथं मामुत्र गादितः। इमं सहस्रवीर्येण मृत्युरूत्पारयामसि।।१८।।

काव्यार्थ--

हे विजयकामी पुरूषों! यह शूर यहां पर ही-
धर्मात्माओं में हो, हम भावना लाते हैं;
जावे नहीं यहां के सज्जन समाज से यह-
दुष्टों में वहां के, जो हम सबको सताते हैं;
इसके असंख्य सामर्थ्यो साथ इसे दुःख अरू-
दारिद्रय से भली विधि हम पार लगाते हैं।

मंत्र- उत्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः। मा त्वा व्यस्तकेश्योऽमा त्वाघरूदो रूदन्।।१९।।

काव्यार्थ-

हे पुरूष! मैंने तुझको मृत्यु से बचाया है,
धारक पदार्थ तेरे बहु पुष्टियां बुलावें;
तुझको प्रकाश से च्युत कर देने वाले पाप,
विपत्तियां कभी भी किंचित नहीं रूलावे।

मंत्र- आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः। सर्वांग सर्वंते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम्।।२०।।

काव्यार्थ-

अति श्रेष्ठ हे मनुष्य! मुझ गुरू ने तुझको पाया,
तुझको ग्रहण किया अरू बुद्धि तेरी बनायी;
सब विद्या-अंगों युत् तू मम ज्ञान-दान द्वारा,
फिर से नवीन होकर, देता पुनः दिखायी;
तेरे लिये ही पाया दर्शन-सामर्थ्य सारा,
आयु सकल भी मैंने तेरे लिये ही पायी।

मंत्र- व्यावात्ते ज्योतिरभूदप त्वत्तमो अक्रमीत। अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि।।२१।।

काव्यार्थ-

प्रस्थान किया अंध ने, दूर वह गया है,
चहुं ओर तेरे फैला आलोक, जो नया है;
हम तुझसे मृत्यु, दुर्गति, रोगों को दूर करते,
इस भांति तू निरोगी, दीर्घायु हो गया है।

सूक्त २

मंत्र- आरभस्वेमाममृतस्य इनुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते। असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तू स्वीकार प्राप्ति इस अमृत की है जेतु।
अविच्छिन्न स्तुतियों की व्याप्ति रहे तव हेतु।।
तुझमें जीवन बुद्धि तव पुनः देत बैठाल।
मत जा रज, तम पास तू पीड़ा को मत पाल।।

**मंत्र- जीवतांज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय।
अवमुंचन्मृत्युपाशानशस्ति द्राधीय आयुः प्रतरं ते दधामि।।२।।**

काव्यार्थ- **दोहा**

ज्योति जीवित नरों की सम्मुख हो बैठार।
शत शरदीय आयु हित तुझे करूं स्वीकार।।
मैं तव हेतु हटाता मृत्युपाश, अपकीर्ति।
अरू शुभ जीवन, आयु शुभ पुष्ट करूं शुभ रीति।।

**मंत्र- वातात्ते प्रापमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव। यत्ते मनस्तवयि तद्धारयामि
सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्यालपन्।।३।।**

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! तुझको वायु से करता प्राण प्रदान।
तथा सूर्य से दृष्टि का करता हूं मैं दान।।
मैं तेरे मन को करूँ स्थिर तेरे बीच।
तू सर्वांगपुष्ट कर वाणी मधु से सींच।।

**मंत्र- प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम।।४।।**

काव्यार्थ- **दोहा**

अब ही जन्मी अग्नि की ज्वाला करने तेज।
थोड़ी-थोडी वायु को देते उस पर भेज।।
वैसे ही भू के द्विपद तथा चतुष्पद जीव।।
के प्राणों से मैं तुझे दीपित करूं अतीव।।

हे मृत्यु! तव दृष्टि को नमन झुका कर माथ।
तथा प्राण को है नमन मेरा आदर साथ।।

मंत्र- अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि। कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरूषं वर्धाः।।५।।

काव्यार्थ- दोहा

हमसे यह नर वायु सम गमन शक्तियां लाय।
अब यह जीवित ही रहे शीघ्र न मृत्यु पाय।।
मैं इस नर को औषधि देता हूं शुभकार।
अब हे मृत्यु! इस पुरूष को तू कभी न मार।।

मंत्र- जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम्। त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेऽस्माअरिष्टतातये।।६।।

काव्यार्थ- दोहा

कभी न हानि को करे दीरध जीवन देय।
आयुष्य को बढ़ाकर रक्षाओं को लेय।।
इन नर के कल्याण को यह शुभ औषध वेद।
इसकी आत्मा में बुला कलुष देत हूं भेद।।

मंत्र- अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तबैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु। भवाशर्वो मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः।।७।।

काव्यार्थ- दोहा

मृत्यु सम हे विपद! भर साहस इस नर माह।
पकड़ न इसको, छोड़ दे दिखा इसे शुभ राह।।
तेरा ही होकर रहे भागे तुझे न देख।
सब गतियां करता हुआ लिखे कर्म का लेख।।
हे अपान! मल नाशिनी सुखदा प्रण तुम दोय।
सुख देओ दुर्गति हटा जीवन पुष्टि संजोय।।

मंत्र- अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितो३ऽयमेतु। हरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम्।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मृत्यु सम हे विपद! दे साहस का उपदेश।
उदित हुआ यह नर चले करे सदा उन्मेष।।
इस पर कर तू दया, यह श्रवण-शक्ति को पाय।
सकल अंग पीड़ा रहित हुआ वृद्धि दिखलाय।।
वृद्धावस्था तक रहे सौ वर्षों से युक्त।
अरू निज शक्ति से लभे भोग पूर्णतः ठुक्त।।

मंत्र- देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत्तवा मृत्योरपीपरम्। आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तुझे पूर्णतः त्याग दें इन्द्रिय वसे विकार।
मैं भी तुझको रोग से करूं पूर्णतः पार।।
तेरे अन्तः बाह्य के दूषण सभी प्रजार।।
तुझे बचाता मृत्यु से हूं मैं भली प्रकार।।
भक्षक अग्नि सम तेरे विघ्नों को कर दूर।
तव जीवन करता सुखी मर्यादा से पूर।।

मंत्र- यत्ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम्। पथ इमें तस्माद्रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तेरा जगत का मार्ग, हे मृत्यु विपद को लाय।
यह है ऐसा मार्ग जो कभी न जीता जाय।।
इस मार्ग से इस पुरूष का रक्षण मन धार।
वेद-विद्या का कवच हम करते हैं तैयार।।

मंत्र- कृणोमि ते प्राणापानौ जरा मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति। वैवस्वतेन प्रहितान्यमदूतांश्चरतोऽप सेधामि सर्वान्।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तेरे प्राण अपान अरू वृद्धावस्था भार।
दीरघ जीवन, मृत्यु को करता मैं शुभकार।।
नर कर्मों से जनम ले विचरें जगत मंझार।
ऐसे मृत्यु दूतों को मैं कर देता क्षार।।

मंत्र- आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान्। रक्षा यत्सर्वं दुर्भूतं तत्तमइवाप इन्मसि।।१२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दुर्गति अरू निर्दानता जन्तु मांस जो खांय।
तथा पिशाचों को सदा हम द्रुत देंय भगाय।।
पीड़ाएं जो मनुज को जकड़ करें बेहाल।
अरू सामिष जीवों को हम देते शीघ्र निकाल।।
सभी कुशील, दुष्ट अति राक्षस गण की पांति।
इन्हें भगाते मार हम अंधकार की भांति।।

मंत्र- अग्नेवेष्ट प्राणमृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः। यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्ते कृणोभि तदु ते समृध्यताम्।।१३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अमर, दीर्घ आयु, जिसे जनित पदार्थ ज्ञात।
सर्वव्याप्त हो रम रहा जो प्रभु जग विख्यात।।
उससे तव हित मांगता हूं मैं तेरे प्राण।
जिससे तू नहीं मरे, प्रभु द्वारा पाए त्राण।।
तव हित करता कर्म मैं जो निधियों का निद्ध।
हे नर! वह ही तेरे हित होय यथावत सिद्ध।।

मंत्र- शिवे ते स्ता द्यावापृथिवी असन्तापे अभिश्रियौ। शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो ते हृदे। शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः।।१४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! तव हित हों द्यु अरू भू मंगल-लोक।
ताप रहित, ऐश्वर्यप्रद अरू संहारक शोक।।
नभ का सूरज तप तुझे देता हो नित शांति।
अरू वायु बह, हृदय में भरता हो सुख राशि।।
मंगलमय, दिव्य गुणी धारे शुभ-रस गात।
जल शांति देता तुझे बहता हो दिन-रात।।

मंत्र- शिवास्ते सन्त्वोषधय उत्त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि। तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा।।१५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! हितकारी प्रभु का औषधि भण्डार।
तेरे हित हो सर्वदा सुख का देवनहार।।
नीची पृथिवी के मनुज तव हित कर सदुपाय।
ऊंची पृथिवी पर तुझे मैंने दिया उठाय।।
वहां रवि शशि सम नियम हों तव रक्षा हेतु।
उनका ज्योतिदान क्रम तुझे प्रदाने चेतु।।

मंत्र- यत्ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुत्वम्। शिवं ते तन्वेऽतत्कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते।।१६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! तव परिधान अरू जिससे फेंटा लेतु।
सुखद बनाते हम उसे तव शरीर के हेतु।।
वह तेरे स्पर्श में नहीं खुरदरा होय।
कष्ट न किंचित दे तुझे तुझमें सुख को बोय।।

मंत्र- यत्क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु। शुभं मुखं मा न आयुः प्रमोषीः।।१७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नापित तू केशों को पकड़ काटने हेतु।
कर मैं कैंची उस्तरा तेज धार का लेतु।।
जिससे तू हम लोगों के दाढ़ी मूंछ बनाय।
वह मुख को सुन्दर करें आयु नहीं हनाय।।

मंत्र- शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदेमधौ। एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुंचतो अंहसः।।१८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! शुभकारी बहुत चावल जौ तव हेतु।
बल न गिराते रंच यह खाने में सुख देतु।।
कष्ट निवारक दोनों ही देते कष्ट छुड़ाय।
राजयोग विशेषकर दोनों से हट जाय।।

मंत्र- यदश्नासि यत्पिवसि धान्यं कृष्याः पथः। यदाद्यं१यदनाधं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि।।१६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तू उपजाता खेत में है जो, मनुज सुजान।
तथा धान्य खाता है जो दुग्ध जो करता पान।।
रहे पुराना, या कि वह चाहे रहे नवीन।
उस सबको तेरे लिये मैं करता विष हीन।।

मंत्र- अह्ने च त्वा रात्रये चोभाभ्यां परि दद्मसि।अरायेभ्यो जिधत्सुभ्यं इमं मे परि रक्षत।।२०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दिवा-रात्रि यह दो मनुज जीवन नौका खेतु।
तुझे रहा हूं सौंप मैं इन दो समयों हेतु।।
जो दिखते हैं अदानी अरू भुक्खड़ मशहूर।
मम मनुष्य को बचाकर इनसे रखिये दूर।।

मंत्र- शतं तेऽयुतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः। इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः।।२१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हम तव हित सौ सहस्र दस वर्ष भली प्रकार।
करते हैं दो युग तथा त्रियुग अरू युग चार।।
जो वायु अरू अग्नि सम गुण गण रहे हैं धार।
तथा सूर्य पृथिवी सरिस सब विस्तृत परिवार।।
यह सब बिन संकोच के अपने मन उमगाह।
हम सब पर अनुकूल हों दिखलायें सत् राह।।

मंत्र- शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परिदध्मासि। वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधी।।२२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे मनुष्य हम सौंपते तुझे शरद ऋतु हेतु
अरू हेमन्त, वसन्त ऋतु तथा ग्रीष्म को देतु।।
तेरे लिये वर्षाएं हों मन भावन सुखकार।
औषधियां जहां बढ़ रखें रोग दूर बैठार।।

मंत्र- मृत्युरीशे द्विपदां मृत्यरीशे चतुष्पदाम्। तस्मात्तवां मृत्योर्गोपतेरूद्भरामि स मा बिभेः।।२३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मृत्यु का द्विपादों पर शासन रहा विराज।
उसका ही सर्वत्र है चौपायों पर राज।।
हे नर! तुझको उठाता ब्रह्मज्ञान की रीत।
अब तू जगपति मृत्यु से रंच न हो भयभीत।।

मंत्र- सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः। न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमां तमः।।२४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अहे अहिंसित व्यक्ति! वह तू न मरेगा जान।
तू न मरेगा, अस्तु तू किंचित भय मत मान।।
ब्रह्मज्ञान जिस ठौर है वहां न मरते लोग।
न हि नीच-अंधियार रहकर, करते हैं सोग।।

मंत्र- सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरूषः पशुः। यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्।।२५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सुखदायी परिधि बने ब्रह्मज्ञान जिस ठौर।
गौ, घोड़ा, पशु, मनुज सब रहें जीवित उस पौर।।

मंत्र- परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात्सबन्धुभ्यः। अमाम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम्।।२६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तेरे प्रति तव बन्धु जो करते हैं दुष्कर्म।
उनसे तुझको रक्षना इस ब्रह्म का धर्म।।
तू अक्षीण, अमर हो ब्रह्म करे तव त्राण।
त्यागे तेरा तन नहीं तुझमें रमते प्राण।।

मंत्र- ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः। मुचन्तु तस्मात्त्वां देवा अग्नेवैशवानरादधि।।२७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

एक सौ एक मृत्युएं हरती तव आरोग्य।
अरू नाशक पीड़ाएं जो पार करन के योग्य।।
वैश्वानर प्रभु की कृपा से पालन कर धर्म।
उनसे तुझे छुड़ाएं तव उत्तम गुणअरू कर्म।।

मंत्र- अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा। अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम्।।२८।।

काव्यार्थ- **गीत**

करिये उपासना उस प्यारे प्रभु की मिलकर,
वह ही दयालु भक्तों के कष्ट नष्ट करता।।
वह पार लगाने वाला, तेज-रूप तन का,
राक्षस जनों के प्रति वह नाशन भरी लगन का;
शुभकर्मी कृपा पाता, उससे है भ्रष्ट डरता।।
वह मार डालता प्रति-स्पर्धियों को क्षण में,
पीड़ाएं मिटाता वह रहकर प्रत्येक कण में;
है नामधारी औषध, शुद्धि प्रकृष्ट भरता।।

सूक्त ३

मंत्र- रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म। शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्।।१।।

काव्यार्थ-

जो शत्रुओं का नाश करता है महाबली,
अपनों को जो सदैव मित्रवत चहा करे;
ऐसे प्रसिद्ध राजा को सराहता हूं मैं,
वह कष्ट मेरे हर, मेरे सुख को महा करे।
करता हुआ वह राष्ट्र की रक्षा व उन्नति,
अग्नि सुतीक्ष्ण के समान बन दहा करे;
रक्षक प्रजा का, रक्षा का व्रत धारता हुआ,
दिन रात शत्रुओं से बचाता रहा करे।

मंत्र- अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधनानुप स्पृश जातवेदः समिद्ध। आजिह्वा मूरदेवान्रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्सवासन्।।२।।

काव्यार्थ-

ज्ञानी प्रसिद्ध, लौह-दन्त के, प्रकाशमय-
राजन! तू हाथ अग्नि-तेज की मशाल ले;

अरू पीर के प्रदाता शत्रुओं को तू अपने,
पैरों से कुचल, उनकी व्यर्थ कर कुचाल दे।
बुद्धि से हीन कर्म के मूढ़ों को, जिह्वा की-
ज्वाला से दे उपदेश, तू उनको संभाल दे;
अरू मांस खाने वाले हिंसकों को अपने बल-
विक्रम से दण्ड देता, कारागार डाल दे।

मंत्र- उभोभयाविन्नुप धेहि दृष्टौ हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च। उतान्तरिक्षे पयाह्याग्ने जम्भौः सं धेह्याभि यातुधानान्।।३।।

काव्यार्थ-

दुहु भांति रहे शत्रुओं को जानने वाले,
अग्नि के तेज सम प्रतापवान हे राजन!
तू शत्रुओं की हिंसा करने वाला तीक्ष्ण बन,
दाढ़ों से चबा, कर दे उनका शीघ्र समापन।
हथियार दंतीले लिये तू अंतरिक्ष में,
विमान आदि द्वारा टोह लेता हुआ फिर;
अरू आततायी दुष्ट बड़े शत्रु दलों पर
करके चढ़ाई बेध , झुका उनका उठा सिर।

मंत्र- अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम्। प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात्क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम्।।४।।

काव्यार्थ-

अग्नि समान तीव्र तेजवान हे राजन!
दुःखदायी शत्रुओं की त्वचा छिन्न-भिन्न कर;
तव हिंस्र बिजलियों के वज्र अपने तेज से,
कर देवें शत्रुओं को नष्ट बिन्न बिन्न कर।
राजन महाधनी! तू इसके अंगों के जोड़,
सब काट डाल अपने को विशाल जिन्न कर,
अरू मांस-भक्षी जन्तु करें दुष्ट के चिथड़े,
खाने के हेतु दौड़-दौड़ आएं तिन्न पर।

मंत्र- यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम्। उतान्तरिक्षे पतन्त यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः।।५।।

काव्यार्थ-

राजन्! हे अग्निरूप! हे प्रसिद्ध ज्ञान के!
अब तू जहां कहीं भी यातना के प्रदाता-
दुष्ट को देखाता, कुकर्म हित खाड़े हुए,
या घूमते हुए या अन्तरिक्ष में जाता।
राजन! हे अत्यन्त ही तीक्ष्ण स्वभाव के,
हे वाण के चलाने वाले! हे प्रजा त्राता!
तब उसको देखते ही त्वरित बेध वाण से,
निर्भय हुआ हर व्यक्ति रहे यश तेरे गाता।

मंत्र- यज्ञैरिषू सनममानो अग्ने वाचा शलयां अशनिभिर्दिहानः। ताभिर्विध्य हृदये यातुधनान्प्रतीचो बाहून्प्रति भृङ्ग्ध्येषाम्।।६।।

काव्यार्थ-

हे अग्नि से राजन् स्वयं के श्रेष्ठ कर्मों से,
आगे ही बढ़ते जाते हुए कर कमाल तू;
वाणी से सत् उपदेश दे, वाणों को ठीक कर,
उनके शिरों विद्युत् की तीक्ष्णता बिठाल तू;
उन वाणों से दुष्टों के हृदय-थल को बेध दे,
उनकी भुजाएं उलटी करके तोड़ डाल तू।

मंत्र- उतारब्धान्त्स्पृणुहि जातवेद उतारेभाणां ऋष्टिभिर्यातुधानान्। अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तम दन्त्वेनीः।।७।।

काव्यार्थ-

राजन महाधनी! तू उनको पाल जो व्यक्ति-
सत्कर्म करने की दिशा में पैर बढ़ायें;
हे अग्नि! कर प्रथम प्रकाश, हाथ खड़ग् ले,
हन दुष्ट, पकड़ने के लिए जो हमें आये;

चितकबरे, मांसभक्षी, जो अव्यक्त बोलते,
ऐसे चीलादि पक्षी इनको नोचकर खायें।

मंत्र- इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदं कृणोति। तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम्।।८।।

काव्यार्थ-

राजन हे अग्नि रूप! यहां दुष्ट जो कोई
करता है यह दुष्कर्म प्रजा-जन में त्रास भर;
वह दुष्कर्म है कौन सा? यहां उसे बता,
उसको तू दण्ड देने का पूरा प्रयास कर;
राजा बलिष्ठ! उसको अपने तेज से पकड़,
जनता के हित की दृष्टि से तू उसका नाश कर।

मंत्र- तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्रांच वसुभ्यः प्राणय प्रचेतः। हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभ्यन्यातुधाना नृचक्षः।।९।।

काव्यार्थ-

अग्नि से प्रतापी रहे राजन, सैदव तू,
रहता जनों के कर्मों पर दृष्टि को जमाए;
पग तेरे उनके श्रेष्ठ पूजनीय कर्मों की,
रक्षा के करने में सदा बढ़ते चले जायें;
हे दूरदर्शी, लोगों के कर्मों के निरीक्षक,
हमको बढ़ा आगे, सभी धनवान कहाएं;
राक्षस बने हुए हैं, जो हिंसा सदा करते,
निज तेज से रख तू सदैव उनको दबाए;
ऐसे उपाय कर कि जिससे तुझको सताते-
जो लोग है वह तुझको सताने नहीं पाऐं।

मंत्र- नचक्षारक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा। तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च।।१०।।

काव्यार्थ-

जन-जन के निरीक्षक हे राजा! राक्षसों की तू
अपनी प्रजा के बीच जांच कर, न लाड़ दे;
मस्तक व दोनों कंधे तीनों अंग तोड़कर,
तत् पसलियों को बल से कुचल, कर कबाड़ दे।
अग्नि समान तेज धारते हुए राजन्,
रहने न पाए वह कहीं, तत् घर उजाड़ दे;
उस दुख प्रदाता का कटि का भाग, द्वय जंघा,
तीनों को काट डाल, उनकी जड़ उखाड़ दे।

मंत्र- त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति। तमर्चिषा स्फूर्जयंजातवेदः समक्षमेनं गृणते नि युङ्ग्धि।।११।।

काव्यार्थ-

हे अग्नि! जो असत्य से ढकता है सत्य को,
वह दुष्ट तेरे तीन बन्धनों को प्राप्त हो;
तव स्तुति करते प्रजाजनों के हृदय से,
उस पाप-लिप्त शत्रु का सब भय समाप्त हो;
निज तेज से उस पर गरज, त्वरित उसे,
पाशों से बांध, तुझसे वह सदैव शाप्त हो।
(नोट अग्नि = अग्नि सम प्रतापी राजा)

मंत्र- यदग्ने अद्य मिथुना शपाथो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः। मन्योर्मनसः शरव्या३जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान्।।१२।।

काव्यार्थ-

अग्नि समान भूप! दो हिंसक मनुष्य जो-
सज्जन जनों से बोलते कुबोल आज है;
आक्रोश भरे शत्रु वह कठोर वाणी का-
करते प्रकाश, रंच न करते लिहाज़ है,

तत् दुष्ट भावों चली वाण-झड़ी से उनके
हृदयों को बेध कर तुझे करना इलाज है।

मंत्र- परा शृणीहि तपसा यातुधानान्पराग्ने `रक्षो हरसा शृणीहि। परार्चिषा मूरदेवांजदृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि।।१३।।

काव्यार्थ-

तेजस्वी हे राजन्। तू अपने तप से, कष्ट दा
पापी जनों को शीघ्र कुचल करके चूर कर;
मूढ़ों को अपने तेज से कर दे विनष्ट, औ-
निज बल से दुराचारियों का तू ग़रूर हर,
अत्यन्त ज्योतिमान् दूसरों के प्राण ले,
जो तृप्त हुआ करते उन्हें चूर-चूर कर।

मंत्र- पराद्यदेवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथ यन्तु सृष्टाः। वाचास्तेनं शरवऋच्छन्तु मर्मन्विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः।।१४।।

काव्यार्थ-

पापी को कुचल देवें आज विजय कामी शूर,
उस पापी के कुबोल लौट उसी पर जायें;
हमारे तीर उस छली के मर्म को भेदें,
उस यातना दाता को सभी बांध कर लायें।।

मंत्र- यः पौरूषेयेण क्रविषा समंक्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः। यो अध्यन्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च।।१५।।

काव्यार्थ-

नर-मांस खा जो पुष्ट होता अथवा अश्व सम-
पशु मांस को खा पाल रहा अपने आप कू;
अरू जो न मारने के योग्य गौ परोपकारी-
को मार नष्ट करता है अमृत के थाल कू;

अग्नि के समान तेजवान वीर हे राजन्,
ऐसों के सिर को अपने बल से तोड़ डाल तू।

मंत्र- विषं गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितये दुरेवाः।
परैणान्देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम्।।१६।।

काव्यार्थ-

जो दुष्ट दिया करते हैं गौंओ को विष, तथा-
जो दुराचारी लोग गाय को हैं काटते;
व्यवहार कुशल राजा जो सभी का है प्रेरक,
उनको समाज से रहे सदैव छांटते;
वह उनको धन-धान्य का शुभ भाग जीतकर,
देवे न कभी, नित्य रहे उनको डॉटते।

मंत्र- संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद्यातुधानो नृचक्षः। मीयूष्मग्ने
यतमस्तितृप्सात्तं प्रत्यंचमर्चिषा विध्य मर्मणि।।१७।।

काव्यार्थ-

राजन् हे जन-निरीक्षक! हमारे घरों में,
गौ का दिया जो दूध उपस्थित रहा करता;
उसका कभी न पान करें दुष्ट लोग वह,
जिनसे हमारा मन सदैव ही दहा करता;
हे अग्नि सम राजन! जो भी उनमें से हमारे-
दुग्धामृत से पेट को भरना चहा करता;
प्रतिकूल वर्ती उसके मर्म-थल को त्वरित ही,
निज तेज से तू छेद, रहे मृत्यु-सर तरता।

मंत्र- सनादग्ने मृणासि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः।।१८।।

काव्यार्थ-

हे तेजपूर्ण अग्नि से राजन् सदैव तू-
उन दुष्टों को विनाशता जो सबको सतायें;

राक्षस न जीत सकते तुझे युद्ध में कभी,
वह तुझसे युद्ध में सदैव हारते जायें;
कर भस्म तू समस्त दुष्ट मांस के भक्षक,
तत् मूल सहित और उनके मूढ़ बसाये;
तव दिव्य गुणी वज्र से बचने न वह पायें,
तेरी प्रजाएं हर्ष से जयकार लगायें।

मंत्र- त्वं नो अग्ने अधरादुदक्त्स्त्वं पश्चादुत रक्ष पुरस्तात्। प्रति त्ये ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु।।१९।।

काव्यार्थ-

हे अग्नि रूप भूप! तू हम हेतु नीचे औ-
ऊपर व पीछे, आगे से रक्षाओं को चला;
तेरे अजर, चमकते वज्र, तीव्र ताप-दा,
हमको तपाने वाले पापियों को दें जला।

मंत्र- पश्चात्पुरस्तादधरादुतोत्तरात्कविः काव्येन परि पाह्यग्ने। सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्ता अमृर्त्यस्त्वं नः।।२०।।

काव्यार्थ-

हे अग्नि के समान प्रतापी रहे राजन्।
तू है कुशाग्र बुद्धि अस्तु बुद्धि-ज्ञान से;
आगे व पीछे, नीचे व ऊपर से सब रीति,
रक्षाएं हम सभी की कर सदैव ध्यान से;
तू मित्र है अतः तू मुझ मित्र त्रस्त की,
तू जरा हीन है अतः मुझ जरा-ग्रस्त की;
तू है अमर, अतः तू मरते होते अस्त की,
कर रक्षा शरण आये हुए जन समस्त की।

मंत्र- तदग्ने चक्षु प्रति धेहि रेभे शफारूजो येन पश्यसि यातुधानान्। अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष।।२१।।

काव्यार्थ-

जिस क्रोध भरी आंख से तू तेजमय राजन्,
दुःखदायी, शांति-हर्ता राक्षसों को देखता;
क्रोधित उसी ही आंख को अविलम्ब डाल तू,
उन पर, जो शत्रु शोर करते, तोड़ एकता;
देवों के दिये तेज से अचेत जला दे,
जो सत्य का विनाश करता, दूर फेंकता।

मंत्र- परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि। धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः।।२२।।

काव्यार्थ-

हे बल के हितू, तेजमय सेनापति! ज्ञानी,
उनको तू पूर्ण-काम करे जो रहें बुझे;
नाशक विनाशकों के बड़े, हम तेरी प्रति दिन,
लेते सहायता हैं बना कर परिधि तुझे।

मंत्र- विषेण भङ्गुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि। अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिरर्चिभिः।।२३।।

काव्यार्थ-

हे अग्नि के समान अति तेजमय राजन्
तव तीव्र तेज है रहा सबमें प्रकाश भर;
तू अपनी ताप युक्त शिखाओं की दीप्ति से,
विष द्वारा नाश करते राक्षसों का नाश कर।

मंत्र- विज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा। प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवा शिशीते शृङ्गे रक्षोभ्यो विनिक्ष्वे।।२४।।

काव्यार्थ-

अग्नि समान तेजपूर्ण राजा सदा ही,
पृथिवी पर चमकता है वृहत् दीप्तियाँ पिये;

निज महिमा से करता प्रकट सब वस्तुएं, तथा
दुर्गति भरी कुबुद्धियों के जीतता हिये;
द्वय शृंग प्रजापालन व शत्रु का मर्दन,
वह तीक्ष्ण करता दुष्टों के विनाश के लिये।

मंत्र- ये ते शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मसंशिते। ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किमीदिनं प्रत्यंचमर्चिषा जातवेदो वि निक्ष्व।।२५।।

काव्यार्थ-

महनीय ज्ञान वाले, तेजपूर्ण हे राजन्;
तेरे प्रजापालन व शत्रु-नाश शस्त्र है;
यह वेद-ज्ञान द्वारा अति तीक्ष्णता लिये,
पहने हुए सामर्थ्य अनश्वर के वस्त्र हैं,
राजन् महत् धनी! तू अपने तेज के सहित,
इन दोनों द्वारा अपनी प्रजा में प्रकाश भर;
प्रतिकूलगामी, दुष्ट-हृदय, पापी प्राणियों-
अत्यन्त ही दुःखदायी खलों को हताश कर;
क्या हो रहा है अब तथा यह क्या है हो रहा,
इस भांति के खोजी रहे शत्रु का नाश कर।

मंत्र- अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः। शुचिः पावक ईड्यः।।२६।।

काव्यार्थ-

जो शुद्ध, शुद्ध करने वाला, तेजवाला औ
जिसमें पवित्रता का सदा ही निवास है;
जो स्तुति के योग्य, अमर, अग्नि सा, ऐसा-
सेनापति दुष्ट जनों का करता नाश है।

सूक्त ४

मंत्र- इन्द्रासोमा तपसं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणातमोवृधः। परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्त्रिणः।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सूर्य चन्द्र के समान राजा और मंत्री आप-
दोनों राक्षसों को ताप दीजिये, दबाइये;
आप दोनों ही बलिष्ठ वीर, अंध-वर्द्धकों को-
नीचे ही दबाइये न ऊपर उठाइये।
जिनमें न रंचमात्र बुद्धि औ विवेक, ऐसे-
अज्ञानी मूर्खों को कुचलते जाइये;
दूसरों को खाते हैं जो, दुर्बल बनाके उन्हें-
खाइयेगा आप, उन सबको चबाइये।।

मंत्र- इन्द्रासोमा समघशंसमभ्य१घं तपुर्ययस्तु चरूरग्निमांइव। ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सूर्य चन्द्र के समान राजा और मंत्रीं आप,
प्रजा के दुख द्वन्द्व और शाप को हरें;
पुण्य करते जो उन्हे सुख से निहाल कर,
बहु क्लेश दीजियेगा जो कि पाप को करें।
आग पर चढ़ी हुई हांडी के समान उन्हें,
दीजे दुख संतप्तकारी, ताप से जरें;
वेद विद्वेषी, मांसभक्षी, क्रूर दृष्टि वालों-
हेतु मन के पटल द्वेषछाप को धरें।।

मंत्र- इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्रविध्यतम्। यतो नैषा पुनरेकश्चनोदयत्तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सूर्य चन्द्र सम राजा मंत्र आप गाढ़ अंध-
बीच रहते कुकर्मियों को बेध डालिये;
कोई भी वहां से फिर ऊपर न आने पाये,
ऐसा उनको अशक्त करके बिठालिये।

निज उत्साह युक्त और क्रोध भरा बल,
उनके ही दमन के हेतु आप पालिये;
उनमें से एक भी बचे न कष्ट देने हेतु,
दुष्टों का दमन स्वप्न में भी नहीं टालिये।।

मंत्र- इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम्।
उत्तक्षतं स्वर्यं१पर्वतेभ्यो येन रक्षोवावृधानं निजूर्वथः।।४।।

काव्यार्थ- कवित्त

सूर्य चन्द्र सम राजा और मंत्री आप दोनों,
धरती आकाश बीच शत्रुओं के त्रास को;
तीव्रतम शस्त्रों को प्रवृत्त करते ही रहो,
जिससे अनिष्ट-कामियों का पूर्ण नाश हो।
पर्वतवासी शत्रुओं के लिये सिद्ध करके रखो-
तीक्ष्ण शस्त्र, धारते हों, विद्युत-प्रकाश को;
जिससे कि अग्रगामी दुष्ट राक्षसों का दल,
तुम दोनों नष्ट कर, जन को हुलास दो।।

मंत्र- इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्यभिः।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्त्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम्।।५।।

काव्यार्थ- कवित्त

सूर्य चन्द्र सम राजा मंत्री, शस्त्र धारे आप-
जो कि तपते हो नित अग्नि के भौन पर;
मेघ के समान चलते हों तथा फैलते हों,
होवें वो अटूट, चढ़ते हों शत्रु ठौन पर।
आप उन फौलाद बने शस्त्रों से भोगी-
शत्रु द्यु-लोक से हटा दें चढ़ पौन पर;
उनको कठिन थली में छेदें, जिससे कि-
भाग जायें एक शब्द भी न कर, मौन धर।।

मंत्र- इन्द्रासोमापरि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीइव जिन्वतम्।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सूर्य चन्द्र सम राजा मंत्री, हमारी मति-
आप दोनों श्रेष्ठ जन, मन माह धरिये;
जैसे चर्म-पट्टी स्वस्थ बलवान अश्वों को-
प्राप्त होती वैसे इसे आप भी बिठारिये।
जिस वाणी आह्वान दायिनी को बुद्धि साथ-
तुम दोनों हेतु प्रेरता हूं, स्वीकारिये;
अरू श्रेष्ठ द्वय नरपतियों समान इन-
स्तुति वाक्यों को नित विस्तारिये।।

मंत्र- प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः। इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद्यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहुः।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सूर्यचन्द्र के समान श्रेष्ठ राजा और मंत्री,
तव शीघ्रगामी रहे सैनिक हिलें नहीं,
उन सैनिकों का स्मरण रखिये सदैव
उनको प्रदानियेगा निज रक्षणा छंही।
द्रोहशील और विनाशकों को मारियेगा सदा,
हृदय-कमल उनके कभी खिलें नहीं;
द्रोह मुझसे जो करे, मुझको सताये, उस-
दुष्कर्मी अधम को, सुमति मिले नहीं।।

मंत्र- यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः। आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

परिपक्व शुद्ध मन द्वारा जिसके हैं कर्म,
ऐसे मुझको जो दुराचारी बिन बात के;
नित्य ही झिड़कता असत्य वचनों को बोल,
ऐसे जन का न कोई संभ्रान्त साथ दे।

तू भी ऐश्वर्यवान् राजन् सदैव उसे,
मुट्ठी में बांधे जल के समान घात दे;
जीवित न रहे के समान बन जाय वह,
निर्जन में ठूंठ खड़ा जैसे बिन पात के।।

मंत्र- ये पाकशंस विहरन्त ऐवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः। अहये वा तान्प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋरूपस्थे।।९।।

काव्यार्थ-

पुरूषार्थी पुरूषों के संग पुष्ट बुद्धि के-
लोगों का जो विशेष रीति नाश पालते;
अथवा परिश्रमी तथा अच्छे मनुष्यों के,
अन्नों का कर बिगाड़ है दूषण बिठालते।
उनको अवश्यमेव ऐश्वर्यमय राजा,
विषधर समान बधक नर की गोद डाल दे;
उनको दारिद्रय दैत्य के हाथों में सौंप कर,
जब तक जियें तब तक उसे कष्ट कराल दे।

मंत्र- यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानां गवां यस्तनूनाम्। रिपु स्तेन स्तेयकृद्दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३तना च।।१०।।

काव्यार्थ-

अग्नि समान अत्यन्त तेजमय राजन्,
जो अन्न रस बिगाड़ उसे करता क्षीण मह;
जो करता नष्ट घोड़ों, परोपकारी गउओं को,
वध उनका किया करता है सदैव दीन कह।
तस्कर वह महा चोर महा कष्ट लभे औ,
निज तन से , पुत्र आदि से, धन से हो हीन वह;
वह दिखने नहीं पाये कहीं राज्य में राजन्,
उस थल को नष्ट कीजिए रहता है लीन जंह।।

मंत्र- परः सो अस्तु तन्वा३तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः। प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम्।।११।।

काव्यार्थ- दोहा

निज संतति निज तन सहित वह नर जो है भ्रष्ट।
अपनी अतुलित संपदा संग हो जाए नष्ट।।
शारीरिक अरू आत्मिक अरू सामाजिक तीन।
व्यवस्थाऐं में हो रहें वह अति अधः मलीन।।
दिन में मुझे सताये जो तथा रात्रि के काल।
हे विद्वानों उसका यश सूख जाय तत्काल।।

मंत्र- सुविज्ञानं चिकितेषु जनाय सच्चसासच्च वचसी यस्पृधाते। तयोर्तत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमो वति हन्त्यासत्।।१२।।

काव्यार्थ- दोहा

वचन सत् अरू असत् द्वय सदा विरोधी होय।
ज्ञानी को इससे अधिक उत्तम ज्ञान न कोय।।
उनमें से जो सत्य है अरू है सरल सुभाय।
उसकी रक्षा सदा ही प्रभु द्वारा की जाय।।
इसको ही है मानता सबका प्रेरक भूप।
तथा नष्ट करता, सदा जो है असत् कुरूप।।

मंत्र- न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्। हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते।।१३।।

काव्यार्थ- दोहा

जो पापी बहु पाप कर बने पाप का कूप।
तत् सहायता नहीं करे वैभवशाली भूप।।
प्रजा की हिंसा जो करे क्षत्रिय बली अनूप।
उसे बढ़ाता है नहीं वैभवशाली भूप।।

राक्षस मिथ्यावादी दुहु सदा मार खा रोंय।
यह दोनों ही राजा की कारागार में सोच।।

मंत्र- यदि वाहऽमननृतदेवो अस्मि मोघं वा देवां अप्यूहे अग्ने।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम्।।१४।।

काव्यार्थ-

राजन् ! यदि मैं हूं असत व्यवहार का कर्ता,
स्तुत्य जन को व्यर्थ ही निन्दित हूं जानता;
यदि ऐसा नहीं है तो मह् ज्ञानमय राजन,
तू किसलिये मेरे प्रति है क्रोध मानता।

दोहा

शत्रु-विनाशक नृप, सदा सत्पुरूषों के हितेश।
जो अनिष्ट-भाषण करें भोगें तेरा क्लेश।।

मंत्र- अद्या मुरीय यदि यातुधानों अस्मि यदि वायुस्ततप पुरूषस्य!
अधा स वीरै र्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह।।१५।।

काव्यार्थ-

यदि सत्पुरूष होकर किसी को पीर दी मैंने,
अथवा किसी के स्वास्थ्य का बिगाड़ किया है;
तो इससे यह अच्छा है कि मर जाऊं आज ही,
लेकिन कभी यह कर्म नहीं मैंने किया है।

दोहा

व्यर्थ जो मुझसे यह कहे तू है दुःख का खम्ब।
वह अपने दस प्राणों से मुक्त होय अविलम्ब।।

मंत्र- यो मायातु यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः सुचिरस्मीत्याह। इन्द्रस्तं
हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट।।१६।।

काव्यार्थ-

मुझ यातना न देने वाले को जो छली नर,
दुखदायी तथा दुष्ट बताता हुआ फिरता
अथवा जो दुराचारी स्वयं हो, यही कहता-
मैं हूँ पवित्र, मुझमें पूत भाव है तिरता।
ऐश्वर्यवान राजा उस पाखण्डी व्यक्ति को,
अपने विशाल मारक हथियार से मारे;
सबसे अधिक अधोगति को प्राप्त रहे वह,
देवे न उसे कोई भी बाहु के सहारे।

मंत्र- प्रथा जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्वंगूहमाना। वब्रमनन्तमव सा पदीष्ट ग्रावाणोघ्नन्तु रक्षस उपब्दैः।।१७।।

काव्यार्थ-

पथभ्रष्ट हुई स्त्री अपने तन को छिपती,
चलती, व्यथा-दायी उलूकी जैसी रात में;
वह हो अधोमुखी अगाध गर्त में गिरे,
जन मारें राक्षसो को, ले पत्थर को हाथ में।

मंत्र -वि तिष्ठध्वं मरूतो विक्षवीच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन। वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे।।१८।।

काव्यार्थ-

हे शत्रुसंहारक रहे वीरों! बढ़ो आगे,
अरू फैल जाओ तुम मनुष्यों के समाज में;
उन राक्षसों को ढूंढो, पकड़ो, पीस कर डालों,
जो पक्षी सम होकर के उड़ा करते रात में;
अथवा जो दिव्य शुभ कर्म में हिंसाएं हैं करते,
मृत्यु ही एक दवा है जिनके इलाज में।

मंत्र- प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि। प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तोभि जहि रक्षसः पर्वतेन।।१९।।

काव्यार्थ-

महनीय धनी हे महत् ऐश्वर्यमय राजन!
अश्मास्य शस्त्रों को तू प्रेर कर प्रहार कर;
जिनको किया है तेज गुणी शिल्पकारों ने,
पतझार बीच में भी जो चलते बहार कर;
सम्मुख दिशा में, दूर से नीचे से, ऊपर से,
ले पर्वतास्त्र राक्षसों का तू संहार कर।

मंत्र- एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम्।
शिशीते शुष्क्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनि यातुमद्भ्यः।।२०।।

काव्यार्थ-

यह और वह जो भीतरी औं बाहरी शत्रु,
कुत्तों समान आक्रमण करना है चाहते;
अरू राजा प्रतापी अति अदम्य रहे को,
जो हिंस्र शत्रु उसे कष्ट देते डाहते;
वह राजा इन छलिया रहे लोगों के नाश को,
करता है तेज अपने शस्त्रों को उछाहते;
वह निश्चय करते पीड़को पर वज्र छोड़कर,
कर्तव्य को रखता है प्रति पल निबाहते।

मंत्र- इन्द्रो यातूनामवत्पराशरो हविर्मथीनाभ्या३ विवासताम्। अभीदु
शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः।।२१।।

काव्यार्थ-

मिट्टी के बरतनों को ज्यों लाठी से तोड़ते,
जैसे कुल्हाड़ा वन के वृक्ष काटता जाये;
वैसे ही शक्तिमान राजा, सामने आये-
राक्षस गणों का नाश करता बढ़ता ही जाये।
महनीय ऐश्वर्यवान् राजा हवियों के-
नाशक रहे दुष्टों को कष्ट देता रूलायें,

निकटस्थ दुष्ट पीड़कों को देता है कुचल,
अति रौद्र रूपधार, त्राहि-त्राहि मचाये।

मंत्र- उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्। सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं वषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र।।२२।।

काव्यार्थ-

राजन् प्रतापी! लोग जो लोभी है गिद्ध से,
उल्लू से अज्ञ, भेड़िये से क्रोधमय अनल;
चिड़ियों से कामी और जो कुत्ते से मत्सरी,
जो लोग दंभ-पूर्ण हैं जैसे गरूण सबल;
उसको तू मार, पत्थरों से जैसे पक्षी को,
खल राक्षसों को नष्ट कर, न रूक तू एक पल।

मंत्र- मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावदपाच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः। पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽनतरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान्।।२३।।

काव्यार्थ-

हम तक न पहुंचे यातना देते हुए राक्षस,
घातक व भूखे दूर जा नगरी को बसायें;
पृथिवी बचाये, हम न सहें कष्ट पार्थिव,
द्यु लोक के कष्टों से अन्तरिक्ष बचाये।

मंत्र- इन्द्र जहि पुमांस यातुधानमु स्त्रियं मायया शाशदानाम्। विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम्।।२४।।

काव्यार्थ-

राजन् परम ऐश्वर्यधारी! कष्ट निवारक,
दुःख देता जो पुरूष हमें, तू उसका नाश कर;
छल औ कपट पूर्ण जो व्यवहार है करती,
उस भ्रष्ट हुई स्त्री को विनाश, ख़ासकर;
मूर्खों के उपासक को तू गरदन रहित कर दे,
वे उदय होता सूर्य न देखें हुलास भर।

मंत्र- प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम्। रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः।।२५।।

काव्यार्थ-

प्रत्येक ही को देख, देख विविध भांति से,
हे सूर्य सम राजन् तथा हे मंत्री चन्द्र सम;
तुम दोनों जागो, दुष्ट राक्षसों को मार दो,
पर-पीड़कों पर वज्र चलाओ, न जाओ थम;
यह जो प्रसिद्ध वेदमणि शत्रु-विनाशक,
इसमें महान् वीर्य, तेज, बल व पराक्रम;
यह वीर है, शत्रु का नाश करते हुए यह,
सम्मुख सदैव ही रहे गति धार श्रेष्ठतम।

सूक्त ५

मंत्र- अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते। वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमंसगल।।१।।

मंत्र- अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान्वाजी सहमानउग्रः। प्रत्यक्कृत्या दूशयन्नेति वीरः।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

यह प्रसिद्ध वेद रूप मणि है सामर्थ्य युक्त,
विक्रम से युक्त, शत्रु नाश करे वामने;
तेजस्वी, वीर, बली, शत्रु को हराने वाला,
शत्रु-दल नाशता सदैव चले सामने।
शूरवीर, सब ओर से ही रक्षता है यह,
वीर-हाथ बँध, चलता है उसे थामने;
अग्रगामी, मंगल प्रदाता, बड़े वीरों वाला,
धारा जिसको है हर काल, हर धाम ने।।

मंत्र- अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान्पराभावयन्मनीषी। अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत्प्रदिशश्चतस्रः।।३।।

मंत्र- अयं स्राक्त्योमणिःप्रतीवर्तःप्रतिसरः।ओजस्वान्विमृधो वशी सो अस्मान्पातु सर्वतः।।४।।

काव्यार्थ- कवित्त

अति ही प्रतापी, महा बुद्धिमान व्यक्ति ने,
जिससे नसाया अंध, असुरों को मात दी;
जिससे द्यु व पृथिवी दुहू को जीत लिया,
चारों दिशि जीतकर मिटाया दुख पातकी।
वह है वेद-वाणी अग्रगामी उद्यमशील,
सब ओर घूमना गति है दिन रात की;
वश में करे जो महाबली बड़े हिंसकों को,
हमको बचाये वह, रखे न हमें पातकी।

मंत्र- तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः। ते मे देवा पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्या प्रतिसरैरजन्तु।।५।।

काव्यार्थ- दोहा

कहता है पूर्वोक्त यह अग्नि-पुरूष विख्यात।
अरू पोषक शुभ चन्द्र सम नर की भी यह बात।
स्वामी सब विद्याओं का सबको रखता प्रेर।
अतुल प्रतापी पुरूष यह कहता सबसे टेर।।
अग्रगामी व्यवहारी जन साथ, अग्रजन सूर।
हिंसा को प्रतिकूल गति करके कर दें दूर।।

मंत्र- अर्न्तदधे द्यावापृथिवी उताहरूत सूर्यम्।। ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रसिरैरजन्तु।।६।।

काव्यार्थ- दोहा

पृथिवी अरू द्यु शक्ति से रखूं हृदय को सींच।
दिन अरू रवि की शक्ति भी रखूं हृदय के बीच।।
अग्रगामी व्यवहारी जन साथ, अग्रजन सूर।
हिंसा को प्रतिकूल गति करके, कर दें दूर।।

मंत्र- ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते। सूर्य इल दिवामारूह्य वि कृत्या बाधते वशी।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रगतिशील श्रेष्ठ नियम रूप मणि शुभकार।
ज्ञानी जन इसको कवच बना करें व्यवहार।।
वह सूर्य सम तेज धर उठें, गगन चढ़ जाँय।
सबको वश में कर, सकल हिंसा देंय मिटाय।।

मंत्र- स्राक्त्येन मणिन ऋषिणेव मनीषिण। अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रगतिशील श्रेष्ठ नियम रूप मणि शुभकार।
महाज्ञानी ऋषि धारें ज्यों त्यों मैं रहा हूं धार।।
युद्धों में अरि दल हरा करता उसे हताश।
अरू हिंसक सब राक्षसों का कर देता नाश।।

मंत्र- याः कृत्या आंगिरसीर्याः कृत्या आसुसरीर्याः कृत्याः स्वयं कृता या उ चान्येभिराभृताः। उभयीस्ता परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या३अति।।९।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जिन हिंसाओं का विधान ऋषियों ने किया,
हिंसाएं जो कि दुष्ट असुर हैं करते;
बुद्धि-विकार वश जिनको किया है खुद,
और भी जो अन्य पुरूष किया करते।
वे समस्त नाव से उतारने के योग्य नव्वे-
नदियों को पार कर दूर जांय मरते;

जिससे हमारे शुभ कर्म हों अबाध सिद्ध,
हम सब सुख पूर्ण सांस रहें भरते।।

मंत्र- अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड्वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे।।१०।।

काव्यार्थ- कवित्त

महनीय ऐश्वर्यधारी राजा तथा मंत्री,
जो कि कर्मों में बहु व्याप्तियों की आंध दे,
प्रेरणा प्रदाता सेनापति औ समस्त ऋषि,
ज्ञानदाता आचार्य जो सद्गुणों की गांध दे।
सर्वश्रेष्ठ प्रभु, प्रजापालक, प्रकाशमान,
सबका हितैषी जो कि तिहुं लोक फाँदले;
यह सब स्तुति के योग्य, इस वीर तन,
कवच सुदृढ़ श्रेष्ठ नियमों का बांध दे।।

मंत्र- उत्तमो अस्योषधीनामनूड्वांजगतामिवव्याघ्रः श्वपदामिव।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम्।।११।।

काव्यार्थ- दोहा

हे नर् गतिशीलों में ज्यों बैल, हिंस्रो मे बाध।
त्यों ही ताप विनाशकों में तू उत्तम लाग।।
जिस सर्वोत्तम को सदा चाह रहे हम लोग।
जो छूता प्रत्येक को हरता सबके सोग।।
जिसके शुभ प्रबन्ध में सिगरा मनुज समाज।
उस मणि रूप श्रेष्ठ नियम को पाया है आज।।

मंत्र- स इत व्याघ्रोभवत्यथो सिंहो अथो वृषा। अथो सुपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम्।।१।।

तेत्र- नैनंध्नत्यपरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः। सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम्।।१३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जो भी अपनाता श्रेष्ठ नियम ये मणिरूप,
वह सब भांति बल धार लिया करता;
वह बाघ, सिंह अरू वृषभ समान बन,
शत्रु विनाशता है, त्रास दिया करता।
तड़ित व मेघ तथा कोई भी मनुष्य कभी,
उसका न मृत्यु-घर बीच ठिया करता,
सब ही प्रकार शक्ति सम्पन्न होकर वह,
सकल दिशाओं पर राज किया करता।।

मंत्र- कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत्। अविभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत्सं श्रेविणेऽजयत्। मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत।।१४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मणि रूप हे अतीव श्रेष्ठ नियम तुझे-
प्रभु उत्पन्न कर जग में प्रसारते;
उसी सर्व-दृष्टा प्रभु द्वारा तू है भेजा गया,
श्रेष्ठ जन तुझे नर-लोक में बिठारते।
तुझे धार उन्होंने संग्राम जीत लिये,
तुझ ही को धार वह शत्रु प्रजारते;
अनगिनत शक्ति वाले हे नियम! इस ही से,
विजय कामी तुझको कवच कर धारते।।

मंत्र- यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति। प्रत्यक्त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा।।१५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

पाखण्डी मनुष्य जो कि हिंसक क्रियाओं द्वारा,
चाहता कुचलना बनाना तुझे लाश कर;
कपटी मनुष्य आत्म विग्रह उपायों द्वारा
दु:ख देना चाहता है सिगरा प्रकाश हर।

मित्रतादि संयोगों द्वारा चालबाज नर,
चाहता है व्याकुल बनाना तुझे डास कर;
हे महत् ऐश्वर्यधारी नर! उसका तू
शत सामर्थ्य पूर्ण वज्र धार नाश कर।।

मंत्र- अयमिद्वै प्रतीवर्त ओजस्वान्त्संजयो मणिः। प्रजां धनं च रक्षतु परिपापः सुमंगलः।।१६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मणि रूपी श्रेष्ठ नियम रक्षक रहा महान्।
मंगलकारी है बड़ा अतुल दया की खान।।
भ्रमणशील प्रत्यक्ष यह विजयी ओजवान्।
जन धन की रक्षा करे, रखे सभी का ध्यान।।

मंत्र- असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात्। इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि।।१७।।

काव्यार्थ-

परमैश्वर्यवान् राजन! प्रजाओं के हित,
नीचे से ज्योति-पथ को शत्रु विहीन कर दे,
हम हेतु बीन ऊपर से शत्रु ज्योति पथ के,
पीदे से ज्योति-पथ के शत्रु तू क्षीण कर दे,
हम हेतु ज्योति-पथ के सम्मुख न शत्रु होवें,
सारे हे शत्रुओं को अपने आधीन कर ले।

मंत्र- वर्म में द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः। वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाताद धातु में।।१८।।

काव्यार्थ-

मेरे लिये आकाश अरू भूमि कवच होवें,
अरू मेरे लिये दिन औ सूर्य भी कवच होवें;
होवें कवच मेरे हित वायु व अग्नि दोनों,
पोषक प्रभु मेरे हित धारता कवच होवे।

मंत्र- ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे। तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्मां जरदष्टिर्यथासानि।।१६।।

काव्यार्थ-

अति ही प्रचण्ड, वायु अरू अग्नि का कवच है,
जिसको समस्त इन्द्रियां किंचित न छेद सकतीं;
वह वृहत् कवच मेरा तन सर्व दिशि से पाले,
दीरथ सुआयु-रस पी मम आयु रहे छकती;
वृद्धा अवस्था तक मैं शुभकर्म शील होऊं,
मम इन्द्रियां कभी भी किंचित न रहे थकती।

मंत्र- आमारूक्षद्देवमणिर्महया अरिष्टतातये। इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथ मोजसे।।२०।।

काव्यार्थ-

दिव्य मणि के रूप अति श्रेष्ठ जो नियम हैं,
वह अति कुशलता साथ मुझ पर आरूढ़ होवें,
मुझ में मेरे इस तन को जो पालते त्रि रक्षक,
वह ओज तथा ज्ञान की वृध्दि गूढ़ बोवें।

(नोट- त्रिरक्षक अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक, अधिदैविक)

मंत्र- अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम्। दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्मांज्जरदृष्टिर्यथासत्।।२१।।

काव्यार्थ-

महनीय ऐश्वर्यधारी प्रभु इस नर को-
दीर्घायु शतशरदीय हित शक्ति से मढ़ावें;
विद्वानों आप इसमें सब ओर से सब शांति-
मिलकर प्रवेश करके निज शक्तियां जड़ावें,
जिससे यह दीर्घ जीवी होने, व जराकाल-
तक हो सुदृढ़ निरोगी, धन और यश बढ़ावे।

मंत्र- स्वस्तिदा विशां पतिवृत्रहा विमृधो वशी। इन्द्रो वध्नातु ते मणिं जिगीवां अपराजितः सोमपाअभयंक वृषा स त्वारक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः।।२२।।

काव्यार्थ-

प्रभु ऐश्वर्यधारी, शुभकार, प्रजापालक,
अंधियार विनाशक, अरि को काटती दरांती;
विजयी, महाबली, जो ऐश्वर्य का रक्षक है,
जो है अभय का दाता, देता सुखों की पांती;
तुझको नियम से बांधे हर काल, तथा तेरी-
दिन रात करे रक्षा, सब ओर से सब भांति।

सूक्त ६

मंत्र- यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ। दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सपः।।१।।

काव्यार्थ-

हे स्त्री! तेरी माता ने तेरे जनम पर, तेरे-
पति को प्राप्य द्वय स्तन भाग धोकर निरोग बनाये,
अब तू इनकी सदा स्वच्छता का रख ध्यान कि जिससे,
दुर्णामा, अलिशं अरू वप्सप कृमि पहुंच न पायें।

मंत्र- पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम्। आश्रेषं वव्रिवासमृक्षग्रीवं प्रयीलिनम्।।२।।

काव्यार्थ-

होते जो उत्पन्न मांस से, वीर्य दोष उपजाते,
हिंसक, बाल श्वेत करते अरू गला दुखों को धरता
करते जो कुरूपता में वृद्धि, अरू आंखों में सुस्ती दें,
ऐसे दुखदायी रोगों को शीघ्र दूर मैं करता।

मंत्र- मास सं वृतो मोप सृप ऊरू माव सृणोऽन्तरा। कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम्।।३।।

काव्यार्थ-

हे रोग! तू पास न रह, तू यहां रेंगता मत आ,
जंघाओं के बीच वास कर कभी न इसका तन खा;
मैं इसके हित दुर्नाम का नष्ट ठिया करता हूं,
अरू सशक्त बज औषधि को तैयार किया करता हूं।

मंत्र- दुर्णामा च सुनामा चोभा संवृतामिच्छतः। अरायानपहन्मः सुनामा स्त्रैणमिच्छताम्।।४।।

काव्यार्थ-

दुष्ट नाम वाले हानिप्रद, शुभ नामी हितकारी,
यह दानों क्रिमि इच्छा रखते निकट वास की भारी;
इनमें से जो दुष्ट नाम क्रिमि प्राणों को हरते हैं,
उन निकृष्टों का हम निशि दिन नाश किया करते हैं,
जो शुभनाम क्रिमी सभी में सुख ही सुख धरते हैं,
उनको हम स्त्री जाति के पास रखा करते हैं।

मंत्र- यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः। अरायानस्या मुष्काभ्यां भंससीपे हन्मसि।।५।।

काव्यार्थ-

जो रोग-क्रिमि है कुरूप नाभि का, असुर बाल युत, काला,
नर के बैठने के अंगों में जिसने स्वयं को पाला;
इस स्त्री के दुहु प्रदेशों से उसको दूर हटाता,
तथा गुप्त स्थान बसा जो, उसके अंग कटाता।

मंत्र- अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम्। अरायांश्वकिष्किणो बजः पिङ्गौ अनीनशत्।।६।।

काव्यार्थ-

रोग जो कि रोगी के श्वास द्वारा फैला करते हैं,
तथा जो कि स्पर्श, मांस खाने से फैला करते;
इनको अरू अति चोट देने वाले दुष्ट रोगों को,
तथा जो कि कुत्ते समान दुःख देते हुए विचरते;
बली, पराक्रमी व्यक्ति में नाश कर दिया इनका,
उसको रोग नहीं होते यह दूर भागते डरतें।

मंत्र- यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च। वजस्तन्त्सहतामितः क्लीवरूपांस्तिरीटिनः।।७।।

काव्यार्थ-

हे स्त्री! जो कोई छली नर तेरे पास सोते में,
पिता भाई बन तुझे सताने का उपक्रम कर लेवें;
उस क्षण वीर्यवान, साहसी, अतुल वीर पति तेरा,
उस हिजड़े समान घातक को हटा त्वरित ही देवे।

मंत्र- यस्त्वा स्वपन्ती त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम्। छायामिव प्र तान्त्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत्।।८।।

काव्यार्थ-

हे स्त्री! जो कोई दुष्ट नर तुझ सोती को छलता,
अथवा तुझ जगती स्त्री को मार डालना चाहे;
उस क्षण तेरा पति तम-नाशक, भ्रमण-शील सूरज सम,
उसे नष्ट कर दे, वह मृत्यु पाता हुआ कराहे।

मंत्र- यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम्। तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमाञ्जिवम्।।६।।

काव्यार्थ-

इस नारी को गर्भ-पात करने वाली, मृत-वत्सा,
जो दुखदायी रोग बनाता, करता इस पर शासन,

हे औषधि! इस स्त्री के उस रोग कामना-रोधक,
तथा कान्ति संहारक का कर पूर्ण रीति से नाशन।

मंत्र- ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः। कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करूमाः स्रिमासः। तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान्वि नाशय।।१०।।

काव्यार्थ-

गदहे समान शब्द को करते हुए कीड़े,
संध्या के समय में जो चारो ओर नाचते;
जो टेढ़े-मेढ़े अग्र भाग सुई सा रखाते,
जो मन को पीर देते हैं, कुशब्द बांचतें;
हे अति ही हितू औषधि तू गंधके द्वारा,
उनको विनाश, उनको तापकारी आंच दे।

क्षत्र- ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि विभ्रति। क्लीबाहव प्रनृत्यन्तो बने ये कुर्वते घोषंतानितो नाशयामसि।।११।।

काव्यार्थ-

जो भिनभिनाते रहते हैं, थोड़ा सा चमकते,
छेदन की शक्ति, दुष्ट कर्म रखते, न डरते;
जो हिंजड़ों के समान नाचते हुए चलते,
सब ही जगह फैले हुए रहते हैं, न टरते,
जो घर में कूक शब्द किया करते हैं सदा,
हम उनका यहां से सदैव नाश हैं करते।

मंत्र- ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुंदिवः। आरायान्वस्तवासिनो दुर्गधीन् लोहितास्यान् मककान् नाशयामसि।।१२।।

काव्यार्थ-

जो नभ बीच, चमकते रवि को सहन नहीं कर सकते,
जो बकरे समान वस्त्रों के, रक्तिम मुंह से टकते,

आता है जो पास, उसी को सत्व-हीन करते जो,
उन कीटों का हनन किया करते हम, रंच न थकते।

मंत्र- य आत्मानमतिमात्रमंस अधाय बिभ्रति। स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय।।१३।।

काव्यार्थ-

जो निज को परपीर करन में सदा लगाये रखते,
नारी-गर्भ में पीड़ा देकर उसे मुदित हो लखते,
है वैभव धारी नर! उन सभी रोग क्रिमियों को,
नष्ट करो, अविलम्ब, रहें वह मृत्यु, स्वाद को चखते।

मंत्र- ये पूर्वे वध्वोऽयन्तिहस्ते शृङ्गाणणि बिभ्रतः। आपाकेस्थाःप्रहासिन स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि।।१४।।

काव्यार्थ-

रोग-प्रदाता जो कीड़े निज हाथों में सींगों को-
धारण करते हुए नारी के सम्मुख रहें विचरते;
पाकशाला में रहें, हंसाते, बैठ ज्योति करते जो,
उन कीड़ों का नाश यहां से हम प्रतिदिन ही करते।

मंत्र- येषां पश्चात्प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा। खलजा ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय।।१५।।

काव्यार्थ-

जिन कीड़ों के पीछे को पांव, आगे ऐड़ियां,
जिनका कि मुख भी आगे की ओर बना हुआ;
वह कीड़े जो उत्पन्न हुआ करते हैं खल में,
गोबर के धुएं ने भी है जिनको जना हुआ।
जो रखते बड़ा मुंह हैं, बड़ा कष्ट बढ़ाते,
बढ़ अण्ड कोष जिनका घड़े सा घना हुआ;

जो रेंग कर खाते हैं, इन्हें अपने ज्ञान से,
रख वैद्य इस स्त्री के निकट से हना हुआ।

मंत्र- पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः। अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्यपतिः स्वपतिं स्त्रियम्।।१६।।

काव्यार्थ-

व्यवहार से गिरा, तत्व-मर्मज्ञों का निन्दक नर,
होवे क्षीण विशेष तथा स्त्री-मुख से वंचित हो;
दुश्चरित्र वह व्यक्ति, छोड़कर जो अपनी पत्नी को ,
अन्य से करता कुकर्म है, कामुकता-संचित हो;
हे भय-मोचक पुरूष! उसे तू इस औषधि के द्वारा
शीध्र गिरा दे, सभी जनों के द्वारा वह निन्दित हो।

मंत्र- उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम्। उपरोन्त मुदुम्बलं तुण्डेलमुत शालुडम्। पदा प्रविध्य पाष्ण्यी स्थालीं गौरिव ऽस्पन्दना।।१७।।

काव्यार्थ-

हे राजन! जो व्यक्ति बहुत ही झूठ बोलने वाले,
तथा व्यक्ति जो मुनियों को हैं बहुत कष्ट पहुंचाते;
करते हैं स्पर्श बुरा जो, मार-पीट करते हैं,
अधिक अधिक ही व्यक्ति जो कहं आते हैं कहं जाते;
जो हिंसक हैं, तोड़-फोड़ करते हैं, बहुत घमंडी,
जिन दुष्टों को सदा कुकर्मी जन ही हैं बहु भाते;
ऐसों को तू छेद जैसे कि हांडी को एड़ी से,
तथा कूदने वाली गौ को होती है ज्यों लातें।

मंत्र- यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जतं वा मारयाति ते पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम्।।१८।।

काव्यार्थ-

हे स्त्री! जो नीच व्यक्ति तव गर्भ नष्ट करता हैं,
अथवा तव उत्पन्न हुए बालक को प्रण हरे;

उस क्षण उग्र धनुष वाला अति पराक्रमी नर पुंगव,
उसकी छाती पर प्रहारकर उसके प्राण हरे।

मंत्र- ये अम्नो जातान्मारयन्ति सूतिका अनुशेरते। स्त्रीभगान्पिङ्गे गन्धर्वान्वातो अभ्रमिवाजतु।।१६।।

काव्यार्थ-

जो पीड़क उत्पन्न हुए बालक को नष्ट करें,
जिनकी करनी सूतिका नारी को अप्रिय बनाती,
स्त्री सेवनकर्ता, दुःखदायी पीड़क को प्रतापी-
व्यक्ति हटा देवे ज्यों मेघों को वायु हैं हटाती।

मंत्र- परिसृष्टं धारयतु यद्धितं माव पादि तत्। गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ।।२०।।

काव्यार्थ-

हे स्त्री! तू गर्भ धर समुचित कर्मों को करते,
तेरा धारा हुआ गर्भ किंचित भी नहीं गिर पाये;
नियमित धारण योग्य, नित्य संबंध लिये, भय मोचक,
बल अरू विक्रम तेरे गर्भ की रक्षा करते जायें।

मंत्र- पवीनसात्तङ्गल्वा३च्छायकादुत नग्नकात्। प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गः परिपातु किमीदिनः।।२१।।

काव्यार्थ-

वह जो वज्र समान दिखायी देते हैं टेढ़े से,
जो कि सदैव गतियों में रहते अवरोध रचाये;
जो कि काटने वाले हैं अरू नग्न बनाने वाले,
जो करते अपहरण तथा रहते हैं लूट मचाये;
इनसे प्रजा सुरक्षा अरू पति की सुख वृद्धि हेतु,
तुझे प्रतापी पराक्रमी नर सब ही भांति बचाये।

मंत्र- द्वयास्याच्चतुररक्षात्पंचपादादनङ्गुरेः। वृन्तादभि प्रसर्पतः परि पाहि वरीवृतात्।।२२।।

काव्यार्थ-

विद्वान् हे मनुष्य! तू उन कीटों से बचा,
जो दुमुंहे, चतुर्अक्ष, पांच पैर हैं रखते;
बिन उंगलियो वाले, जो फल पत्र आदि के-
डंठल के चारो ओर रेंगते हैं उचकते;
नाना विधि आकर जो वास करते घरों में,
जो टेढ़े-मेढ़े घूमते रहते, नहीं थकते।

मंत्र- य आमं मांसमदन्ति पौरूषेयं च ये क्रविः। गर्भान्खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि।।२३।।

काव्यार्थ-

जो कीड़े कच्चे मांस का भक्षण किया करते,
अरू जो पुरूष के मांस को खाकर रहें खिलते;
जो क्लेश के पहुंचाने वाले, गर्भों को खाते,
हम उनका नाश करते हुए नित यहां मिलते।

मंत्र- ये सूर्यात्परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वसुरादधि। बजस्चतेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम्।।२४।।

काव्यार्थ--

जैसे कोई वधू श्वसुर से छिपती है, वैसे ही
चोर आदि डरपोक सूर्य से अपना बदन छिपायें;
पराक्रमी व्यक्ति ऐसे डरपोक, कुकर्मी दुष्टों-
के हृदयों का लगातार छेदन करके सुख पायें।

मंत्र- पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन्। आण्डादो गर्भान्मा दभन्बाधस्वेतः किमीदिनः।।२५।।

काव्यार्थ-

पुरूषार्थी बलवान पुरूष, कर जनित शिशु की रक्षा,
तथा न दुःख पहुंचाओ किंचित स्त्री तथा पुरूष को,
गर्भों को नहीं नष्ट करें अण्डों को खाने वाले,
सकल लुटरे मार भगाओ, कर दो स्वच्द कलुष को।

मंत्र- अप्रजास्त्वं मार्तवत्समाद्रादमधमावयम्। वृक्षादिवस्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुंच तत्।।२६।।

काव्यार्थ-

बन्ध्यापन, बच्चों का मरना, रूदन, पाप का भोग,
सकल दिशाओं से दुःख क्लेश जो कि हुआ करते हैं,
इनको अप्रिय थली पर छोड़ो, शुभ-कर्मी मानव से-
यह सब होवें दूर, वृक्ष से फूल यथा झरते हैं।

सूक्त ७

मंत्र- यो बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरूत पृश्नयः। असिक्नीः कृष्णा औषधीः सर्वा अच्छावदामसि।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

कई औषधियाँ स्वास्थ्य की उत्पत्ति के हेतु।
कई बढ़ातीं वीर्य को कई पुष्टियाँ देतु।।
नाना रूप रंग की यह औषधियाँ होय।
कई काले वर्ण की श्याम वर्ण की कोय।।
विविध रूप रंग वाली यह रखतीं रोग प्रजार।
सेवनार्थ हम चाहते इनको भली प्रकार।

मंत्र- त्रायन्तामिमं पुरूषं यक्ष्माद्देवेषितादधि। यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरूधां बभूव।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

औषधियों की मात भू पिता सूर्य अति रूद्र।
तथा मूल औषधियों का लहरा रहा समुद्र।।
उन्माद से जनित जो राज-रोग नर पाय।
उससे औषधियां गुण सदा बचाती जाँय।।

मंत्र- आपो अग्रं दिव्या औषधयः तास्ते यक्ष्ममेनस्य१ मङ्गादङ्गादनीनशन।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

आदि सृष्टि से रहा जल दिव्य गुणों से युक्त।
अरू औषधियां भी रहीं दिव्य गुणों से ठुक्त।।
तुझे पाप से हुआ जो भीषण राज-रोग।
यह उसको प्रति अंग से हन कर करे निरोग।।

मंत्र- प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गा प्रतन्वतारोषधीरा वदामि। अंशुमतीः काण्डनार्या विशाखा ह्यामि ते वीरूधो वैश्वदेवीरूग्राः पुरूषजीवनीः।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

औषधियां जो कि हैं विशेष विस्तार वाली,
जो कि रखती हैं बहु गुच्छों के भांड को;
जो कि एक कोंपल की फैलती बहुत रहे,
रखते जिन्हें हैं वैद्य मानव के त्राण को।
ऊपर बहुत कोंपलों की, बड़े गुद्दो वाली,
धारती टहनियों के बहु-बहु वाण को;
जो समस्त दिव्य गुण युक्त, उग्र, मानव का-
जीवन बढ़ातीं, उसे देतीं नव प्राण को।।

दोहा

विविध बूटियों रूप में उगें जो विविध प्रकार।
उन औषधियों की तेरे हित में करूं पुकार।।

मंत्र- यत् वः सहः सहमाना वीर्यंश्यच्च वो बलम्।तेनममस्माद्यक्ष्मात्पुरूषं मुंचतौषधीरथो कृणोमि भेषजम्।।५।।

काव्यार्थ- दोहा

रोग-हर औषधियों ! जो सामर्थ्य तव पास।
तुममें जो वीरत्व अरू बल कर रहा प्रकाश।।
उससे दो इस पुरूष को राज-रोग से त्राण।
इस ही के हित मेरा भी यह औषधि निर्माण।।

मंत्र- जीवलांनधारिषां जीवन्तीमोषधीमहम्। अरून्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पा मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये।।६।।

मंत्र- इहायन्तु प्रचेतसो मेदिनीवर्चसो मम। यथेमं पारयामसि पुरूषं दुरियादधि।।७।।

काव्यार्थ- कवित्त

जीवन की दाता, दीर्ध आयु की प्रदाता तथा-
जीवन में आयी रूकावट जो भगा सके;
उन्नति दिलाती, नहीं हानि पहुंचाती, जो कि-
शुभता के बीच इस नर को पगा सके;
ऐसी फूलों वाली, मधु-रस डाली औषधि की-
करता पुकार वो निरोगता जगा सके,
मेरे वचनों से वह पधारे जिससे कि पीर-
दुःख दायिनी से इसे पार हम लगा सकें।।

मंत्र- अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवा। ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्भेषजीः सन्त्वाभृताः।।८।।

काव्यार्थ- दोहा

जल धारक औषधियाँ जो जठराग्नि को बढ़ांय।
पुनः पुनः वह नवीन सी बढ़ती हुईं लखाय।।
वह दृढ़ गुण धारण किये नाम सहस्रों पाय।
तथा यथावत् भरी रह भय निकालती जॉय।।

मंत्र- अवकोल्वा उदकात्मान औषधयः। विऋृषजन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्गयः।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

औषधियां सुखपूर्ण, जल जिन का आत्मा होय।
तीक्ष्ण काटतीं रोग को रंच न रहता कोय।।
औषधियां नर-पीर को नष्ट करें त्रिकाल।
रोग पाप रूपी त्वरित तन से देंय निकाल।।

मंत्र- उन्मुंचनतीर्विवरूणा उग्रा या विषदूषणीः। अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यस्ता इहा यन्त्वोषधीः।।१०।।

काव्यार्थ-

औषधियां जो कि रोगों से मुक्ति को दिलातीं,
स्वीकार करने योग्य जो विशेष रूप से;
जो तीव्र विष का नाश भी करती रहें, ऐसी-
औषधियां सभी प्राप्त हों पृथिवी अनूप से।

मंत्र- अपक्राताः : सहीयसीर्वीरूधो या अभिष्टुताः। विराम त्रायन्तामस्मिन्ग्रामे ग्रामश्वं पुरूषं पशुम्।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

औषधियाँ उत्तम गुणी तथा अधिक बल पूर।
मोल लिया, जिनको किया कभी न निज से दूर।।
गौ, घोड़े, पशु और नर इस ग्राम के बीच।
तत् रक्षा औषधि करें, दूर रोग को खींच।।

मंत्र- मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरूधां बभूव। मधुमत्पर्णं मधुमत्पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य भक्षो घृतमन्नं दुह्रतां गोपुरोगवमत्।।१२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

औषधियाँ जो कि हमें जीवन प्रदानती हैं,
इन सब ही का मूल मधुरता भूर में;
मध्य भाग इनका मधुरता भरा है तथा-
पर्ण-पर्ण इनके मधुरता का तूर लें।
फूल हैं मधुर, मधु-सिंचित समस्त तन,
अमृत की भोगी, क्लीवताएं कर दूर दें;
गौ को अग्रगामी रखता जो है सदैव, ऐसा-
पुष्टिकर घृत अरू अन्न भरपूर दें।।

मंत्र- यावतीःकियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुंचन्त्वं हसः।।१३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जितनी कितनी औषधि दिखतीं पृथिवी बीच।
नाना गुण परिमाण की हर लेती हैं मीच।।
सहस्र पोषणों से भरी औषधियाँ जो लखाय।
वह पाप रूपी मरण पीड़ा देय भगाय।।

मंत्र- वैयाघ्रो मणिर्वीरूधां त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः। अमीवाः सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्मत्।।१४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

औषधियों में श्रेष्ठ गुण होता बाघ समान।
मणि समान रक्षा करे पीड़ा करे नमान।।
औषधि-गुण सब रोग हन उनको कर दे धूर।
अरू तत कृमि भी मार दे ले जाकर के दूर।।

मंत्र- सिंहस्येव स्तनथो सं विजन्तेऽग्नेरिव विजन्त आमृताभ्यः। गवां यक्ष्मः पुरूषाणां वीरूद्भिरतिनुत्तो नाव्या एतु स्रोत्याः।।१५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जलती अग्नि से भगें प्राणी डर कर दूर।
तथा गरजते सिंह से भी होते भयपूर।।
वैसे ही औषधियाँ जो पुष्ट हुईं सब रीत।
उनके लाने पर सभी रोग होंय भयभीत।।
गउओं तथा मनुष्यों के राजरोग दुःख घूर।
नौका द्वारा नदियों से चले जांय अति दूर।।

मंत्र- मुमुचाना औषधयोऽग्नेवैश्वानरादधि। भूमिं सन्त्वतीरित यासां राजा वनस्पति।।१६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अहे रोग-हर औषधि वनस्पति तव भूप।
आश्रय लो परमेश का जो है अग्नि रूप।।
सभी नरों का वह हितू हित करता सर्वत्र।
तद् अनुरूप भूमि पर फैलाओ निज सत्र।।

मंत्र- या रोहन्त्याङ्गिरसी पर्वतेषु समेषु च। ता नः पयस्वतीः। शिवा औषधीः सन्तु शं हृदे।।१७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

औषधियाँ जिनका दिया है ऋषियों ने ज्ञान।
जो उगती हैं पर्वतों अरू समतल मैदान।।
वह सब दुग्ध प्रदायिनी कल्याणों को बोंय।
तथा हमारे हृदय को शांति प्रदाता होंय।।

मंत्र- याश्चाहं वेद वीरूधो याश्च पश्यामि चक्षुषा। अज्ञाता जानीमश्च या यासु विघ्मून च संभृतम्।।१८।।

मंत्र- सर्वाः समग्राओषधीर्वोधन्तु वचसो मम्। यथेमं पारयामसि पुरूषं दुरितादधि।।१६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जिन जिन औषधियों को मैं जानता हूं, तथा-
मम नेत्र जिन जिन औषधियों को लखें;
औषधियाँ जाना जिनको न, अब जानते हैं,
पोषण की शक्तियों से जो कि निज को ढकें।
ऐसा जिन्हें जानते हैं, औषधियां वह मेरे-
वचन के अनुकूल रह मुझको तकें,
ऐसा करिये सदैव हम हेतु, जिससे कि,
इस नर पुंगव को कष्ट से बचा सकें।।

मंत्र- अश्वत्थो दर्भो वीरूधाः सोमो राजामृतं हविः।ब्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौं।।२०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

औषधि-राजा सोम अरू दर्भ व पीपल वृक्ष।
ग्राह्य पदारथ हैं सभी अमृत के समकक्ष।।
चावल अरू जौ दोनों ही पुष्टि प्रदाता होय।
पीड़ा का शोधन करें रहती भीत न कोय।।

मंत्र- उज्जिहीध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधी। यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेलसावति।।२१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मेघ गरज कर जिस समय बड़ा शब्द उद्गात।
तब वह जल से तृप्त कर तुमसे कहता बात।।
है औषध्यिों! पृथिवी को माता रखतीं आप।
ऊपर उठकर पृथिवी के तल पर जाओ व्याप।।

मंत्र- तस्यसामृतस्येमं बलं पुरूषं पाययामसि। अथोकृणोमि भेषजं यथासच्छतहायनः।।२२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मेघ पुष्टिकारक अमर के बल का शुभ सार।
औषधियों से ले इसे देते भली प्रकार।।
औषधियाँ रचते, भगे इसका दूर अमर्ष।
रोग रहित जीवन जिये यह अपना सौ वर्ष।।

मंत्र- वराहो वेद वीरूधंन कुलो वेद भेषजीम्। सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे।।२३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सुअर औषधि जानता नेवले को पहचान।
सर्प तथा गन्धर्व सब रखते जिनका ज्ञान।।
उन सब ही का इस पुरूष की रक्षा के हेतु।
आवाहन करता हूं मैं रोग मिटा, दें चेतु।।

मंत्र- याः सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदुः। वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्त्रिणः। मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे।।२४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ऋषियों कही औषधि जिन्हें गरूण रहे पहचान।
दिव्य औषधि जिनका है पक्षी गण को ज्ञान।।
जाने जिनको पांव मय जीव पक्षी अरू हंस।
जो औषधियाँ जानते सभी मृगों को वंश।।
उन सब ही को इस पुरूष की रक्षा के हेतु।
आवाहन करता हूं मैं देने इसको चेतु।।

मंत्र- यावतीनामोषधीनां गाव प्राश्नन्त्यं घ्न्या यावतीनामजावयः। तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः।।२५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जिनको गाय अबध्य औ भेड़ बकरियाँ लेतु।
औषधियाँ परिपुष्ट वह सुख देवें तव हेतु।।

मंत्र- यावतीषु मनुष्याः भेषजुं भिषजो विदुः। तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि।।२६।।

काव्यार्थ-

औषधियाँ जिनसे वैद्य चिकित्सा हैं जानते,
होते बहुत प्रसन्न हैं रोगी में ओज भर;
मैं रोग जीत लेने की औषधियाँ वह सभी,
सब ओर से तेरे लिये लाता हूँ खोज कर।

मंत्र- पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत। संमातरइव दुह्रामस्मा अरिष्टतातये।।२७।।

काव्यार्थ- दोहा

औषधियाँ फूलों सहित पल्लव वाली सोंय।
उनमें फल लगते हों या बिन फल वाली होय।।
वह उत्तम माताओं सी हों दयालुता खान।
इस नर की सुख शांति हित निज रस करें प्रदान।।

मंत्र- उत्त्वाहार्ष पंचशलादथो दशशलादुत। अथो यमस्य पड्बीशाद्विश्वस्माद्देवल्बिषात्।।२८।।

काव्यार्थ-

मैंने तुझे पांच तथा दस भांति के दुःख से,
अरू न्यायकारी राजा के पाशों सेझुठाया,
प्रभु प्रति किये अपराध से तुझको पृथक करके,
मैंने तुझे औषधियों से ऊपर को उठाया।

(नोट- पांच-पंचभूत, दस-दस दिशाओं)

सूक्त ८

मंत्र- इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरन्दरः। यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः।।१।।

काव्यार्थ-

मथता ही रहता है सदैव शत्रुओं को जो,
जो शक्तिमान शत्रुओं के गढ़ को तोड़ता;
जो शूरवीर है, महा प्रतापवान है,
ऐसा जो राजा शत्रु को मथना न छोड़ता;
हम उसकी शक्ति से हजारों औ हजारों ही,
शत्रु संहारें, शत्रु रहे सिर को फोड़ता।

मंत्र- पूतिरज्जुरूपध्मानी पूतिं सेनां कृणोत्वमूम। धूममग्निं परादृश्यामित्रा हृत्स्वा दधतां भयम्।।२।।

काव्यार्थ-

शस्त्रों की सुलसगती हुई बारूद की दुर्गन्ध,
उस शत्रु सैन्य को सदा दुर्गन्धमय करे;
वह अग्नि औ धुएं को देख करके दूर से,
अपने हृदय के बीच में अत्यन्त भय भरे।

मंत्र- अमूनश्वत्थ निः शृणीहि खदामून्खदिराजिरम्। ताजद्भङ्गइव भज्यन्तां हन्त्वेनान्वधको वधैः।।३।।

काव्यार्थ-

घोड़े पर चढ़े वीर तू शत्रु को कुचल दे,
शत्रु को खाने वाले तू शत्रु को शीघ्र खा;
वे लोग शीघ्र टूट जाने वाले सन समान
अविलम्ब टूट जांय दिखा ऐसी तीव्रता;
बेधक लिये हथियार मारू सेनापति, उनका-
वध करने में सदैव दिखाये प्रवीणता।

मंत्र- परूषानमून्परूषाह्वः कृणोतुहन्त्वेनान्वधको वधैः क्षिप्रं शरइवभज्यन्तां बृहज्जालेन सन्दिताः।।४।।

काव्यार्थ-

सेनापति कठोरता से शत्रु को ललकार,
उन अपने सैनिकों को दे कठोरता फबी;
मारू रहे शस्त्रों से वीर मारू सेनापति,
इन शत्रुओं को मारे, न रूकता मिले कभी;
सेनापति के बड़े जाल से बंधे हुए,
सरकण्डे के समान टूट जाँय वह सभी।

मंत्र- अन्तरिक्षं जानमासीजालदण्डा दिशो महीः। तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपावपत्।।५।।

काव्यार्थ-

यह फैला हुआ अन्तरिक्ष जाल था, तथा-
थे जाल के डण्डे दिशाएं सब बड़ी विस्तृत;
उस जाल द्वारा घेर शत्रुओं की सेना को,
सेनापति ने मार भगा, फोड़ दी किस्मत।

मंत्र- बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः। तेन शत्रूनाभि सर्वान्न्युब्ज यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम्।।६।।

काव्यार्थ-

सेना के साथ रहने वाले शक्तिमय बड़े-
सेनापति एक अति विशाल जाल हैं लाये;
उस जाल से सब शत्रुओं को सब ओर से,
आधीन कर तू, कोई नहीं छूटने पाये।

मंत्र- बृहत्तेजालं बृहत् इन्द्र शर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य। तेन शतं सहस्रम युतंन्यर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया।।७।।

काव्यार्थ-

हे सैकड़ों सामर्थ्यों के, सहस्रों से पूजित,
महनीय प्रतापी, हे शूर-वीर सैन्य-पति;

तेरा है बड़ा जाल, उसी जाल के द्वारा,
तू घेर शत्रुओं को, उनकी करता दुर्गति;
तू अपनी सेना द्वारा भी उन्हें हैं मारता,
करता उन्हें मतिभ्रम तथा हर लेता है मति;
तू सैकड़ों, हजारों, लाखों और करोड़ों,
अरि सैनिकों को मारता, करता है पूर्ण क्षति।

मंत्र- अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान्। तेनाहमिन्द्रजालेनामूस्तमसाभि दधामि सर्वान्।।८।।

काव्यार्थ-

महनीय शक्तिशाली शूरवीर सेनापति-
का लोक यह विस्तारयुक्त एक जाल था;
उस सेनापति के जाल से उन सब ही शत्रुओं-
को घेरता मैं अंध से जो उनको काल था।

मंत्र- सेदिरूग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना। श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमूनाभि दधामि सर्वान्।।६।।

काव्यार्थ-

मैं दुष्ट शत्रुओं के बीच में महामारी,
निर्धनता भारी और अकथ पीर को धरता;
आलस्य औ प्रमाद, मोह, कष्ट के द्वारा,
इन सब ही शत्रुओं को मैं घेरा किया करता।

मंत्र- मृत्यवेऽमून्प्रयच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः। मृत्योर्मे अघला दूतस्तेभ्य एनान्प्रति नयामि बद्ध्वा।।१०।।

काव्यार्थ-

मृत्यु के सुदृढ़ पाशों में बंधे हुए शत्रु,
इन पापियों को मृत्यु के हाथों में सौंपता;
उन मृत्यु के दुखदायी दूत घातकों के पास,
ले जाता पास, मृत्यु की भट्टी में झोंकता।

मंत्र- नयतामून्मृत्युदूता यमदूताअपोम्भत। परः सहस्राहन्यन्तां तृणोदूवेनान्मत्यं भवस्य।।११।।

काव्यार्थ-

इन शत्रुओं को ले चलो हे मृत्यु के दूतों!
हे यम के दूतों! बांध लो इनको बहुत कस कर;
कर डाले इन्हें चूर-चूर राजा का घूंसा,
इन सहस्राधिकों को मृत्यु मार दे डस कर।

मंत्र- साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्य यन्त्योजसा। रूद्रा एकं वसव एकमादित्यैरेक उद्यतः।।१२।।

काव्यार्थ-

इस जाल का एक दण्ड परोपकार के साधक,
एक दण्ड को शत्रु के विनाशक जो रहे हैं;
एक दण्ड को उत्तम पुरूष बल से उठा चलते,
एक पूर्ण विद्या वाले अपने हाथ गहे हैं।

मंत्र- विश्वे देवा उपरिष्टादुब्जन्तो यन्त्वोजसा। मध्येन ध्नन्तोयन्तु सेनामांगिरसोमहीम्।।१३।।

काव्यार्थ-

सब विजय-कामी वीर अपने अतुल बल के साथ,
ऊपर से शत्रु सेना को दबा लिया करें;
अरू विज्ञ सेनापति समस्त शत्रु की बड़ी-
सेना का नाश मध्य भाग से किया करे।

मंत्र- वनस्पतीन्वानस्पत्यानोषधीरूतवीरूधः। द्विपाच्चतुताष्पादिणामि यथा सेनाममूं हनन्।।१४।।

काव्यार्थ-

जो सेवनीय शास्त्रों का पालन किया करते,
अरू रहते जो पदार्थ सदा उनके पास में;

औषधियाँ, जड़ी-बूटियाँ, दो पैर वाले, औ-
चौपाये जो रखते सदा हमको हुलास में;
उनको सदैव प्रेरता रहता हूं, कि जिससे
होवें वह सहायक मेरे, अरि-दल विनाश में।

मंत्र- गन्धर्वाप्सरसः सर्पान्देवान्पुण्यजनान्पितॄन्।दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन्।।१५।।

काव्यार्थ-

आकाश में विचरण किया करते हैं जो, तथा-
पृथ्वी को धारते हैं जो सदा हुलास में;
सर्प समान तीव्र दृष्टि के जो रहे हैं,
रहते जो पुण्य आत्मा विजय की आस में;
अपने जो पितर पूज्य हैं, महनीय हैं बड़े
गोचर व अगोचर सभी यह जो प्रकाश में;
उनको सदैव प्रेरता रहता हूं कि जिससे,
होवें वह सहायक मेरे अरिदल विनाश में।

मंत्र- इम उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे। अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः।।१६।।

काव्यार्थ-

यह मृत्युपाश फैंले हैं, इन बीच में कोई-
रख पांव छूटता न किसी भी प्रयास से;
यह पाश उन समस्त शत्रुओं की सेना का,
कर डालेगा विनाश सहस्रों प्रकार से।

मंत्र- धर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः। भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम्।।१७।।

काव्यार्थ-

अग्नि के द्वारा प्रज्ज्वलित ताप समान यह-
मम आत्मसमर्पण सहस्रों क्लेशों का नाशक;

सुख के जनक विचित्र-बाहु प्राणवायु तुम,
अरू हे अपान वायु सर्व क्लेशों के डासक;
तुम दोनों ही थिरता को धार, शत्रु-सेना को-
मार भगा, बन के चलो ज्योति प्रकाशक।

मंत्र- मृत्योराषमा पद्यान्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम्। इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम्।।१८।।

काव्यार्थ-

मृत्यु का कष्ट, भूख, महामारी, वध व भय-
के बीच में वह लोग करें निज हिया खरो;
हे प्राण-अपान! तन की शक्ति, आत्म-शक्ति से
तुम दोनों शत्रु सेना का हनन किया करो।

मंत्र- पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा। बृहस्पतिप्रणुत्तानां ममीषां मोचिं कश्चन।।१६।।

काव्यार्थ-

हे शत्रुओं! तुम हार करके त्रस्त ही रहो,
धकियाए हुए ज्ञानियों से, भाग जाओ तुम;
बृहस्पति द्वारा धकेले तुम सभी में से-
छूटे न एक भी, सभी भागें दबाये दुम।

मंत्र- अव पद्यान्तामेषामायुधानि मा शकन्प्रतिधामिषुम्। अथैषां बहु बिभ्यतामिषवो घ्नतु।।२०।।

काव्यार्थ-

इन शत्रुओं के अस्त्र-शस्त्र गिर पड़े तथा-
प्रतिपक्षी वाणों को न सहन वे किया करें;
अत्यन्त ही भयभीत इनके वाण जो चलें,
मतिभ्रष्ट हुए इन्हीं का धायल हिया करें।

मंत्र- शं क्रोशतामेनान्द्यावापृथिवी समस्तरिक्षं सह देवताभिः। मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विध्नाना उप यन्तु मृत्युम्।।२१।।

काव्यार्थ-

द्यु लोक पृथिवी लोक में यह निन्दनीय हों,
सब लोकों साथ व्योम की निन्दा को यह लभें;
यह लोग ज्ञानियों को कभी प्राप्त ना करें,
किंचित भी प्रतिष्ठा को प्राप्त कर नहीं फबें;
ईर्ष्या व स्वार्थ और अविश्वास से भरें,
टकरायें एक दूसरे से, पायें मृत्यु को सभें।

मंत्र- दिशश्चतस्रोऽश्वतर्यो देवरथस्य पुराडाशाः शफा अन्तरिक्षमुद्धिः। द्यावापृथिवी पक्षसी ऋतवोऽभीशवोऽन्तर्देशाः किंकरा वाक्परिरथ्यम्।।२२।।

काव्यार्थ-

जो हैं विजय कामी, , उन्हें चारों दिशाऐं ही-
रथ की हैं घोड़ियाँ, पुरोडाश खुर समान हैं;
है अन्तरिक्ष रथ का उपरिभाग तथा द्यु-
अरू पृथिवी लोक उनको द्वय पक्खों समान हैं;
ऋतुएं हैं रथ की रस्सियाँ, अन्तर्दिशाएं सब-
सेवक हैं, जिनका सेवा में रहता रूझान हैं;
वाणी बनी रथ-पुट्ठी, ऐसे रथ में वह चढ़कर,
पाते हैं विजय, औ बना करते महान हैं।

मंत्र- संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम्। इन्द्रः सव्यष्ठाश्चन्द्रमाः सारथिः।।२३।।

काव्यार्थ-

रथ जानियेगा आप संवत्सर तथा-
परिवत्सर उसके बीच बैठने की जगह है;
यह ज्योतिमान सृष्टि जुए का है दण्ड, औ-
अग्नि है अग्रभाग रहा जो कि अजय है;
दाएं है चन्द्रमा रथी, रवि वाम बैठता,
जिसके लिये सदैव अंध रहता असह है।

मंत्र- इतोजयेतो वि जय संजय जय स्वाहा। इमे जयन्तु परामी जयन्ता। सवाहैभ्यो दुराहामीभ्यः। नीललोहितेना मूनभ्यवतनोमि।।२४।।

काव्यार्थ-

जय प्राप्त कर यहां से, विजयी हो यहां से,
अच्छी प्रकार जय को प्राप्त करता हुआ चल;
'विजय' यह तेरे हेतु है सुवाणी, और यह-
जीतें हमारे, शत्रु लोग हारें प्रतिपल;
इन लोगों हेतु शुभ वचन, उन शत्रु लोगों को-
अशुभ वचन, उनको जलाये नित्य ही अनल;
निधियों की उत्पत्ति से उन शत्रु लोगों को-
मैं सब प्रकार से गिरा, देता नहीं हूँ कल।

सूक्त ६

मंत्र- कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात्कतमस्याः पृथिव्याः। वस्तौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अपने सामर्थ्य के बल दोनों ईश्वर जीव।
सब लोकों सब कालों में व्याप्त रहें अतीव।।
उन ईश्वर अरू जीव से अपने सरल सुभाय।
विविध कर्म प्रकृति के होते हुए लखाय।।
महा बुद्धिमान प्रभु जग जीवन के हेत।
प्रकृति नटी को सर्वविधि चेष्टाएं है देत।।

मंत्र- यो अक्रन्दयत्सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः। वत्सः कामदुधो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः।।२।।

काव्यार्थ-

रच कर ऊंचे, नीचे मध्य लोक रूप घर तीन भुजा का,
जिस सोते ने निज महिमा से जल प्रक्षुब्ध बनाया;
उसी कामना पूरक तथा बोलने वाले परमेश्वर ने,
ईश्वरी प्रकृति की गुहा में दूरों निज विस्तार फैलाया।

मंत्र- यानि त्रीणि बृहन्ति येषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम्। ब्रह्मैनद्विद्यात्तपसा विपश्चिद्या स्मिन्नेकं यज्यते यस्मिन्नेकं।।३।।

काव्यार्थ-

सत,रज अरू तम गुणों के द्वारा प्रभु ने सृष्टि रची है,
वह चौथा ही ब्रह्म वेदवाणी को प्रकटाता है;
ब्रह्म-वेत्ता विज्ञ ब्रह्म को तप के द्वारा जाने,
जिसके लिये एक मन का शुभ योग किया जाता है।

मंत्र- बृहतः परि समामानि षष्ठात्पंचाधि निर्मिता। बृहद्बृहत्यानिर्मितं कुतोऽधिबृहती मिता।।४।।

काव्यार्थ-

पृथिवी, जल, तेज, वायु अरू विस्तृत नभ से बढ़कर,
बड़े छठे ब्रह्म से निर्मित पाँच भूत हुए हैं;
अति विस्तृत जग उसी प्रकृति के द्वारा बना हुआ है,
वह शक्ति ले जन्म उसी से उन्नति शिखर छुए हैं।

मंत्र- बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता। माया जज्ञे मायाया मातली परि।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रभु-सामर्थ्य से हुआ तन्मात्रा का विहान।
अरू तन्मात्रा से बनी सृष्टि दृश्यमान।।
बुद्धि रूप प्रभु से बनी बुद्धि ज्ञान सम्पन्न।
रथवान मन जीव का भी प्रभु से उत्पन्न।।

मंत्र- वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद्रोदसी विबबाधे अग्निः। ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः।।६।।

काव्यार्थ- कवित्त

ऊपर विराजमान द्यु, प्रभु-प्रतिमा है,
प्रभु जो सभी नरों का हितकारी रहता;
वह प्राणियों के हित कारण समस्त लोक-
अलग-अलग कर रोकता है महता।
उसी पंच-महाभूतों की अपेक्षा छठे प्रभु-
से ज्योति के श्रेष्ठ गुण सृष्टि काल गहता;
अरू वह गुण-पुंज यहां से प्रलय के काल,
उसी छठे प्रभु ओर ऊर्ध्व दिशा बहता।।

मंत्र- षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च। विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सुखिभ्यः।।७।।

काव्यार्थ- दोहा

जो है ध्यान किये अरू ध्यान योग्य पदार्थ।
हे विद्वान्! तूने तत् ध्यान किया है सार्थ।।
जो छः इन्द्रिय रूपी ऋषि अति निश्चय के साथ।
प्रभु शक्ति विविधेश्वरी की कहते हैं गाथ।।
हे विद्वान्! तुझसे हम उसी शक्ति की बात।
पूछ रहे, हमसे कहो विविध भांति से गाथ।।

मंत्र- यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् यस्या व्रते प्रसवे यज्ञमेंजति सा विराडृषयः परमे व्योमन्।।८।।

काव्यार्थ- दोहा

ऋषिगण! सृष्टि समय में योग-वियोग हिलोर।
जिसके चलने से बढ़ा करती उन्नति ओर।।
जिस शक्ति के रोक देने से अपनी चाल।

सृष्टि के व्यवहार सब रूकें प्रलय के काल।।
हलचल संगति योग्य जग में जिस कारण होय।
वह सर्वोत्कृष्ट शक्ति है ईश्वर, और न कोय।।

मंत्र- अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात्। विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम्।।९।।

काव्यार्थ- दोहा

शक्ति परमेश्वरी कभी सांस न लेत लखात।
चले सांसधारी प्रजा के सांसों के साथ।।
पुनः स्वयं राजा बने परमेश्वर की ओर।
वह शक्ति जाती सदा जो उसका चितचोर।।
शक्ति विविधेश्वरी कि जो जग को छूती जाय।
सूक्ष्मदर्शी देखें उसे अज्ञ न देखन पाय।।

मंत्र- को विराजो मिथनत्वं प्र वेद क ऋतून्क उ कल्पमस्याः। क्रमान्को अस्याः कातिधा विदुग्धान्को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः।।१०।।

काव्यार्थ- कवित्त

है कौन व्यक्ति जो कि ईश्वरीय शक्ति की-
शुभ बुद्धिमत्ता को भली प्रकार जानता;
है कौन जानता जो इसके नियत कालों को,
इसके सामर्थ्य को व इसके घर को जानता।
है कौन जो कि जानता है इसके विधानों को,
कितने प्रकार वह रखाते महानता;
कितने प्रकार की समृद्धियों को इसकी जो,
जानता जो, इसमें स्वयं को है सानता।।

मंत्र- इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा। महान्तो अस्यां महिमानो अन्तवषूर्जिगाय नवगज्जनित्री।।११।।

काव्यार्थ-

यह ईश्वर-शक्ति ही वह एक शक्ति है,
सब में प्रकाशमान हुई जो चलती;
महिमाएं बड़ी धारे यह इन उन समस्त ही-
निज सृष्टियों के बीच हो प्रविष्ट निकलती;
यह प्राप्ति योग्य नित नवीन गतियों को जनती,
विघ्नों को नष्ट करती, अनर्थों को निगलती।

मंत्र- छन्दः पक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेते। सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरेरेतसा।।१२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

एक उस ईश्वर-शक्ति की ही महिमा से,
उषा साथ अत्यन्त सुन्दर बनी हुई;
नित्य हितकारी रात्रि औ प्रभात वेला दोनों,
करती स्वतंत्रता ग्रहण औ तनी हुई।
एक परमेश्वर के पीछे चलती हैं वह,
मार्ग जानती व झंडा रखाती मणि हुई;
जैसे द्वय सूर्य पत्नियाँ समर्थ शीघ्रगामी,
मिल चलती है प्रेम धन से धनी हुई।।

(नोट- सूर्य की दो पत्नियाँ- रात्रि और प्रभात वेला)

मंत्र- ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो धर्मा अनु रेत आगुंः। प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम्।।१३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

इडा, सरस्वती, भारती त्रि-देवी उमगाह।
चलती आई सदा से सत्य-शास्त्र की राह।।
देव-पूजा, दान आदि से सींच रहे त्रि-यज्ञ।
करते आये वीरता से प्रतिदिन ही विज्ञ।।
प्रज्ञा को भरती इड़ा सरस्वती पुरूषार्थ।
तथा भारती रक्षती राज्य प्रजा- हितार्थ।।

मंत्र- अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद्यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः। गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं बृहदर्की यजमानाय स्वराभरन्तीम्।।१४।।

काव्यार्थ- कवित्त

यज्ञ के ग्रहीता सूर्य चन्द्र सम ऋषि लोग,
वेद-वाणी बुद्धि कर्म मांह धरते रहें;
तद् रीति सब ही मनुष्य यह वेद वाणी-
स्वीकार कर मोक्ष प्राप्त करते रहें;
सत्व, रज, तम से परे चतुर्थावस्था की,
सत्कार योग्य को सदैव करते रहें,
अरू ज्ञान, धर्म औ उपासना से पूज्य की-
स्तुतियाँ वाणी से सदैव झरते रहें।।

मंत्र- पंच व्युष्टीरनु पंच दोहा गां पंच नाम्नीमृतवोऽनु पंच। पंच दिशः पंचदशेन क्लृप्तास्ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम्।।१५।।

काव्यार्थ- दोहा

उस ही ईश्वर शक्ति से जीवात्मा सुख हेतु।
उपजे सकल पदार्थ हैं पूर्ति प्रदाता जेतु।।
पांच तन्मात्राओं संग पंचभूत उत्पन्न।
पंच दिशाएं, पांच ऋतु उपजे नाना अन्न।।
पांच प्राण, पांच इन्द्रियाँ पाँच भूत समर्थं।।
जीवात्मा के संग किया होय न कोई अनर्थ।।

मंत्र- षड् जाता भूता प्रथमजर्तस्य षडु सामानि षडहं वहन्ति। षडयोगं सीरमनु सामसाम षडाहुर्घावापृथिवीः षडुवीः।।१६।।

काव्यार्थ- कवित्त

परमेश्वर के परम सामर्थ्य द्वारा,
स्थूल इन्द्रियाँ छः प्रकट लखात हैं;
तन बीच छः ही वह कर्म-इन्द्रियाँ हैं जो कि,
स्थूल इन्द्रियों के तन को चलात हैं।

सूक्ष्म इन्द्रियों के संयोग वाले बन्धन के-
साथ बनी स्थूल इन्द्रिय जमात है;
लोग छः छः के ही आश्रित प्रकाशमान-
और अप्रकाशमान लोकों को भनात हैं।।

मंत्र- षडाहु शीतान्षडु मास उष्णानृतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः। सप्त सुपर्णाः कवयो नि षेदु सप्तच्छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः।।१७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यह है उन दृढ़ ईश्वरी नियमों की ही रीत।
निश्चित करते मास जो छः उष्ण छः शीत।।
हमें कहो ऋतु जो रखें इन नियमों को भींच।
सप्त इन्द्रियाँ सप्त छिद्रो संग सप्त संस्कारों बीच।।

(सप्त छिद्र-मस्तक में स्थित दो कान, दो नथने, दो आंखें, एक मुख सात छिद्र)

मंत्र- सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्तर्तवो ह सप्त। सप्ताज्यानि परि भूतमायन्ताः सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम्।।१८।।

काव्यार्थ- कवित्त

नाना विषयों का किया करती ग्रहण हैं जो,
इन्द्रियाँ वह नर तन बीच बनी सात हैं;
अरू जग बीच क्रियमाण प्राणियों में उन-
इन्द्रियों से उत्पन्न वासनाएं सात हैं।
विषयों का करती प्रकाश सात सूक्ष्म शक्ति,
सात ज्ञान के विषय प्रवृत्तियाँ भी सात हैं;
सात कहलाते विषयों के हैं प्रकाश स्रोत,
ऐसा हमने है सुना, विज्ञ बतियात हैं।।

मंत्र- सप्तच्छन्दांसि चतुरूत्तराण्यन्यो अनयस्मिन्नध्यार्पितानि। कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि।।१६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के चतुर्वर्ग आधार।
अति सूक्ष्म करके जिन्हें दिया श्रेष्ठ आकार।।

जुड़े परस्पर छिद्र वह नर मस्तक के सात।
कैसे दृढ़ उन बीच में गुण स्तुत्य दिखात।।
मस्तक के वह छिद्र उन स्तुत्य गुण बीच।
ठीक ठीक जैसे जमे किस भांति शुभ रीत।।

मंत्र- कथं गायत्री त्रिवृतं व्याप कथं त्रिष्टुप्पंचदशेन कल्पते। त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप्कथमेकविंशः।।२०।।

काव्यार्थ- गीत

तीन गुण साथ लिये जीव की शुभ आत्मा को,
कैसे ईश्वर की शक्ति व्यापी है।।
पदार्थ पन्द्रह को धारते जीवात्मा संग,
कैसे होती समर्थ तीन के द्वारा मुक्ति,
देवता तैंतीसों को रखने वाले अपने में,
सृष्टता कैसे परमात्मा अपनी सृष्टि।
समर्थ कैसे इक्कीस पदार्थों वाला,
जीवात्मा तथा स्तुत्य वेद-वाणी है।

(नोट- तीन गुण- सत्व, रज, तम। पन्द्रह पदार्थ- पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच भूत। तैंतीस देवता- आठ वसु, ग्यारह रूद्र, बारह आदित्य, एक इन्द्र एक प्रजापति। इक्कीस पदार्थ- पाँच महाभूत, पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ एक अंतःकरण)

मंत्र- अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्याष्टेन्द्रार्त्विजो दैव्या ये। अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमी रात्रिमभि हव्यमेति।।२१।।

काव्यार्थ- कवित्त

आठ से सम्बन्ध रखो उत्पन्न जीव को,
रही आदि कारण, प्रकृति प्रमान करती,
रहते जो आठ शुभ दिशाओं के बीच, तथा-
जहाँ दिव्य गुण के पदार्थ लिये धरती।
आठ से संयोग वाली, आठ ऐश्वर्य रूप-
पुत्र वाली व्यापक है ईश्वर-शक्ति,

जगत् को नाप रही रात्रि समान मुक्ति,
स्वीकार्य सुख नर को प्रदान करती।।

(नोट- आठ-महत्तत्व, अहंकार, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन। आठ दिशा- चार दिशा, चारविदिशा। आठ में संयोग वाली- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। आठ ऐश्वर्य- अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा इशित्व, वशित्वा, कामावसायिता।)

मंत्र- इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा। समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन्।।२२।।

काव्यार्थ- गीत

मैं ईश्वर की शुभ शक्ति, चर-अचर जगत में आयी।
चर-अचर जगत् में आयी, आनन्द मनाती धायी।।
उत्पन्न कर्म-फल साथ, जो हुआ तुम्हारा बोध,
उसे मंगलकारी करती, कर नष्ट सभी अवरोध,
तुम्हें सखा बनाकर आज, तुमको सुख देने आयी।
तुमको सुख देने आयी, तुम्हें सुखी देख हर्षायी।।
तव जनित बोध तुम्हारी, सब आशाओं को समझे,
तुम सबमें करे संचार, तुम्हें कभी नहीं वह ग़म दे,
मैं रहूं तुम्हारे साथ, सब दुःख को देऊं विदायी।
सब दुःख को देऊँ विदायी, तुम्हें सुखी देख हर्षायी।।

मंत्र- अष्टेन्द्रस्य षड्यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा। अपो मनुष्य३नोषधीस्ताँ उ पंचानु सेचिरे।।२३।।

काव्यार्थ- दोहा

नियमवान नर हित दिशा आठ, ऋतु छः और।
सात इन्द्रियाँ शक्ति संग सप्त रीति, शुभ ठौर।।
कर्म और औषधियों ने वह विज्ञ, जन-नाथ।
पीछे-पीछे सींचा है पंच भूतों के साथ।।

मंत्र- केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना। अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान्मनुष्याँ असुरानुत ऋषीन्।।२४।।

काव्यार्थ- दोहा

पूर्ति करती पहले से ग्रहणीय प्रभु-शक्ति।
देती प्रभुता से भरा अमृत पूर्ण व्यक्ति।।
विजय कामी, मनस्वी विज्ञ तथा ऋषि लोग।
प्रभु-शक्ति ने कर दिये चारों पूजा जोग।।

मंत्र- को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः। यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुः कतमो नु सः।।२५।।

काव्यार्थ- दोहा

कौन लोकचालक है, अरू मार्ग-प्रदर्शक कौन।
कौन ज्योति स्वरूप है हितू विनय है कौन।।
पृथिवी पर जो अकेला पूज्य ब्रह्म अवदात।
वर्तमान वह एकरस, कौन पुरूष कहलात।

मंत्र- एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकघाशिषः। यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नाति रिच्यते।।२६।।

काव्यार्थ- दोहा

एक सर्वयापक प्रभू सब लोकों को चलाय।
वही अकेला मार्ग का दर्शन रहा कराय।।
ज्योति स्वरूप है वही विनय उसी के हेतु।
वही अकेला पूज्य है सबकी नैया खेतु।।
पृथिवी पर वह एक रस, वर्तमान कहलाय।
नहीं किसी से भी कभी उसको जीता जाय।।

सूक्त १०, प्रथम पर्याय

मंत्र- विराड्वाइदमग्र आसीत्तस्यासा जातायाः। सर्वमविभेदियमेवेदं भविष्यतीति।।१।।

काव्यार्थ-

सृष्टि के प्रारम्भ विराट् ही विस्तीर्ण जगत् था,
उसके प्रकटीकरण बाद यह ही जग बन जाएगा;
होने की उत्पन्न है वह, ऐसा अनुभव होने से,
सब भयभीत हो गये, संशय जैसे छल जाएगा।

मंत्र- सोदक्रामत्सा गार्हपत्ये न्यक्रामत्।।२।।
मंत्र- गृहमेदी गृहपतिर्भवति य एवं वेद।।३।।

काव्यार्थ-

किया अतिक्रमण उस विराट् शुभ ईश्वर की शक्ति ने,
अरू परिणित हो गयी गृहस्थ लोगों के कर्म में;
ऐसा जिसको ज्ञात वही गृह-कर्म समझने वाला-
गृहपति होता तथा निपुण होता गृहस्थ धर्मों में।

मंत्र- सोदक्रामत्साहवनीये न्यक्रामत्।।४।।
मंत्र- यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद।।५।।

काव्यार्थ-

किया अतिक्रमण उस विराट् शुभ ईश्वर की शक्ति ने,
अरू परिणित होगयी यज्ञ के पावन व्यवहारों में;
ऐसा जिसको ज्ञात, विज्ञ जन में वह प्रिय हो जाता,
आमंत्रण पर विज्ञ लोग आते तत् व्यापारों में।

मंत्र- सोदक्राामत्सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत्।।६।।
मंत्र- यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद।।७।।

काव्यार्थ-

किया अतिक्रमण उस विदाट् शुभ ईश्वर की शक्ति ने,
अरू परिणित हो गयी विज्ञ लोगों की श्रेष्ठ सभा में;
ऐसा जिसको ज्ञात विज्ञों में मान सदा पाता वह,
तत् घर जाते विज्ञ, ज्योतिमय रहता ज्ञान प्रभा में।

मंत्र- सोदक्रामत्सासमितौ न्यक्रामत्।।१०।।
मंत्र- यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद।।११।।

काव्यार्थ-

किया अतिक्रमण उस विराट् शुभ ईश्वर की शक्ति ने,
अरू परिणित हो गयी वीर लोगों के संग्रामों मे;
ऐसा जिसको ज्ञात, वही संग्राम शूर होता है,
लड़ते योद्धा संग, नहीं रहता है संतापों में।

मंत्र- सोदक्रामत्सामन्त्रणे न्यक्रामत्।।१२।।
मंत्र- यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद।।१३।।

काव्यार्थ-

किया अतिक्रमण उस विराट शुभ ईश्वर की शक्ति ने,
अरू परिणित हो गयी जहाँ अभिनन्दन थल होता है;
ऐसा जिसको ज्ञात, वही अभिनन्दन योग्य कहाता,
उसके अभिनन्दन में जाते सभी, मान ढोता है।

सूक्त १०, द्वितीय पर्याय

मंत्र- सोदक्रामत्सान्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

उस परमेश्वर शक्ति ने किया अतिक्रमण, और-
चतुर भाँति कर पराक्रम ठहरी नभ की ठौर।।

मंत्र- तां देवमनुष्या अब्रुवन्नियमेव तद्वेद यदुभय उपजीवे मेमामुपह्वयामहा इति।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ईश्वर शक्ति जो रही सदा स्तति जोग।
उससे बोले दिव्य जन तथा मनुष्य लोग।।

हम दोनों जीवित रहें इसे कर्म वह ज्ञात।
अतः बुलाते हम इसे, यह जीवन-दा ख्यात।।

मंत्र- तामुपाह्वयन्त।।३।।

मंत्र- ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति।।४।।

काव्यार्थ- दोहा

उस परमेश्वर शक्ति से सबने कहा पुकार।
"हे बलवती तू आ अहे! आ धनवती सकार।।
हे प्रिय सत्य-वाणी की तू आ हमरे पास।
हे अन्नवाली तू आ नित हमरे आवास।।"

मंत्र- तस्या इन्द्रो वत्स आसीत् गायत्र्यऽभिधान्यभ्रमूधः।।५।।

काव्यार्थ- दोहा

ईश्वर शक्ति का रहा था उपदेष्टा जीव।
कथन शक्ति वेद, जलद सेचन शक्ति अतीव।।

मंत्र- बृहच्च रथन्तरं च द्वौ स्तनावास्ता यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ।।६।।

काव्यार्थ- दोहा

गगन, जगत, वेद तथा पंचभूत महान्।
प्रकट हुए यह गाय के चार थनों समान।।

मंत्र- ओषधीरेव रथन्तरेण देवा अदुह्रन्व्यचो बृहता।।७।।

मंत्र- अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन।।८।।

काव्यार्थ-

गतिमान लोकों ने दुहा औषधियों को जगत् से,
विस्तार को असीमित नीले गगन के द्वारा;
प्रजा को पंच-भूतक से जिनको वेद कहता,
यज्ञको यज्ञ-हितकारी वेद-ज्ञान द्वारा।

मंत्र- औषधीरेवास्मै रथन्तरं दुहे व्यचो बृहत्।।६।।
मंत्र- अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद।।१०।।

काव्यार्थ-

जो ब्रह्मचारी उपरोक्त बातें जानता है,
उसको जगत आकाश से औषधियाँ देता;
सब ही प्रजाओं से अरू प्रभु देव से जनाये-
शुभ पंचभूत से शुभ व्यवहार को है देता,
हितकारी वेद-ज्ञान से सब ही यज्ञ पावन-
देता उसे है, लेकिन बदले में कुछ न लेता।

सूक्त १०, तृतीय पर्याय

मंत्र- सोदक्रामत्सा वनस्पतीनागच्छत्तां वनस्पत्योऽघ्नत सा संवत्सरे समभवत्।।१।।
मंत्र- तस्माद्वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति वृश्चतेऽस्याप्रियो भ्रातृव्यो य एवं वेद।।२।।

काव्यार्थ-

किया अतिक्रमण उस विराट् शुभ ईश्वर की शक्ति ने,
तथा वनस्पतियों में हितकर भाव लिये वह आयी;
प्राप्त वनस्पतियाँ सब की सब हुईं प्रभु-शक्ति को,
वह संवत्सर से होती संयुक्त पड़ी दिखायी।

दोहा

खण्डित होता भाग जो उनका पाकर ठेस।
भरे वर्ष भर में वही रंच न रहता शेष।।
जिस नर को है ज्ञात इस शक्ति का उन्मेष।
उसका अप्रिय शत्रु, कट जाता यम के देश।।

मंत्र- सोदक्रामन्सा पितॄनागच्छत्ता पितरोऽघ्नत सा मासि समभवत्।।३।।

मंत्र- तस्मात्पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददतिप्र पितृयाणं पन्था जानाति य एवं वेद।।४।।

काव्यार्थ-

किया अतिक्रमण उस विराट् शुभ ईश्वर की शक्ति ने,
वह ऋतुओं के पास हितू भावों को लेकर आयी;
प्राप्त हुई ऋतुएं सब की सब ईश्वर की शक्ति को,
वह मास में शशि से यंयुत होतीं पड़ी दिखायी।

दोहा

इसीलिए प्रभु के नियम ऋतुओं को प्रतिमास।
देते अमृत चन्द्र का भरते हुए हुलास।।
प्रभुवर की इस शक्ति की जो करता पहचान।
गमन योग्य पथ ऋतुओं का वह लेता है जान।।

मंत्र- सोदक्रामत्सा देवानागच्छत्तां देवा अघ्नत सार्धमासे समभवत्।।५।।

मंत्र- तस्माद्देवेभ्योऽर्धमासे वषट्कुर्वन्ति प्र देवयानं पन्था जानाति य एवं वेद।।६।।

काव्यार्थ-

किया अतिक्रमण उस विराट् शुभ ईश्वर की शक्ति ने,
तथा सूर्य-किरणों के पास हित भाव ले आयी;
उसको किरणें प्राप्त हुई, उसने किरणों के द्वारा,
अर्द्धमास आदि नियमों की सुन्दर कड़ी बनायी।

दोहा

अर्द्धमास किरणों से रस पहुंचाने का काम।
जीवों के हित करते हैं प्रभु-नियम अविराम।।
प्रभुवर की इस शक्ति की जो करता पहचान।
किरणों का गमनीय पथ वह लेता है जान।।

मंत्र- सोदक्रामत्सा मनुष्या३नागच्छत्तां मनुष्या अध्नत सा सद्यः समभवत्।।७।।

मंत्र- तस्मान्मनुष्येभ्य उपभ्यद्युरूप हरन्त्युपास्यगृहे हरन्ति य एवं वेद।।८।।

काव्यार्थ-

किया अतिक्रमण उस विराट् शुभ ईश्वर की शक्ति ने,
तथा मननशील लोगों के पास दौड़कर आयी;
प्राप्त हुए वह लोग उसे, जो मेघावी कहलाते,
वह उन श्रेष्ठ नरों से संयुत होती पड़ी दिखायी।

दोहा

इसीलिये प्रभु के नियम लोगों को पहचान।
प्रतिदिन ही करते रहें उपहरों का दान।।
प्रभुवर की इस शक्ति को जो लेते मन धार।
प्रभु-नियम उनको भवन देते हैं उपहार।।

सूक्त १०, चतुर्थ पर्याय

मंत्र- सोदक्रामत्सासुरानागच्छत्तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति।।१।।

मंत्र- तस्या विरोचनः प्राह्लादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम्।।२।।

मंत्र- तां द्विमूर्धात्वर्यो ऽधोक्ता मायामेवाधोक्।।३।।

मंत्र- तां मायामसुरा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद।।४।।

काव्यार्थ-

किया अतिक्रमण प्रभु-शक्ति ने बुद्धिमानों में आयी,
उसे उन्होंने पास बुलाया, 'तू आ' ऐसा कह कर;
प्रभु द्वारा निर्मित, आलोकित जगत् बना उसका घर,
लोकों का आधार रहा जो, रक्षा-साधन महकर।
संचित अरू क्रियमाण कर्म रूप दो बन्धन वाले-
कर्म-कुशल जीव ने दोहन किया प्रभु-शक्ति का;

उसी कर्म-कुशल व्यक्ति ने वह बुद्धि भी दोही,
बुद्धिमान विषय बनते हैं जिसकी अनुरक्ति का।

दोहा

जिसको ऐसा ज्ञात, वह आश्रय-दाता होत।
पर-जीवन निर्वाह कर उनके दुःखड़े धोत।।

मंत्र- सोदक्रामत्सा पितृनागच्छत्तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति।।५।।
मंत्र- तस्या यमो राजा वत्स आसीद्रजतपात्रं पात्रम्।।६।।
मंत्र- तामन्तको मार्त्यवोऽधोक्तां स्वधामेवाधोक्।।७।।
मंत्र- तां स्वधां पितर उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद।।८।।

काव्यार्थ-

किया अतिक्रमण प्रभु शक्ति ने, पालक लोकों आयी,
उसे लोकों ने पास बुलाया, 'तू आ' ऐसा कह कर;
नियमवान प्रभु बना हुआ था उस शक्ति का उपदेष्टा,
प्रीति तथा ज्ञान का संबल, रक्षा-साधन महकर।
उस शक्ति को तत्व-वेत्ता मनोहारी करते थे,
तथा मृत्यु-स्वभाव जानते हुए रहा करते थे,
वह उनको दुह आत्म-धारणा शक्ति प्राप्त करते, अरू-
पालक लोक उसी आश्रय गति बना रहा करते थे।

दोहा

यह जान जो करता प्रभु शक्ति से अनुरक्ति।
आश्रय-दाता दूसरों का होता वह व्यक्ति।।

मंत्र- सोदक्रामत्सा मनुष्या३नागच्छत्तां मनुष्या३उपाह्वयन्तेरावत्येहीति।।९।।
मंत्र- तस्या मनुर्वैवस्तो वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम्।।१०।।
मंत्र- तां पृथवैन्योऽधोक्तां कृषिं च सस्यं चाधोक्।।११।।
मंत्र- ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या३उपजीवन्ति कृष्टराधिरूपजीवनीयो भवति य एवं वेद।।१२।।

काव्यार्थ-

किया अतिक्रमण प्रभु शक्ति ने, मनुष्यों में आयी,
मनुष्यों ने उसे पास बुलाया, 'अन्नवती तू आ' कह,
मनुज भाव का ज्ञानी, मनस्वी उसका उपदेष्टा था,
अरू उसका रक्षा-साधन विस्तार प्रदाता प्रभु मह।
वह विस्तारवान् व्यक्ति जो विज्ञों संग रहता है,
उसने उसको दुहा कि जिसको सभी जीव वरते हैं,
उसने धारण अरू पोषण हित दुहा कृषि अरू धान्य,
खेती तथा धान्य आश्रय ले मनुज जिया करते हैं।

दोहा

ऐसा जो है जानता होता कृषि प्रवीण।
सम्बल होता ऐसों का जो होते हैं क्षीण।।

मंत्र- **सोदक्रामत्सा सप्तऋषीनागच्छतां सप्तऋषयः उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति।।१३।।**

मंत्र- **तस्या सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम्।।१४।।**

मंत्र- **तां बृहस्पतिराङ्गिरसोऽधोक्तां ब्रह्म च तपश्चाधोक्।।१५।।**

मंत्र- **तद्ब्रह्म च तपश्च सत्पऋषयः उप जीवन्ति। ब्रह्मवर्चस्युऽपजीवनीयो भवति य एवं वेद।।१६।।**

काव्यार्थ-

किया अतिक्रमण प्रभु-शक्ति ने, सप्तऋषियों में आयी,
उसे सप्तऋषियों ने बुलाया, 'वेदवती तू आ' कहः;
जीवात्मा सुख-जनक रहा उस शक्ति का उपदेष्टा,
अरू स्वतंत्रता रूप ब्रह्म उसका रक्षा साधन मह।
उस शक्ति को दुहा महाज्ञानी प्रभु के ज्ञाता ने,
महत् गुणों को रक्ष रहा जो जिससे पाप डरते हैं,
वेद तथा तप दुहा, शरीर स्थित सात ऋषि भी,
वेद तथा तप का आश्रय ले, सदा जिया करते हैं।

दोहा

जिसको ऐसा ज्ञात, पा वेद-विद्या आलोक।
आश्रय लेता दूसरों का, हर लेता शोक।।
(नोट- सात ऋषि-त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि)

सूक्त १० पंचम पर्याय

मंत्र- सोदक्रामत्सा देवानागच्छत्तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति।।१०।।
मंत्र- तस्या इन्द्रोवत्स आसीच्चमसः पात्रम्।।२।।
मंत्र- तां देवः सविताधोक्तामूर्जामेवाधोक्।।३।।
मंत्र- तां मूर्जा देवा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद।।४।।

काव्यार्थ-

परोपकारिणी प्रभुशक्ति ने किया अतिक्रमण और,
विजय चाहने वालों में वह आयी राह बताने;
उन लोगों ने कहा कि 'हे बलवन्ती तू आ' और-
कर दुष्टों को नष्ट कि जो निर्बल को चले सताने।
शक्ति थी निर्भीक, अजेय औ आनन्द प्रदाता,
इन्द्र रहा उपदेष्टा, ब्रह्म था रक्षा-साधन ताने;
किया सर्व-प्रेरक ज्ञानी ने उस शक्ति का दोहन,
दुहा अवश्य शक्ति को उसने लगा विजय श्री पाने।

दोहा

ज्ञानी उसको दोहते जो करते यह ज्ञान।
वह तद् आश्रय पा, करें विजय श्री का पान।।

मंत्र- सोदक्रामत्सा गन्धर्वाप्सरस आगाच्छन्ताँ। गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध एहीति।।५।।
मंत्र- तस्याश्चित्ररथः सौन्दर्यवर्चसो वत्स आसीत्पुष्करपर्णं पात्रम्।।६।।
मंत्र- तां वसुरूचिः सौर्यवर्चसोऽधोक्तां पुण्यमेव गन्धमधोक्।।७।।
मंत्र- तं पुण्यं गन्धंगन्धर्वाप्सरस उपजीवन्ति पुण्यगन्धिरूपजीवनीयो भवति य एवं वेद।।८।।

काव्यार्थ-

प्रभु-शक्ति ने किया अतिक्रमण, तथा इन्द्रिय वालें,
अरू प्राण द्वारा चलने वाले जीवों के भीतर आयी;
उन इन्द्रिय वालों अरू प्राणों द्वारा गतिशीलों ने-
"हे पवित्र ज्ञान वाली आ" कह निज स्तुतियाँ पहुंचायी।
उसका सूर्य-विज्ञानी औ रमणीय गुणों का धारक-
उपदेष्टा था तथा ब्रह्म ने रक्षाएं बिठलायीं;
प्रभु भक्त सूर्य-विज्ञानी ने किया शक्ति का दोहन,
उसके द्वारा पूत ज्ञान की फिर की गयी दुहायी।

दोहा

पूत-ज्ञान द्वारा जियें पूर्व कहे जीव दोय।
जो है ऐसा जानता सबका सहारा होय।।

मंत्र- सोदक्रामत्सेतरजनानागच्छत्ताभितरजना उपह्मयन्त तिरोध एहीति।।९।।

मंत्र- तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम्।।१०।।

मंत्र- तां रजतनाभिःकाबेरकोऽधोक्तां तिरोधामेवाधोक।।११।।

मंत्र- तां तिरोधामितरजना उप जीवन्ति तिरोधत्ते सर्वापप्मानमुपजीवनी यो भवति य एवं वेद।।१२।।

काव्यार्थ-

प्रभु शक्ति ने किया अतिक्रमण, अज्ञानी जनों में आयी,
उन सबने उसे पास बुलाया 'गुप्त शक्ति आ' कहकर;
ज्ञान-धनी अरू ज्ञान विशेष धारी था शक्ति का उपदेष्टा,
अरू ब्रह्मा था उस शक्ति का रक्षा-साधन महकर।
गुप्त शक्ति को दुहा, ख्यात गुण के धारक क्षत्रिय ने,
निश्चित उसको दुहा, अज्ञानी, जीते जिसको लहकर,

अंतः बाह्य सभी पापों का तिरस्कार करता वह,
धूल-धूल हो जाते उसके दुर्गुण के गढ़ ढहकर।

दोहा

जो है ऐसा जातना हो जाता प्रभु-भक्त।
बने सहारा दूसरों का, जो रहे अशक्त।।

मंत्र- सोदक्रामत्सा सर्पानागच्छत्तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति।।१३।।
मंत्र- तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम्।।१४।।
मंत्र- तां धृतराष्ट्र एरावतोऽधोक्तां विषमेवाधोक।।१५।।
मंत्र- तद्विषं सर्प उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद।।१६।।

काव्यार्थ-

प्रभु-शक्ति ने किया अतिक्रमण, सर्पों में वह आयी,
सर्पों ने उसे पास बुलाया 'हे विषमय तू आ' कह;
सूक्ष्मदर्शी नर, जो प्रवेश-शक्ति का अति ज्ञाता था,
वह था उपदेष्टा अरू ब्रह्म था रक्षा-साधन मह।
उसको नीति कुशल भूपति ने दुहा ज्ञान के द्वारा,
अरू विवेचना की विष की शुभ ईश्वर-शक्ति को लह;
प्रभु से प्राप्त हुआ विष लेकर सर्प जिया करते हैं,
विष करता कल्याण सर्प का उसकी ग्रन्थि में रह।

दोहा

जो नर ऐसा जानता कभी न खाता चोट।
दुष्ट छोड़कर, शिष्टों का आश्रणीय वह होत।।

सूक्त १०, षष्ठ पर्याय

मंत्र- तद्यस्मा एवं विदुषेऽलाबुनाभिषिंचेत्प्रत्याहन्यात्।।१।।

काव्यार्थ-

इस प्रकार जगत् विस्तारक ब्रह्म किसी ज्ञानी का,
जब उद्धारक कर्म द्वारा अभिषेक किया करता है;
तब वह ज्ञानी जिसने ब्रह्म को पूर्ण रीति से जाना,
फैल गये विष रूप दोषों को हटा दिया करता है।

मंत्र- न च प्रत्याहन्यान्मनसा त्वा प्रत्याहन्मीति प्रत्याहन्यात्।।२।।

काव्यार्थ-

वह विद्वान विष समान फैले घातक दोषों को,
यह कह दूर हटादे अपने मन, बुद्धि से, बदन से;
'विष समान' दोषों! चिन्तन मनन पूर्वक तुमको,
सदा-सदा को दूर कर दिया अपने हृदय सदन से।"

मंत्र- यत्प्रत्याहन्ति विषमेव तन्प्रत्याहन्ति।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जब सविचार मनुष्य निज दोष-नाश को जाय।
तब विस्तारक ब्रह्म उस के सब दोष हटाय।।

मंत्र- विषमेवास्याप्रियं भ्रातृव्यमनुविषिच्यते य एवं वेद।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ब्रह्मविरोधी ब्रह्म के ज्ञानी को दे कष्ट।
महा दोष का भागी बन हो जाता है नष्ट।।
इसे जानना हर मनुज का है पहला धर्म।
विज्ञों की संगति लभे सदा करे शुभ कर्म।।

काण्ड ९

सूक्त १

मंत्र- दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात्समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे। तां चायित्वामृतं हृद्भिः प्रजाः नन्दन्ति सर्वाः।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

अन्तरिक्ष, पृथिवी, रवि, उदधि, अग्नि अरू वात।
इनसे मधुवाणी प्रकट होती हुई लखात।।
पूजा कर मधुवाणी की अमतृधारीजोत।
सकल प्रजाजन निज हृदय में आनन्दित होत।।

(नोट- मधु वाणी = वेद विद्या)

मंत्र- महा त्पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः। यत ऐति मधुकशा रराण तत्प्राणस्तदमृतं निविष्टम्।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

वेदवाणी तुझ सी नहीं कोई मधु भरी चीज।
विज्ञ लोगों ने है कहा तुझे सूर्य का बीज।।
इस सम्पूर्ण पृथिवी का विविध रूप से युक्त।
विज्ञ लोगों के हेतु तू महनीय बल ठुक्त।।

मंत्र- पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ्नरो बहुधा मीमांसमानाः। अग्नेर्वातान्मुकशा हि जज्ञे मरूतामुग्रा नप्तिः।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

विविध भांति मीमांसा कर पृथिवी के विद्वान्।
पृथक-पृथक हैं देखते इसका चरित महान्।।
वेद-ज्ञान को शूर-जन अग्नि वायु से पाय।
उग्र, न गिरने वाला बल निज में लेत बढ़ाय।।

मंत्र- मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः। हिरण्य वर्णा मधुकशा घृताची महान्भर्गश्चरति मर्त्येषु।।४।।

काव्यार्थ- दोहा

सूर्य लोकों की मात जो करे धनों से पूर्ण।
जो प्रजाओं की प्राण है अमरत्व दे तूर्ण।।

सेचन शक्ति प्रदायिनी वेद वाणि सुख राश।
मनुजों में रमती रहे धारे महत् प्रकाश।।

मंत्र- मधो कशामजयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः। तं जातं तरूणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दिव्य जनों ने प्रकट की ज्ञान वाणी अशेष।
जिसका हुआ आधार था विश्व रूप परमेश।।
पूर्ण रूप उसमें भरी जो जन-तारक सिद्ध।
सब भुवनों को देखता वह ही प्रभू प्रसिद्ध।।

मंत्र- कस्तं प्रवेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः। ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन्मदेत।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

कौन उस प्रभु को भली प्रकार जानता है?
समझा है किसने प्रभु को रसपान कर?
अंतः कलश जो कि वेद-वाणी का है बना,
अमृत का अक्षय जो पात्र कल्याण कर।
वह मेधावान, ब्रह्म-ज्ञानी व्यक्ति ईश्वर की-
स्तुति, उपासना व प्रार्थना का गान कर;
दुखड़े समाप्त कर आनन्द को प्राप्त करे।
तत् कल्याणकारी वेदवाणी जानकर।।

मंत्र- स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत यावस्या स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ। ऊर्जं दुहाते अनपस्फरन्तौ।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रभु अरू वेद-वाणी को जाने, समझे विज्ञ।
दोनों तत्स्तन सरिस रंच नहीं अनभिज्ञ।।
धारण कर्षण द्वारा वह सहस्र बलों की तूर्ण।
अक्षय निश्चल शक्ति को करते हैं परिपूर्ण।।

मंत्र- हिंकरिक्रती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम्। त्रीन्धर्मानभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः।।८।।

मंत्र- यामापीनामुपसीदन्त्यापः शाक्वरा वृषभा ये स्वराजः। ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तद्विदे काममूर्जमापः।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

बर्द्धमान, बल को बढ़ाती ब्रह्म विद्या, जो-
ऊंचे शब्द जिसके नियम पिया करते;
तीनों यज्ञों की चाहना में शब्द करती जो
पैर जिसके सदा बलों को लिया करते।
तेज पूर्ण विज्ञ, शक्तिमती वेद-वाणी ज्ञाता,
परिपूर्ण वेद-विद्या में ठिया करते;
वह सदैव ब्रह्म-विद्या के विद्वान हेतु,
वांछित पराक्रम में वृद्धि किया करते।।

मंत्र- स्तनचित्यनुस्ते वाक्प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि। अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरूतामुग्रा नप्तिः।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रजापति! तव वाणि है जैसे गरजता मेघ।
भू पर बल विस्तारती धार शक्तिमय वेग।।
अग्नि वायु से प्रकट तव पतित पावनी शक्ति।
ब्रह्म-विद्या से उग्र अति बनता शूर व्यक्ति।।

मंत्र- यथा सोमः प्रातः सवने अश्विनोर्भवति प्रियः। एवा मे अश्विना वर्चआत्मनि ध्रियताम।।११।।

मंत्र- यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्नयोर्भवति प्रियः। एवा म इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम्।।१२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सोम सम शिशु प्रातःकाल सम बचपन में-
मात-पिता को अतीव प्रिय ही दिखा रहे,
वैसे ही हे माता पिता मेरी आत्मा के बीच-
विद्या का प्रकाश प्रिय होकर टिका रहे।
जैसे सोम सम युवा यौवन में सूर्य-चन्द्र-
सम अति प्रिय मात-पितु को दिखा रहे;

वैसे ही हे सूर्य अरू अग्नि सम माता-पिता,
मेरे में प्रकाश प्रिय होकर टिका रहे।।

मंत्र- यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः। एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम्।।१३।।

मंत्र- मधु जनिषीय मधु वंशिषीय। पयस्वानग्न आगमं तं मा सृज वर्चसा।।१४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जैसे सोम सम वृद्ध, वृद्धावस्था के काल,
बुद्धिमानों का अतीव प्रिय हो बना रहे;
वैसे ही हे बुद्धिमानों! मम आत्मा में प्रकाश,
प्रियता को धार थिर होकर तना रहे।
ज्ञान की मिठास जनूं, याचना इसी की करूं,
मन इस ही की जिज्ञासा में सना रहे,
तेजवान विज्ञ! यही चाह लिये आया अज्ञ,
विद्या-प्रकाश युक्त मन ये घना रहे।।

मंत्र- सं माग्ने वर्चसा सृजसं प्रजया समायुषा। विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः।।१५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे विद्वान् तेजमय! तेज दीजिये ठुक्त।
करो प्रजा, दीर्घायु से भली भांति संयुक्त।।
आया जिज्ञासा लिये हे तेजस्वी विज्ञ।
मुझे जोड़िये ज्योति से रहूं नहीं मैं अज्ञ।।
लभूँ प्रतिष्ठा दिव्यों में वह जानें मम गाथ।
आचार्य ऐश्वर्य मय ज्ञानी ऋषियों साथ।।

मंत्र- यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मधावधि। एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम्।।१६।।

मंत्र- यथा मक्षा इदं मधु न्यंजनित मधावधि। एवा में अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम्।।१७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्राप्त कर फूलों से मधु को, मधुमक्खी दल,
उसे निज मधु-स्थान भरते रहें;

वैसे ही हे माता-पिता! विद्वान् गुरू मेरी-
आत्मा में विद्या का प्रकाश भरते रहें।
जैसे वह लाये हुए अपने मधु को सदा,
निज पूर्व संचित मधु में धरते रहें,
वैसे ही हे माता-पिता! मेरे लिये मधु रूप,
आप प्रकाश, बल तेज झरते रहें।।

मंत्र- यद्गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु। सुरायां सिच्यमानायां यत्तत्र मधु तन्मयि।।१८।।

काव्यार्थ-

मुझमें हो पहाड़ों व पर्वतों की मधुरता,
गउओं तथा अश्वों की मधुरता मेरे में हो;
बहते हुए वृष्टि के जल में जो मधुरता है,
वह ही मधुरता गति लिये तन के डेरों में हो।

मंत्र- अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती। यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु।।१९।।

काव्यार्थ-

शुभकर्मी हे माता-पिता! मधु-मक्खी के लाये-
मधु की मिठास से मुझे संयुक्त कीजिए;
मनुजों में उचारूँ सदा तेजोमयी वाणी,
वाणी की कटुकता को पूर्ण रूप छीजिए।

मंत्र- स्तनयित्नुस्ते वाक्प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि। तां पशव उप जीवन्ति सर्वे सेषमूर्जं पिपर्ति।।२०।।

काव्यार्थ-

परमेश्वर, जगत के रचयिता, प्रजा-पालक;
वाणी तेरी मेघों की गर्जना समान है,
ऐश्वर्यवान् हो तू ही भूमि तथा नभ पर,
बरसाता है जल ऐसा सर्वशक्तिमान है,
सब जीव एक तेरा सहारा लिये जीते,
तू अन्न, पराक्रम उन्हें करता प्रदान है।

मंत्र- पृथिवी दण्डो३न्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत्प्रकाशो हिरण्ययो बिन्दुः।।२१।।

काव्यार्थ-

पृथिवी है दण्ड जगती के रचयिता प्रभु का,
अरू अन्तरिक्ष उसका मध्य भाग बना है;
द्यु लोक वाणी, विद्युत प्रकृष्ट गति है,
तेजस्वी सूर्य उसका एक छोटा सा कना है।

मंत्र- यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान्भवति। ब्रह्मणश्च राजा च धेनुश्चानड्वांश्च ब्रहिश्च यवश्च मधु सप्तमम्।।२२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वेद-वाणी के मधु सरिस सात ज्ञानों को तूर्ण।
जो लेता है जान, वह हो जाता मधु पूर्ण।।
यह उपकारी सात हैं ब्राह्मण, राजा, गाय।
बैल, चावल, जौ तथा ज्ञान जो बात बनाय।।

मंत्र- मधुमान भवति मधुमदस्याहार्यं भवति। मधमतो लोकांजयति य एवं वेद।।२३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ब्रह्मनिष्ठ बन ज्ञानमय पालन करता धर्म।
ज्ञान युक्त होता सकल उसका ग्राह्य कर्म।।
जो है ऐसा जानता हो जाता बलकार।
ज्ञान वाले सब थलों पर करे पूर्ण अधिकार।।

मंत्र- यद वीघ्रे स्तनयति प्रजापतिरेव तत्प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति। तस्मात्प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति। अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद।।२४।

काव्यार्थ-

आकाश में जो गर्जना होती है, वह मानो-
प्रजापति ही प्रकट हो रहा है यह;
सब से रहा प्राचीन, बड़ी प्रीति का, तथा-
सम्पूर्ण प्रजाओं का हितैषी रहा है वह;
इस हेतु उससे विनय किया करता, “प्रजापति!
मुझ पर सदैव कृपा आप कीजिये अथह”;
जो इस प्रकार प्रार्थना करना है जानता,
उस पर प्रजा अनुकूल रहे, छोड़ती कलह;

उस पर कृपाएं सबकी बरसतीं सदैव ही,
विश्वपति, प्रजापति करता है अनुग्रह।

सूक्त २

मंत्र- सपत्नहनमृषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन। नीचैः सपत्नान्मम पादय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येण।।१।।

काव्यार्थ- दोहा

एकमात्र परमेश्वर जो कि कामना योग्य।
शत्रु-विनाशक अति बली देता सबको भोग्य।।
मैं प्रकाश, भक्ति तथा पूर्ण गति के साथ।
शिक्षित करता हूं उसे तथा झुकाता माथ।।
स्तुत्य सब ओर से हमको दे सुख राश।
महत् वीरता धार कर कर वैरी का नाश।।

मंत्र- यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुसो यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति। तदू दुःष्वप्न्यं प्रति मुंचामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम्।।२।।

मंत्र- दुःष्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम। उग्र ईशानः प्रति मुंच तस्मिन्यो अस्मभ्यमंहूरणा चिकित्सात्।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

जो न नेत्र को प्रिय तथा मोद न मन को देतु।
वह दुष्कर्म छोड़ता शत्रु नाश के हेतु।।
मुझे तिरस्कृत जो करे रंच न आनन्द देतु।
वह दुःस्वप्न छोड़ता शत्रु नाश के हेतु।।
स्तुति कमनीय प्रभु की कर भरूं प्रकाश।
निकल जाऊं ऊपर तथा अपना करूं विकास।।

काव्यार्थ-

हे कामना के योग्य, हे सबके प्रबल स्वामी,
तव क्रोध से सब पाप औ विपदायें हिली हैं;
दुःस्वप्न, अभाव तथा विपत्तियाँ जो कि-
विघ्न तथा निर्धनता से प्रजा को मिली हैं;
प्रभुवर! उन्हें तू ऐसे पर छोड़ दे, हमको-
पापों में डालने को जिसकी बाहें पिली है।

मंत्र- नुदस्व काम प्र णुदस्व कामावर्तिं यन्तु मम ये सपत्नाः। तेषां नुत्तानामधमा तमास्यग्ने विर्दह त्वम्।।४।।

काव्यार्थ-

हे कामना के योग्य परमेश्वर विनय,
हमको बढ़ाओ आगे, यही ज़िद करते अड़े हैं;
हे नित्य कमनीय हमें आगे बढ़ा तू,
बाधाएं बहुत मार्ग में, बहु कंट गड़े हैं।
वह लोग जो हमारे हुए वैरी, वह सभी-
भोगे विपत्तियां कि जिनकी गहरी जड़े हैं।
तेजस्वी प्रभु! उनके घरों को तू भस्म कर,
अत्यन्त नीचे अन्धकारों में जो पड़े हैं।

मंत्र- सा ते काम दुहिता धेनुसच्यते यामाहुर्वाचं कवयो विराजम्। तया सपत्नान्परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान्प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु।।५।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभो! तेरी वाणी गुणों से पूर।
पूर्ण कामना करने वाली, जग में है मशहूर।।
कविगण जिसको विविध ऐश्वर्यों युत सदा बताते,
तू उससे वह वैरी हटा जो शत्रु मेरे कहाते;
उनसे जीवन वृत्ति, प्राण अरू सकल जीव रहें दूर।।

मंत्र- कामस्येन्द्रस्य वरूणस्य राज्ञो विष्णोर्बलेन सवितुः सवेन। अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नांछम्बीव नावमुदकेषु धीरः।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

महनीय ऐश्वर्यधारी, सर्वश्रेष्ठ जो है,
सबका ही राज, सर्वव्यापक हो साजता;
जो है सर्वज्ञ, जिससे छिपा नहीं है कुछ,
सबको ही प्रेर, दूर करता अकाजता।
तत् शक्ति, ऐश्वर्य और छिपे दान द्वारा,
मैं सदैव अरि को भगाता हुआ गाजता,
ज्यों प्रवीण नाविक, जो निज नाव गहरे जल-
बीच में चलाता, उस पार हो विराजता।।

मंत्र- अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यमसपत्नमेव। विश्वेदेवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवमा यन्तु म इयम्।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वह कामना योग्य अरू बली, तेजमय आप्त।
मम अध्यक्ष प्रभु सकल शत्रु करे समाप्त।।
हो सम्पूर्ण दिव्यगुण मम ऐश्वर्य-कोष।
सकल देव आकर सुनें मेरा यह उद्घोष।।

मंत्र- इदमाज्यं घृतवज्जुषाणाः कामज्येष्ठा इह मादयध्वम्। कृणवन्तो मह्यमसपत्नमेव।।८।।

काव्यार्थ- **गीत**

विज्ञजन! करो शत्रु अवसन्न।
करके शत्रु विहीन, हमें तुम आकर करो प्रसन्न।।
प्रभु-ज्योति-पूर्ण गति का तुम नित नित सेवन करते,
सबसे बड़ा मान प्रभु को, प्रभु की महिमा में विचरते,
दुष्ट जनों को मार, करो हम बीच मोद उत्पन्न।।

मंत्र- इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान्मम पादयाथः। तेषां पन्नानामधमा तमांस्यग्ने वास्तून्यनुनिर्दह।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

कमनीय परमेश्वर! अग्नि वायु के साथ।
रथारूढ़ हो, अधोमुख कर शत्रु का माथ।।
तेजस्वी प्रभु! जो लिये अधम-तमस का बम्ब।
उन अदि-दल के घरों को सतत जला अविलम्ब।।

मंत्र- जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्यव पादयैनान्। निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

कमनीय परमेश्वर! शत्रु मेरे जो लोग।
उन्हें नाश, उनको करा गहन अंध का भोग।।
वह सब ही निर्धन तथा निर्वीर्य हो जाँय।
अरू कुछ दिन तक भी नहीं वह जीवित रह पाँय।।

मंत्र- अवधीत्कामो मम ये सपत्ना उरूं लोकमकरन्मह्यमेधतुम्। मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो मह्य षड्डुर्वीर्घृतमा वहन्तु।।११।।

काव्यार्थ- दोहा

कमनीय प्रभु ने मेरे शत्रु कर दिये नष्ट।
अरू बढ़ने के हित दिया कार्य-क्षेत्र प्रकृष्ट।।
चतुर्दिशाएं नम्रता धारें मेरे हितार्थ।
विस्तृत शेष दिशाएं छः लायें सार पदार्थ।।

मंत्र- तेऽधरांचः प्र प्लवन्ता छिन्ना नौरिव बन्धनात्। न सायकप्रणुत्तनां पुनरस्ति निर्वतनम्।।१२।।

काव्यार्थ- दोहा

सत्कर्मों से दूर नर सदा अधोगति पांय।
वह बन्धन कटी नाव सम नीचे बहते जाँय।।
शत्रु कि जिनको वाणों के द्वारा दिया भगाय।
वह फिर कभी भी लौटकर वापिस आ नहीं पांय।।

मंत्र- अग्निर्यवइन्द्रोयवः सोमो यवः। यवयावानो देवा यावयन्त्वेनम्।।१३।।

काव्यार्थ- कवित्त

दाहक अग्नि सम ज्ञानवान प्रभुदेव,
नष्ट करते अधर्म, धर्म महा करते;
वह परमैश्वर्यवान जगदीश सदा,
दुष्कर्म नाश सद्-कर्म चहा करते।
सुख के जनक प्रभु से सदा सुकर्मियों को,
सर्व सुख सर्वदा प्रदत्त रहा करते;
पापियों को दण्ड दिया करते जो, वह प्रभु-
आज्ञा में सर्वदा प्रवृत्त रहा करते।।

मंत्र- असर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो द्वैष्यो मित्राणां परिवर्ग्य१ः स्वानाम्। उत पृथिव्यामव स्यन्ति विद्युत उग्रो वो देवः प्रम ृणत्सपत्नान्।।१४।।

काव्यार्थ-

जिस शत्रु को भगाया, वह वीरों से रहित हो,
उसके स्वमित्रों ने भी उसे त्याग दिया हो;

वह यत्र-तत्र पृथिवी पर भटकता ही फिरे,
उसको शरण के हेतु कहीं पर न ठिया हो;
अरू पृथिवी पर गिरती ज्यों बिजलियाँ, त्यों शत्रु का-
विजयी प्रबल प्रभु ने सर्वनाश किया हो।

मंत्र- च्युता चेयं बृहीत्यच्युता च विद्युत्बिभर्ति स्तनयित्नूंश्च सर्वान्। उद्यान्नादित्योद्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान्नुद तां मे सहस्वान्।।१५।।

काव्यार्थ-

यह जो महत् प्रकाशमान शक्ति प्रभू है,
यह गिरते हुओं और न गिरतों को धारता;
जो शब्द करते जीव हैं धरती व गगन पर,
उन सबको भी यह धारता है औ संभारता;
यह उदय होता शक्तिमय निज बल व तेज से,
वैरी को दे अधः भगा उसको प्रजारता।

मंत्र- यत्ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृत्यम्। तेन सपत्नान्परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान्प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु।।१६।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभो कमनीय, जगत् आधार।
तेरा कवच वेद रूपी है, शत्रु नसावनहार।।
तीन ओर से रक्ष रहा विस्तीर्ण तथा सुखदायी,
इसकी महिमा ऋषि, मुनि, ज्ञानी लोगों ने गायी,
अति ही सुदृढ़, अभेद्य कवच यह, सज्जन जन की ढार।।
कवच द्वारा मम शत्रु रहे जो, प्रभो! तोड़ दें उनको,
जीवन वृत्ति, सकल जीव, अरू प्राण छोड़ दें उनको,
राक्षस वृत्ति धारते उनको दीजे कष्ट अपार।।

(तीन ओर से अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक)

मंत्र- येन देवा असुरान्प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यूनधमं तमो निनाय। तेन त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात्प्रणुदस्व दूरम्।।१७।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभो कमनीय जगत् आधार।
सबके रक्षक प्रभो! आप अतुलित बल के आगार।।
जिस उपाय से विजयी जन ने असुर किये बाहर हैं,
डाकू हीन-अंध में डाले ऐसे नर नाहर हैं;
मम शत्रु का उसी विधि से करिये आप आहार।।

मंत्र- यथा देवा असुरान्प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूनधमं तमो बबाधे। तथा त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात्प्र णुदस्व दूरम्।।१८।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभो कमनीय, जगत् आधार।
सबके रक्षक प्रभो! आप हैं शक्ति के आगार।।
पराक्रमियों ने जिस शक्ति से असुर किये बाहर हैं,
किया डाकुओं का जिस शक्ति, हीन-अंध का घर है,
प्रभु! इस थल से शत्रु हटा दो, उसी शक्ति को धार।।

मंत्र- कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः। ततस्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महास्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि।।१६।।

काव्यार्थ-

सबसे प्रथम प्रकटा जो, वह काम्य ईश्वर था,
सूर्यादि लोंको, मनुजों ने इसको नहीं पाया;
इस हेतु हे ईश्वर तू सबसे अधिक बड़ा है,
महनीय सब प्रकार केवल तू ही कहाया।।
हे ऐसे कामना के योग्य मेरे परमेश्वर,
मैं छोड़ और सबको करता नमन तुझे हूं।।

मंत्र- यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यदुयावदग्निः। ततस्त्वमसिज्यायाान्विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नभ इतकृणोमि।।२०।।

काव्यार्थ-

विस्तार से जो कुछ भी द्यु लोक यह फैला है,
फैलाव से पृथिवी का जितना बड़ा जहान;
जितना है जल की धाराओं, अग्नि का फैलाव,
उन से भी बड़ा तू है, सब भांति से महान्।

हे ऐसे कामना के योग्य मेरे परमेश्वर,
मैं छोड़ और सबको, करता नमन तुझे हूँ।।

मंत्र- यावतीर्दिशः प्रदिशो विषूचीर्यावतीराशा अभिचक्षणा दिवः। ततस्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्तस्मैते काम नम इत्कृणोमि।।२१।।

काव्यार्थ-

यह सब की सब दिशाएं फैली हुई जहां तक,
अरू उप-दिशाओं का यह फैला हुआ जहान;
भूमि तथा गगन के सब दृश्य हैं जहां तक,
उससे भी बड़ा तू है, सब भांति से महान्।
हे ऐसे कामना के योग्य मेरे परमेश्वर,
मैं छोड़ और सबको, करता नमन तुझे हूँ।।

मंत्र- यावतीर्भृङ्गा जत्वः कुरूरवो यावतीर्वधावृक्षसर्प्यो बभूवुः। ततस्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि।।२२।।

काव्यार्थ-

कुत्सित ध्वनि की भ्रमरी आदि हैं जहां तक, औ-
चिमगादड़ो व टिड्ढी आदि से भरा जहान;
वृक्षों पर चढ़ने वाले सांप आदि हैं जहां तक,
उनसे भी बड़ा तू है, सब भांति से महान्
हे ऐसे कामना के योग्य मेरे परमेश्वर,
मैं छोड़ और सबको, करता नमन तुझे हूँ।।

मंत्र- ज्यायान्निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि काम मन्यो। ततस्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि।।२३।।

काव्यार्थ-

पलकों को झपकने वाले नाना प्राणियों का-
फैला हुआ जहां तक है दीखाता जहान;
अरू ठहरे हुए पर्वत, वृक्षादि से बड़ा है
सागर से भी बड़ा है, सब भांति से महान्।

हे ऐसे कामना के योग्य मेरे परमेश्वर,
मैं छोड़ और सबको, करता नमन तुझे हूँ।

मंत्र- न वै वातश्चन काममाप्नोति नागिनः सूर्यो नोत चन्द्रमा । ततस्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महाँस्तस्मै ते काम नम इत्कृणोमि।।२४।।

काव्यार्थ-

दिन-रात ढूंढने में रहती जो व्यस्त, ऐसी-
तेरी किसी पवन ने तेरा न किया ज्ञान;
किंचित न अग्नि, सूर्य, चन्द्र ने तुझे पाया,
इनसे भी तू बड़ा है, सब भांति से महान्।
हे ऐसे कामना के योग्य मेरे परमेश्वर,
मैं छोड़ और सबको, करता नमन तुझे हूं।।

मंत्र- यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे। ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेषया धियाः।।२५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

कामना के योग्य कमनीय परमेश्वर,
तेरी शक्तियाँ समस्त उपकार करतीं;
ये है कल्याणकारी, मंगल प्रदानती है,
कर देतीं सत्य, तेरी चाह जिसे वरती।
प्रभु-देव। हम हेतु तेरी कल्याणकारी-
शक्तियाँ सदैव रहें हममे विचरती;
अन्य पापलिप्त व्यक्तियों की पाप बुद्धिबीच,
पैठ करती, करे कठोर दण्ड भरती।।

सूक्त ३

मंत्र- उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत। शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दरवाजे सब ओर हैं दिखे प्रशंसा योग्य।
शाला भय को नष्ट कर, देती है आरोग्य।।
शाला के स्तम्भ अरू जोड़ व बन्धन गाँठ।
हम शुभ रीति जोड़ते नहीं डालते साँठ।।

मंत्र- यत्ते नद्धं विश्ववारे पाशों ग्रन्थिश्च यः कृतः। बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि संस्रयामि तत्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

श्रेष्ठ पदारथ धारिणी हे शाले! तव ठाँट।
जो पहले से हैं बंधे बंधन, जाल व गाँठ।।
मैं उनको हूँ खोलता वैसे ही हर्षाय।
ज्ञानी जैसे वाणी से अरि को शिथिल बनाय।।

मंत्र- आ ययाम सं बर्ह ग्रन्थींश्चकार ते दृढान्। परूंषि विद्वांछस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पहले एकत्रित किया हमने सब सामान।
उसे यथास्थान फिर जोड़ दिया कर ध्यान।।
जोड़ जानकर काटने वाले विज्ञ समान।
तत् जोड़ मजबूत कर काटा करके ध्यान।।
ज्यों विज्ञ-मन टूट को दृढ़ता देना भात।
त्यों सबको ही बांधते हम प्रभुत्व के साथ।।

मंत्र- वंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च। पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे शाला! सब कष्ट तू कर देती है दूर।
हम तव बन्धन पूर्णतः करते दृढ़ता पूर।।
तुझे बनाने के लिए लगने वाले बांस।
हम दृढ़ता से बांधते और लगाते धांस।।
बन्धन दोनों ओर के जोड़ों के स्थान।
तथा घास को बांधने का रखते हैं ध्यान।।

मंत्र- सन्दंशानां पलदानां परिष्वंजल्यस्य च। इदं मानस्य पत्न्या नद्धानि वि चृतामसि।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मान सुरक्षक शाले! तव जोड़ चटाइयों, और।
कैंचियों के बन्ध बांधता तन, बुद्धि के जोर।।

मंत्र- यानि तेऽन्तः शिक्यान्याबेधू रण्याय कम्। प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नी न उद्धिता तन्वे भव।।६।।

काव्यार्थ- दोहा

तव भीतर छींके बने सुखद पदारथ हेत।
हम तेरे से शुभ विधि उनको बांधे देत।।
मान रक्षिणी शाले तू मम तन रक्ष सदैव।
कल्याणी, ऊँची उठी हो तू सिद्ध तथैव।।

मंत्र- हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः। सदो देवानामसि देवि शाले।।७।।

काव्यार्थ- दोहा

दिव्य शाले! तुझमें बना नारी वास स्थान।
धन-धान्य, यज्ञ, अग्नि के वास का तुझको ध्यान।।
विज्ञ वास-स्थान अरू बना सभा स्थान।
तथा कुटुम्बी व्यक्तियों का है वास प्रधान।।

मंत्र- अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति। अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि।।८।।

काव्यार्थ- दोहा

वेद विज्ञ नर ने जिसे छाया है शुभ रीति।
शिल्पी जन की राय ले जिसको रचा सप्रीति।।
ऐसा हजारों छिद्रों का सर्व-दर्शक स्तम्भ।
हम उपयोगी जान, रच रंच न करते दंभ।।

मंत्र- यसत्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम्। उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी।।९।।

काव्यार्थ- दोहा

हे शाले! सम्मान की रक्षक, अति हितकार।
जिस व्यक्ति ने है किया तुझको अंगीकार।।
जिसके हित तुझको रचा शाले! दयावन्त।
वह दोनों जीवित रहें जरा काल पर्यन्त।

मंत्र- अमुत्रैनमा गच्छताद् दृढ़ा नद्धा परिष्कृता। यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परूष्परूः।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे शाले! तव तन बना सुदृढ़ता की खान।
सजती रह तू सर्वदा रह अपने स्थान।।
तू उस नर को प्राप्त हो नित मन बीच अघाय।
जिसने प्रति अंग, पोवा दृढ़कर दिया बनाय।।

मंत्र- यस्त्वा शाले निमिमाय संजभार वनस्पतीन्। प्रजायै चक्रै त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

शाले! गृहपति ने किया तव स्थापन कर्म।
तथा वनस्पति आदि के संग्रह का शुभ धर्म।।
शाले वह गृहपति रहा निज गृहस्थ का केतु।
उसने तुझको बनाया जन-जन के सुख हेतु।।

मंत्र- नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मः। नमोऽग्नये प्रचरते पुरूषाय च ते नमः।।१२।।

काव्यार्थ-

उस जन्म देने वाले को नमस्कार अपना,
शाला के स्वामी को भी है नमस्कार अपना;
है नमस्कार उसको, चलती जो सतत अग्नि,
अरू तेरे अन्य पुरूषों को नमस्कार अपना।

मंत्र- गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते। विजावति प्रजावति वि ते पाशांष्चृतामसि।।१३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तुझमें उपजे धान्य अरू गउओं, घोड़ों हेतु।
हे शाले! तुझको नमन बार-बार हम हेतु।।
हे शाले! संतान युत् अरू उत्पादन पूर्ण।
तुझे बनाते दृढ़, तेरे पाश बांधकर तूर्ण।।

मंत्र- अग्निमन्तश्छादयसि पुरूषान्पशुभिः सह। विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि।।१४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे शाले! तव पशु, पुरूष अग्नि न होत विलुप्त।
उनको अपने में रखा करती है तू गुप्त।।

हे शाले! संतान-युत अरू उत्पान पूर्ण।
तुझे बनाते दृढ़, तेरे पाश बांधकर तूर्ण।।

मंत्र- अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम्। यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत्वकृण्वेऽहमुदरं शेवदिम्यः। तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै।।१५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

द्यु, पृथिवी के बीच जो फैला है विस्तार।
उसमें यह शाला मुझे तव हित है स्वीकार।।
हे शाले! तव मध्य को धन संग्रह हित जान।
उदर सरीखा बनाता उसको मैं स्थान।।
हे शाले! उस ही विदित कारण को मन धार।
तथा उसी उद्देश्य से तू मुझको स्वीकार।।

मंत्र- ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता। विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः।।१६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

शाले! तुझको रचा, कर उचित भूमि की माप।
निज निवासियों में तू बल विक्रम देती थाप।।
जल, दुग्ध, अन्न आदि की धारक शाले धीर।
जो करते तुझको ग्रंहण उन्हें न देना पीर।।

मंत्र- तृणैरावृता पलदान्वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी। विह्ना पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती।।१७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पल के दाता मंत्रों को पहने शाला धीर।
आच्छादित तृण आदि से करती, धरती नीर।।
जग को आश्रय देती हे शाले! रात्रि समान।
तू दुष्टों को मृत्यु दे करती उन्हें नमान।।
उत्तम पग की हथिनी सम धारे दृढ् स्तम्भ।
रह कर रक्षित, कर सदा शांति दान आरम्भ।।

मंत्र- इटस्य ते वि चृताम्यपिनद्धमपोर्णुबन्। वरूणेन समुब्जितां मित्राः प्रातर्व्युब्जतु।।१८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे शाले! तव द्वारों की सांकल, चटखनी बन्द।
मैं प्रकाश पर खोलता अन्धकार पर बन्द।।
ढकने वाले अंध से अहे दबी शुभकार।
तुझे सूर्य प्रातः समय खोला करे सकार।।

मंत्र- ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम्। इन्द्राग्नी रक्षतां शलाममृतौ सोम्यं सदः।।१६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जिसकी नीव डालते चतुर्वेद विद्वान्।
नाप-तोल रचते जिसे शिल्पी अति सुजान।।
वह शाला ऐश्वर्ययुत् होती रहे सदैव।
मरण रहित अग्नि पवन रक्षा करें तथैव।।

मंत्र- कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः। तत्र मर्तो वि जायते यस्माद्विश्वं प्रजायते।।२०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मंजिल पर मंजिल रखी शाला भरती तोष।
दबा होता ज्यों नीड़ पर नीड़ कोश पर कोश।।
इस शाला में ही जन्म लेता रहा मनुष्य।
सन्ताने उत्पन्न हो रचती रहीं भविष्य।।

मंत्र- या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमियते। अष्टापक्षं दशपक्षां शाला मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भइवा शये।।२१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

शाला दो पक्ष की अरू चार पक्ष की होय।
छः पक्ष, आठ पक्ष की अरू दस पक्ष की कोय।।
यह मेरे सम्मान की रक्षक, मम पहचान।
शाला से मैं सर्वदा पाया करता त्राण।।
जठराग्नि तन बीच ज्यों शिशु गर्भाशय बीच।
त्यो रक्षित रहता सदा मैं शाला के बीच।।

मंत्र- प्रतीचां त्वा प्रतीचीमः शाले प्रैम्यहिंसतीम्। अग्निह्यभ्न्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः।।२२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

शाले! पीर न देती, मम सम्मुख आती खास।
तव सम्मुख चलता हुआ मैं आता तव पास।।
तव भीतर रहता सदा अग्नि जल आगार।
यह दोनों ही सत्य के ध्यान का पहला द्वार।।

मंत्र- इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः। गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना।।२३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

रोग रहित रह, रोगों को रखता है जो थाम।
उस जल से निज शाला को भरता मैं अविराम।।
मृत्यु-रक्षक अन्न, पय की है जहां पर पैठ।
उस अग्निमय शाला में मैं आ, जाता बैठ।।

मंत्र- मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव। वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि।।२४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

रोग रहित हों, जल करे नष्ट हमारी व्याधि।
शाला में भरता रहूं सुख-दा जल की राशि।।
शाले! हम पर अपना तू पाश छोड़ नहीं कोय।
नित-नित निज जग भार को हलका करती होय।।
कुल वधू का करते यथा रक्षण पोषण सुष्ठ।
त्यों इच्दानुसार हम तुझको करते पुष्ट।।

मंत्र- प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यःस्वाह्येभ्यः।।२५।।

काव्यार्थ-

पूर्व दिशा से शाला की महिमा बढ़े सदैव,
तद् हेतु नित प्रति रहे अन्न धारता पाणि।
वेद वाणी प्रचार जो नित करते विद्वान,
उन विद्वानों हित सदा होवे सुख-दा वाणि।

मंत्र- दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहयेभ्यः।।२६।।

काव्यार्थ-

दक्षिण दिशा से शाला की महिमा बढ़े सदैव,

(शेष मंत्र २५ का काव्यार्थ-)

मंत्र- प्रतीच्या दिशःशालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः।।२७।।

काव्यार्थ-

पश्चिम दिशा से शाला की महिमा बढ़ै सदैव,

(शेष मंत्र २५ का काव्यार्थ-)

मंत्र- उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्य स्वाह्येभ्यः।।२८।।

काव्यार्थ-

उत्तर दिशा से शाला की महिमा बढ़े सदैव,

(शेष मंत्र २५ का काव्यार्थ-)

मंत्र- ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहेभ्यः।।२९।।

काव्यार्थ-

नीचे की दिशा से शाला की महिमा बढ़े सदैव

(शेष मंत्र २५ का काव्यार्थ-)

मंत्र- ऊर्ध्वाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाह देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः।।३०।।

काव्यार्थ-

उत्तर की दिशा से शाला की महिमा बढ़े सदैव,

(शेष मंत्र २५ का काव्यार्थ-)

मंत्र- दिशोदिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः।।३१।।

काव्यार्थ-

दसों दिशा से शाला की महिमा बढत्रे सदैव,

(शेष मंत्र २५ का काव्यार्थ-)

सूक्त ४

**मंत्र- साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान्विश्वा रूपाणि वक्षणसु बिभ्रतः।
भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन्बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान्।।१।।**

काव्यार्थ-

जो सहस्रों शक्तियों का तेजस्वी अन्नवान,
सब रूपवान द्रव्यों की छाती में समेटे;
व्याख्या किया गया है जो बृहस्पतियों के द्वारा,
सबका निवास, सर्वव्याप्त सबको ही देखे;
उसने सुदानी यजमान के हित की लिये इच्छा
विस्तृत जगत् के रूप तन्तु फैलाये, फेंके।

मंत्र- अपा यो अग्ने प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मतै पृथिवीव देवी। पिता वत्सानां पतिरध्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु।।२।।

काव्यार्थ-

वह प्रभु सभी से पहले प्रजाएं जानने की,
शक्ति हुआ व सब जग हेतु हुआ समर्थ;
सब प्राणियों का पालनकर्ता, तथा अहिंसक-
प्रजापति गणों का स्वामी हुआ तदर्थ;
वह प्रभु सहस्रों विधि से पुष्टि करे हमारी,
करते विनय जो हम हैं, जाया करे न व्यर्थ।

मंत्र- पुमानन्त्वान्त्स्थविरः पयस्वान्वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति। तमिन्द्राय पथिभिदेवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः।।३।।

काव्यार्थ-

रक्षक सभी का, सबको रखता जो अपने भीतर,
स्थिर स्वभाव, अन्न वाला हुआ विचरता;
परमैश्वर्यवान, जो है महान् दाता,
संसार के उदर को जो है अकेला भरता;
ऐश्वर्य प्राप्ति हेतु तेजस्वी महत् ज्ञानी-
व्यक्ति सदैव अपना वह मार्ग रहे वरता;
जो जानने के योग्य विद्वानों को रहा है
जिस मार्ग पर प्रभु का आनन्द स्रोत झरता।

मंत्र- पिता वत्सानां पितरध्नयानामथो पिता महतां गर्गराणाम्। वत्सो जरायु प्रति धुक्पीयूष आमिक्षा घृतं तद्वस्य रेतः।।४।।

काव्यार्थ-

जग के सभी निवासी, उपदेशकर्ता ज्ञानी,
प्रजापति जनों का पालक प्रभु प्रबल है;
बालक नवोत्पन्न, दूध दुहा तुरन्त,
अरू घृत दही, प्रभु का सामर्थ्य पूत बल है।

मंत्र- देवानां भाग उपनाह एषो३पां रस आषधीनां घृतस्य। सोमस्य भक्षामवृणीत शक्रो बहन्नद्रिरभवद्यच्छरीरम्।।५।।

काव्यार्थ-

जल, औषधि व घृत का रस-रूप है परमेश्वर,
दिव्य जनों का नित्य सम्बन्धी है वह एक;
अमृत का भोग स्वीकारा उसने हमारे हित,
जो इसका था शरीर, वह ही है बड़ा मेघ।

मंत्र- सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम् शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमान्य९स्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः।।६।।

काव्यार्थ-

उत्पन्न करने वाले सब जीवों को, तथा सब-
रूपों को रचने वाले मेरे प्रभु पियारे;
धारण किये हुए है अमृत भरे कलश को,
तू अपने नियंत्रण में सब शक्तियों को धारे;
प्रजनन की शक्तियाँ तव, कल्याणकारी होवें,
इन शक्तियों का हम को तू दान कर सकारे,
प्रजनन की वह भी जो जो तव शक्तियाँ है, उनको-
कल्याण हेतु प्रभुवर पहुंचा हमारे द्वारे।

मंत्र- आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रपोशस्तमु यज्ञमाहुः। इन्द्रस्यरूपमृषभोवसानः सो अस्मान्देवाः शिव एतु दत्तः।।७।।

काव्यार्थ-

बहु ज्योतियों के धारक प्रभु का प्रकाशपूर्ण-
सामर्थ्य सब उपाय धारण किये हुए है;
वह सहस्रों पराक्रम से युक्त सबका पोषक,
उसको ही यज्ञ कहते त्रिलोक को छुए हैं;

विद्वान् लोगों! प्रभु वह ऐश्वर्य रूप धारी,
सबके हृदय में जो कि आसन दिये हुए है,
प्रभुवर वह सर्वदर्शक, हम सब ही विज्ञ जन को,
शुभ होकर प्राप्त होवे, विनती किये हुए हैं।

मंत्र- इन्द्रस्यौजो वरूणस्य बाहूअश्विनोरंसौ मरूतामियं कुकुत्। बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुर्ये धीरासः कवयो ये मनीषिणः॥८॥

काव्यार्थ-

धीर-मनस्वी, ज्ञानी, प्रभु को सूर्य की शक्ति,
जल की भुजा, दिन-रात्रि के कंधे बताते हैं,
इसको पवन की कोहनी, इसको अति-विशाल-
लोकों का स्वामी, पोषण कर्ता हुआ पाते हैं।

मंत्र- दैवीर्विशः पयस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वा सरस्वन्तमाहुः। सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्रह्मणः ऋषभमाजुहोति॥६॥

काव्यार्थ-

हे अन्नवान्! दिव्य गुण वाली प्रजाओं को,
तू फैलाता सब ओर, सूरज ज्यों अपनी किरणें;
विद्वान् लोग तुझको बतलाते महा ज्ञानी,
ऐश्वर्यवान्! तुझसे उठते जो लगते गिरने;
जो वेद-ज्ञान में प्रभु-ज्ञानी को ग्रहण करता,
वह ब्राह्मण सदैव प्रजा में रहता फिरने,
एक ईश में प्रमुखता रखतीं सहस्र विद्या-
देकर मनुष्यों को, लगता प्रभु सुमरने।

मंत्र- बृहस्पतिः सविताते वयो दधौ त्वष्टुर्वायो पर्यात्मा त आभृतः। अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम्॥१०॥

काव्यार्थ-

हे नर! समस्त लोकों के स्वामी तेरे प्रभु ने-
तुझको दिया हुआ है शुभ अन्न का महा धन;
उस विश्वकर्मा प्रभु ने ही तेरी आत्मा को,
सब ओर से किया है परिपूर्ण औ लुभावन;
सब में ही दृष्टिगोचर होते प्रभु के बीच,
मैं मन से ग्रहण करता तुझको बना तेरा जन;

तू सर्वदा ही वृद्धि करता रहे सुकर्मी,
द्यु लोक औ भू-लोक दोनों हो तेरा आसन।

मंत्र- य इन्द्रइव देवेषु गोष्वेति विवावदत्। तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया।।११।।

काव्यार्थ-

परमैश्वर्यवान् नर समान विज्ञों बीच में,
जो प्रभु अनेक भांति से वाचन दिया करें;
जो भूमि आदि लोकों में चलता, नहीं रूकता,
उत्तम चतुर्वेदों का ज्ञाता, भज लिया करें;
अरू सर्वव्याप्त प्रभु के अंगों का भली विधि,
कल्याणकारी रीति से वर्णन किया करें।

मंत्र- पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ। अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति।।१२।।

काव्यार्थ-

काँखे दुहू प्रभु की रहीं अनुकूल बुद्धि की,
अरू उसकी दुहु कोखें ऐश्वर्य की रहीं;
उसके दुहू घुटनों को प्राण ने बताया कि-
केवल यही दोनों मेरे हैं, और के नहीं।

मंत्र- भसदासीदादित्यानां श्रोणि आस्तां बृहस्पतेः पृच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः।।१३।।

काव्यार्थ-

पेडू प्रभु की थी अनेक सूर्य लोकों की,
उसके दुहू कूल्हों में बृहस्पति का लोक था;
अरू पूंछ उसकी थी रही गतिवान वायु की,
औषधियों को जिससे वह हिलाता बेटोक था।

मंत्र- गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन्। उत्थातुरब्रुवन्पद ऋषभं यदकल्पयन्।।१४।।

काव्यार्थ-

उस सर्वव्याप्त ईश की गुदा की नाड़ियाँ-
चौदस के साथ मिली अमावस को बताया;

सूरज की धूप त्वचा को वह कह रहे थे, औ-
पैरों को उठने वाले पुरूष का था बताया।

दोहा

वेदज्ञ विद्वानों ने भक्तों से सप्रीति।
दिया कल्पना से बता प्रभुवर को तद्रीति।।

मंत्र- क्रोड आसीज्जामिशंस्य सोमस्य कलशो घृतः। देवाः संगत्य यत्सर्व ऋषभं व्यकल्पयन्।।१५।।

काव्यार्थ-

प्रभु की है गोद ज्ञानियों में ख्यात व्यक्ति की;
उसका कलश भरा हुआ अमृत अपार से;
यह तब है जब कि श्रेष्ठ विद्वान् व्यक्तियों ने मिल,
प्रभु देव की, की कल्पना नाना प्रकार से।

मंत्र- ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान्। ऊबध्यमस्य कीटेभ्यःश्ववर्तेभ्यो आधारयन्।।१६।।

काव्यार्थ-

उन ऋषियों ने पदार्थ चुराने की वृत्ति को-
कुतिया को दिया जो कि सरक कर चला करती;
कछुओं को हिंसा वृत्ति, उसका अन्न कुपचा-
मृत देह वासी कीड़ों, कुत्तों में किया भरती।

मंत्र- शृङ्गभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्ती हन्तिचक्षुषा। शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवायः पतिरध्न्यः।।१७।।

काव्यार्थ-

प्रजापति परमेश जो हिंसा से रहित है,
जो सब ही लोकों का रहा स्वामी, प्रजापालक;
अपने अरि-विनाश रूप सींगों के द्वारा,
अविराम हटाता है राक्षसों को जो घालक;
निज नेत्र से करता विनाश जो अकाल का,
कानों से स्वस्ति सुनता जो कल्याण का चालक।

मंत्र- शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः। जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति।।१८।।

काव्यार्थ-

जिज्ञासु ब्रह्म-ज्ञानी विद्वान्, जो कि उस-
परमात्मा अति श्रेष्ठ को करता प्रसन्न है;
वह श्रेष्ठ व्यवहार करता, दिव्य गुणों से-
पा तृप्ति, नहीं तापों से होता विपन्न है।

मंत्र- ब्रह्मणेभ्य ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः। पुष्टिं सो अध्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते।।१६।।

काव्यार्थ-

दे ब्रह्म-जिज्ञासुओं को श्रेष्ठ प्रभु का बोध,
आचार्य जो तत् मन अधिक विस्तृत किया करता;
वह अपने वाचनालय अहिंसक रहे जन की-
पुष्टि को देखकर, मुदित मन को किया करता।

मंत्र- गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तुनू बलम्। तत्सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिने।।२०।।

काव्यार्थ-

विद्याएं हों, प्रजाएं हों, अरू इसके साथ ही,
तन बीच अतुल बल रहे, किंचित न ढील हो;
जिसने हमें प्रभु ज्ञान दिया, उसके लिए हम,
यह सब सदा स्वीकार करें, कर्मशील हो।

मंत्र- अयं पिपान इन्द्र इद् रयिं दधातु चेतनीम्। अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः।।२१।।

काव्यार्थ-

जगदीश है प्रबुद्ध ऐश्वर्यवान्, वह-
धन देवे हमें ऐसा जो कि चेतना लाये;
देवे प्रभत्व और वाणि नित निवास की,
शुभ रीति हमें पूर्ण कर आनन्द दिलाये;
हिंसा तथा मद से सदैव दूर रहता जो,
वह बुद्धिमान व्यक्ति परिपूर्णता पाये।

मंत्र- पिशंगरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मोविश्वरूपो न आगन्। आयुरस्मभ्यं दधत्प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम्।।२२।।

काव्यार्थ-

आया हमारे पास सभी रूपों युक्त प्रभु,
जो अवयवों को रूप दिया करता, सींचता;
आकाश का जीवन जो धारता, महाबली,
महनीय ऐश्वर्यों का स्वामी जो दीखाता;
सींचे हमें आयु, प्रजा, धन वृद्धियों द्वारा,
पुष्टि हमें देवे, रहे कष्टों को मीचता।

मंत्र- उपेहोपपर्चनास्मिन्गोष्ठ उपपृंच नः। उपऋषभस्य यद्रेत उपेन्द्र तव वीर्याम्।।२३।।

काव्यार्थ-

परमेश्वर! निकट रहे सम्बन्धी हमारे,
इन वाणियों के थल निकट हमारे वास कर;
हे परम ऐश्वर्य के धारी हमारे प्रभु,
हे सर्वशक्तिमान शत्रुओं में त्रास भर;
तुझमें जो पराक्रम तथा वीरत्व रहा है,
उस साथ पास रहता, सदा ही प्रकाश भर।

मंत्र- एतं वो युवानं प्रति दध्मों अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशां अनु। मा नो हासिष्ट जनुषा सुभगा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम्।।२४।।

काव्यार्थ-

विद्वान जनों! हम सभी इस सर्वशक्तिमय
बलवान प्रभु प्रति हैं समर्पित तुम्हें करते;
परमेश्वर के साथ मन बहलाती प्रजाओं,
विचरो यहां नाना विधि प्रभुताओं में तरते;
जनता से पृथक मत करो हमको, महाधनी!
सींचों सभी दिशाओं से, धन को रहो भरते।

सूक्त ५

मंत्र- आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन्। तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नामका क्रमतां तृतीयम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यह जीवात्मा जान तू अरू कर ऐसे कर्म।
जिससे यह निज मार्ग को जान निभाए धर्म।।

प्राप्त करे जिससे कि यह वह श्रेष्ठ स्थान।
जिसको लभ सत्कर्मी जन करते हैं रसपान।।
अंधकार पसरा हुआ फैलाए निज पैर।
उसको नाना भांति से हे मनुष्य तू तैर।।
तू जीव अरू प्रकृति से भिन्न भली प्रकार।
सुख स्वरूप प्रभु तीसरे को कर प्राप्त सकार।।

मंत्र- इन्द्राय भागं परि नयाम्यास्मिन्यज्ञे यजमानाय सूरिम्। ये नो द्विान्त्यनु तान् रभस्वानागसो यजमानस्य वीराः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

संगतिकरण सुकर्म में संगतिकर्ता हेतु।
उसे दिलाने के लिए परमैश्वर्य जेतु।।
हे जीवात्मा! जो कि नित सेवनीय विद्वान्।
उस प्रभु की दिशि मैं तेरा करता हूं आह्वान।।
दोष सताते जो हमें उनको देने ताप।
संगतिकर्ता वीर जन बने रहें निष्पाप।।

मंत्र- प्र पदोऽव नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन्। तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्चन्नजो नाकमा क्रमतां तृतीयम्।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

इसने जो दुष्कर्म है किया पूर्व के काल।
वह सब इसके पांवों से हे प्रभु! तू धो डाल।।
शुद्ध पाँवों से आगे यह चले मार्ग को जान।
चारो ओर मार्ग को देख तथा पहचान।।
पथ में पसरा अंध जो फैलाये निज पैर।
उसको नाना भांति से पार करे यह तैर।।
यह जीव अरू प्रकृति से भिन्न भली प्रकार।
सुख-स्वरूप प्रभु तीसरा पाया करे सकार।।

मंत्र- अनुच्छ्यश्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्व१सिनामाभि मंस्थाः। माभि द्रुहः परूशः कल्पयैन तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम्।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अहे अविद्या के विनाशक विद्या भण्डार।
निज कर्तव्य पालने का कर सदा विचार।।
यह हृदयस्थ अविद्या जो ढकने वाली कहाय।
उसे शीघ्र तू काट, कर ज्ञान तथा सदुपाय।।
रंच नहीं कर तू कभी द्रोह तथा अभिमान।
कर समर्थ यह जीव अरू इसको बना सुजान।
प्रकृति जीव से भिन्न प्रभु सुख स्वरूप तृतीय।।
उसके आश्रय दे इसे आनन्द कमनीय।।

मंत्र- ऋचा कुम्रुभीमध्यग्नौ श्रयचाम्या सिंचोदकमव धेहूयेनम्।
पर्याधत्ताग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मैं अग्नि पर रखता हूं वेद-वाणी से पात्र।
तू विवेक से डाल जल इस पात्र के गात्र।।
हे चिन्तक! तन-पात्र में आत्मा-अन्न को टेक।
अरू इसको शुभ अग्नि से चारो दिशि से सेक।।
इस विधि पुष्ट बुद्धि लभ सकल अज्ञता रोक।
उस स्थल पर जा, जहाँ सुकर्मियों का लोक।।

मंत्र- उत्क्रामातः परिचेदतप्तस्तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयं अग्नेरग्निरधिसं
बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम्।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तपे हुए इस पात्र से रंच न हो संतप्त।
तू बाहर को निकल, पी सोम सुधा, हो तृप्त।।
प्रकृति जीव से भिन्न जो प्रभु सुख रूप तृतीय।
उस दिशि ऊपर चढ़, तथा हो न कभी परकीय।।
ज्वलित अग्नि सम आत्मा धारक ज्ञान अनीश।
उस पर होता है प्रकट ज्ञानाग्नि युत ईश।।
उसका यह शुभ लोक जो है प्रकाश से पूर्ण।
अपने शुभ कर्मों से तू इसे प्राप्त कर तूर्ण।।

मंत्र- अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः।
अजस्त्मांस्यपहन्ति दूरमस्मिल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

आत्मा अजन्मा है अग्नि सम तन बीच,
तेजपूर्ण अग्नि अजन्मा प्रभु-देव भी;
जीवित मनुष्य में आत्मा अजन्मा ही,
प्रभु में समर्पण के योग्य है स्वमेव भी।।
इस लोक बीच उस प्यारे परमात्मा में,
श्रद्धा धारने की जिस नर ने भी टेव की।।
करता है वह अंधकार दूर, ऐसा वह-
ज्ञानी कहते जो करते हैं प्रभु-सेवकी।।

मंत्र- पंचौदनः पंचधा वि क्रमतामाक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि। ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

पृथिवी, जल आदि पंचभूतों द्वारा सींचा हुआ-
आत्मा, उनमें छिपे पांच गुण जान ले;
उन पांच गुणों से शरीर इन्द्रिय व विषय
तीन ज्योतियों की प्राप्ति-कामना को थाम ले।
करते जो देव-पूजा, संगति-करण, दान,
चलते हैं वेद अनुसार प्रभु नाम ले,
इन बीच आगे बढ़ तीसरे सुख स्वरूप-
परमात्मा में साधिकार विश्राम ले।।

(पंचभूत-पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश। पांच गुण-रस, गन्ध, रूप, स्पर्श, शब्द)

मंत्र- अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः पंचौदनो ब्रह्मणे दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयाति।।९।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे अजन्मा जीव-आत्मा! सुकर्मियों के लोक-
उच्च मार्ग चल कर जा, स्वयं को पुष्ट कर;
शत्रु-हंता शूर सम प्रार्थना किया गया तू,
पांव धर संकट बढ़ाते हर दुष्ट पर।
पृथ्वी, जल, तेज, वायु आदि पंचभूतों द्वारा,
सींचा गया, होकर अतीव गुणी, सृष्ट वर;

सर्वदा ही रह तू समर्पित प्रभु के प्रति,
स्वयं को तृप्तियों के द्वारा संतुष्ट कर।।

मंत्र- अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवांसं दधाति। पंचौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुधास्येका।।१०।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जगत् को रूप देती, तृप्तियों को दान करें,
कामनाएं पूर्ण करती यह वेद-वाणी है;
"प्रभु को समर्पित व पंचभूतों द्वारा सिंचा-
जीव-आत्मा कभी न रहता अनाड़ी है।
तीन सुखों वाली, तीन व्यवहारों वाली जो कि,
धर्म, अर्थ अरू काम जिसकी कि नाड़ी हैं;
ऐसी सुख की सिंचाई बीच रहे अर्पित को,
धारता ये जीव-आत्मा, कभी न छाँड़ि है"

(पंच भूत-पृथिवी, जल, तेज वायु आकाश। तीन सुख-शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक। तीन व्यवहार-आय, व्यय वृद्धि)

मंत्र- एतद्वोज्योतिः पितरस्तृतीयं पंचौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति। अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे पितरों! यह तीसरी ज्योति प्रभू महान।
तुमको जीवात्मा अजन्मा देती है दान।।
पंचभूतों द्वारा सिंचा जीवात्मा का दान।
इसको लभ फैलाओ जग बीच वेद का ज्ञान।।
श्रद्धालु नर का समर्पित जीवात्मा तूर।
इस लोक में अंध को कर देता है दूर।।

मंत्र- ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन्पंचौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति। स व्याप्तिमभि लोकं जयैतं शिवो३स्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु।।१२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

देव-पूजा, संगतिकरण और दान का कर्म,
पूरा कर जो सद्गुणी पालन करते धर्म।।
उनके पावन लोकों को पा लेने की चाह।
जो नर अपने हृदय में रखता है उमगाह।।

वह निज आत्मा अजन्मा पंच भूतों से सींच।
रखता आदर भाव से प्रभु-चरणों के बीच।।
प्रभु से स्वीकारा गया तत् जीवात्मा पूत।
सकल मनुष्यों के लिए मंगल देत अकूत।।

मंत्र- अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकाद्विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित्। इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषट्कृतं तद्देवा ऋतुशः कल्पयन्तु।।१३।।

काव्यार्थ- कवित्त

जनम रहित जीव-आत्मा प्रकट हुआ,
दीप्ति-मान परमेश्वर के सुतेज से;
बुद्धिमान जीव, बुद्धिमान परमेश्वर-
के बलों को जान, दूर रहता गुरेज से।
इस हेतु विद्वान् सम्पूर्ण भक्ति साथ,
प्रत्येक ऋतु शुभ-कर्म करें वेग से;
वेद-अध्ययन, अन्नदान आदि यज्ञ साथ,
प्रार्थना रंगों की करें, प्रभु रंगरेज से।।

मंत्र- अमोतं वासोदद्याद्धिरण्यमपि दक्षिणाम्। तथा लोकान्तसमाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः।।१४।।

काव्यार्थ- दोहा

मनुज ज्ञान द्वारा बुना वस्त्र, सुवर्ण साथ।
तथा दक्षिणा दान दे अपने दोनों हाथ।।
इससे प्राप्त करेगा वह पूर्ण रूप वह लोक।
जो पृथिवी नभ पर बने दिखते हरते शोक।।

मंत्र- एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुतः। स्तभान पृथिवीमुत द्यां नाकस्य पृष्ठेऽधि सप्तरश्मौ।।१५।।

काव्यार्थ- दोहा

हे अजन्मा जीवात्मा! तुझको मिले समस्त-
वह अमृतमय शक्तियाँ अन्ध करें जो अस्त।।
सार तत्व से सींचती उत्तम गुण से युक्त।
बरसातीं जो मधुरता करतीं बन्धन मुक्त।।
सप्त-किरणों का सूर्य, ले अपना पूर्ण प्रकाश।
सुख के आश्रय थिर करे धरती औ आकाश।।

मंत्र- अजो३स्यज स्वर्गोऽसि त्वया लोकमङ्गिरसा प्राजानन्। तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेषम्।।१६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे अजन्मे जीवात्मा! तू रहता गतिशील।
सुख को करता प्राप्त तू दुःख जाता है लील।।
ज्ञानी बुद्धिमानों ने जानी तेरे साथ।
दर्शनीय परमात्मा की सारी ही गाथ।।
दर्शनीय पावन प्रभू जो है जगदाधार।
उसे भली विधि जान मैं निज उर लूं बैठार।।

मंत्र- येनासहस्रं वहसियेनाग्ने सर्ववेदसम्। तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे।।१७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे ज्ञानी! जिस नियम तू व्यक्ति बली शुभ रीति-
ले जाता सब ज्ञान, धन युक्त यज्ञ के बीच।
उसी नियम प्राप्त व्य इस यज्ञ, विज्ञ जन बीच।
सुख पाने के हित हमें भी ले चल तू खींच।।

मंत्र- अजः पक्वः सवर्गे लोके दधाति पंचौदनो निर्ऋतिं बाधमानः। तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम।।१८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दृढ़ स्वभाव, सिंचित हुआ पंचभूतों के हाथ।
जीवात्मा जिस विधि हने महा-विपत्ति गाथ।।
जिस विधि से निज को रखे वह सुख-प्रापक लोक।
उस विधि से प्राप्त करें हम प्रकाशमय लोक।।

मंत्र- यं ब्रह्मणे निदरधो यं च विक्षु या विप्रुष ओदनानामजस्य। सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्नः संगमने पथीनाम्।।१६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

रखा प्रभु ने जो नियम ब्रह्म-ज्ञानियों बीच।
जिसे प्रजाजन में रखा हितकर रेखा खींच।।
जीवात्मा जो अजन्मा गतिशील कहलाय।
तत् भोगों की पूर्तियों में जो प्रकट लखाय।।

अपना वह सब सुकर्मी लोकों के दरम्यान।
जाने में पथ-सहायक है तू ऐसा जान।।

मंत्र- अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद् द्यौः पृष्ठम्। अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रो कुक्षी।।२०।।

काव्यार्थ- दोहा

सृष्टिपूर्व एक अजन्मा ब्रह्म दिखा जग बीच।
जो विचरण करता हुआ रहा जगत् को सींच।।
तत् छाती कटि, भूमि नभ पीठ हुआ द्यु रूद्र।
बनी दिशाएं पार्श्व अरू कोखें हुई समुद्र।।

मंत्र- सत्यं चरतं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः। एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पंचौदनः।।२१।।

काव्यार्थ- दोहा

सत्य तथा ऋत आंखें द्वय सकल विश्व अस्तित्व।
प्राण श्रद्धा, सिर प्रकृति दसों दिशा स्वामित्व।।
यही अपरिमित अजन्मा पूजनीय कहलाय।
पंचभूतों को सींचता एक यही दिखलाय।।

मंत्र- अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रून्ध्दे। यो३जं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति।।२२।।

काव्यार्थ-

दान क्रिया में ज्योति रखे जो दर्शनीय कहलाता है,
पंचभूतों को सींचने वाला तथा अपरिमित दाता है।
ऐसा रहा अजन्मा प्रभु है सर्वव्याप्त दिखलाता है,
उसकी आज्ञा में चल जो नर उसे ध्यान में लाता है।
एक उसी में आत्म समर्पण करना जिसको भाता है।
सबमें पूज्य अपरिमित प्रभु को एक वही नर पाता है।

मंत्र- नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत। सर्वमेनं समादायेदमिदं प्रवेशयेत्।।२३।।

काव्यार्थ- दोहा

वह रोग इस प्राणी का हाड़ न सकता तोड।
इसका मज्जा पी, न रख सकता इसे मरोड।।

सर्वशक्तिमय दुष्ट को रखता सदा प्रजार।
ऐसे प्रभु को जो ग्रहण करता भली प्रकार।।
वह प्रति वस्तु देखता प्रभु को हुआ प्रविष्ट।
विपदाएं उसका कभी करती नहीं अनिष्ट।।

मंत्र- इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति। इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे यो३जं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति।।२४।।

काव्यार्थ- दोहा

इस प्रभु का सौन्दर्य, प्रति वस्तु बीच दिखाय।
प्रभु संग इस जीवात्मा को वह देत मिलाय।।
पंच भूतों को सींचता जो प्रभु सदा लखाय।
दान-क्रिया की ज्योति को जो प्रभु रहा रखाय।।
उस अजन्मा का आत्मा में अर्पण जिसको भाय।
वह यश, विक्रम, अन्न को दुह कर रहे छकाय।।

मंत्र- पंच रूक्मा पंच नवानि वस्त्रा पंचास्मै धेनवः काम दुघा भवन्ति। यो३जं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति।।२५।।

काव्यार्थ- दोहा

पंचभूतों को सींचता जो प्रभु सदा लखाय।
दान-क्रियाा की ज्योति को जो प्रभु रहा रखाय।।
उस अजन्मा का आत्मा में अर्पण जिसको भाय।
वेद-वाणी तत् कामना की पूरक बन जाय।।
विस्तृत रोचक वस्तुएं काम पूर्ति को आंय।
अरू विस्तृत नव वस्त्र भी शोभा सदा बढ़ाँय।।

मंत्र- पंच रूक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति। स्वलोकमश्नुते यो३जं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति।।२६।।

काव्यार्थ- दोहा

पंचभूतों को सींचता जो प्रभु सदा लखाय।
दान क्रिया की ज्योति को जो प्रभु रहा रखाय।।
उस अजन्मा का आत्मा में अर्पण जिसको भाय।
विस्तृत रोचक वस्तुएं उसे ज्योति को लाँय।।
तन हेतु वस्त्र उसे कवच रूप बन जाँय।
अरू वह सुखदा लोकों को प्राप्त करे सुख पाय।।

मंत्र- या पूर्व पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेऽपरम्। पंचौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः।।२७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो स्त्री पहला पति या तत् मृत्यु के बाद।
अपर पुरूष से ब्याह कर जोड़ा करती नात।।
प्रभु अजन्मा सींचता है जो पंच-भूत।
संकट हरता जो सभी देता हर्ष अकूत।।
निज आत्मा में उसी को अर्पित कर वह लोग।
अलग नहीं होते कभी करें सुखो का भोग।।

मंत्र- समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः। यो३जं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति।।२८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पंचभूतों को सींचता जो प्रभु सदा लखाय।
दान क्रिया की ज्योति को जो प्रभु रहा रखाय।।
उस अजन्मा का आत्मा में अर्पण जिसको भाय।
अरू वह अपत्नीक पति पुनर्विवाह को पाय।।
पुनर्विवाहित नारी संग एक स्थान का होय।
मुदित रहें दोनों सदा पावें शोक न कोय।।

मंत्र- अनुपूर्ववत्सां धेनुभवड्वाहमुपबर्हणम्। वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम्।।२९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रतिवर्ष सन्तान को देने वाली गाय।
तथा बैल जो मनुज का अन्न आदि पहुँचा।।
वस्त्र ओढ़नी आदि अरू स्वर्णादि को लाय।
धर्मात्मा जो दान दें, उन्नति करते जाँय।।

मंत्र- आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम्। जाया जानित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये।।३०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

आत्मबल, पुत्र, पिता पौत्र, पितामह, मात।
निज पत्नी, भ्राता तथा प्रियजन को मन भात।।

इन्हें बुलाता मैं सदा सादर स-सम्मान।
अरू पाता हूं मोद, कर प्राप्त सुखों की खान।।

मंत्र- यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद। एष वै नैदाघो नामर्तुर्यदजः पंचौदनः। निरेवाप्रियस्यभ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना। यो३जं पंचौदनं दक्षिणज्योतिषं ददाति।।३१।।

मंत्र- यो वै कुर्वन्तं नामुर्तंवेद। कुर्वतींकुर्वती येवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते। एष वै कुर्वन्नामर्तर्यदज पंचौदनः। निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवात्यात्मना। यो३जं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति।।३२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जिसे भली विधि ज्ञात है वर्षा ऋतु का हाल।
अन्नादि उत्पन्न कर रही जगत् को पाल।
उस जैसा जो एक ही .....

(शेष मांत्र ३१ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- यो वै संयन्तु नामर्तुंवेदा संयतीसंयतप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते। एष वै संयन्नामर्तुर्यदजः पंचौदनः। निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना। यो३जं पंचौदनं दक्षिणाजयोतिष्ज्ञं ददाति।।३३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो अन्नादि को पकाने में अति ही प्रसिद्ध।
भली विधि है जानता जो निधियों का निद्ध।।
उस जैसा जो एक ही सबका रहा हितेष।
पूजनीय वह ब्रह्म है कहलाता परमेश्वर।।
पंचभूतों को सींचता सबको सदा लखाय।
दान-क्रिया की ज्योति को भी वह रहा रखाय।।
उस अजन्मा का आत्मा में अर्पण जिसको भाय।
वह नर अप्रिय शत्रु की लक्ष्मी को ले जाय।।
अपने आत्म-बल साथ वह रहता, करे न सोग।
निर्विघ्न होकर करे आनन्द रस का भोग।।

मंत्र- यो वै पिन्वन्तं नामर्तुं वेद। पिन्वतीं मेवाप्रियस्य भ्रातृवस्य श्रियमा दत्ते। एष वा उद्यान्नमर्तुर्यदजः पंचौदनः। निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना। यो३जं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति।।३४।।

काव्यार्थ- दोहा

जो सेचन में ख्यात ऋतु, का सब जाने हाल।
संग्रह करती लक्ष्मी रिपु की लेय सकाल।।
संग्रहकर्ता उस सरिस सबका रहा हितेश।
पूजनीय वह ब्रह्म है कहलाता परमेश।।

(शेष मंत्र ३१ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- यो वा उद्यन्तं नामर्तुं वेद। उद्यती मुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृवस्य श्रियमा दत्ते। एष वा उद्यान्नमर्तुर्यदजः पंचौदनः। विरेरवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना। यो३जं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति।।३५।।

काव्यार्थ- दोहा

जिसे उदय होती ऋतु ख्यात वसन्त ज्ञात।
जो अप्रिय रिपु की उदय होती श्री ले जात।।
उदय होता उसके सरिस जो प्रसिद्ध है एक।
पूजनीय वह ब्रह्म है कहलाता परमेश।।

(शेष मंत्र ३१ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेद। अभिभवन्तीमभिवन्तीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते। एष वा अभिभूर्नामर्तर्यदजः पंचौदनः। विरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना। यो३जं पंचौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति।।३६।।

काव्यार्थ- दोहा

दुःख को हटाने वाली ऋतु ख्यात, जिसे है ज्ञात।
अप्रिय शत्रु की हराने की श्री को जो ले जात।
वह शुत्र को हराती ऋतु समान है एक।
जो कि पूज्यतम ब्रह्म है कहलाता परमेश।।

(शेष मंत्र ३१ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- अजं च पचत पंच चौदनान। सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः सान्तर्देशाः प्रति गह्णन्तु त एतम्।।३७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

इस जीवात्म और तत् पंच भूतों से युक्त-
सेचक सकल पदार्थों को करो सुष्ट अरू ठुक्त।।
दिशा, उपदिशा सकल हो सहमत एक विचार।
इस जीवात्मा को करें प्रेम सहित स्वीकार।।

मंत्र- तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्येतं ताभ्य आज्यं हविरिदं जुहोमि।।३८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दिशा, उपदिशा यह सभी हे नर! तेरे हेतु-
तव जीवात्मा की करें रक्षा, देवें चेतु।।
उन सबसे प्रकाश के करने योग्य प्रकर्ष-
ग्राह्य कर्म को मैं ग्रहण करता हूं सहर्ष।।

सूक्त ६, प्रथम पर्याय

मंत्र- यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूषि यस्य संभारऋचो यस्यानूक्यम्।।१।।

मंत्र- सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः।।२।।

काव्यार्थ-

संयमी विद्वान् पाता ब्रह्म को प्रत्यक्ष है,
विविध संग्रह जिसके अवयव निज करम में दक्ष हैं,
ऋचाएं जिसकी सकल ही रीढ़ की हैं हड्डियाँ,
साम रोम, ऋजु हृदय, हवि ओढ़ने का वस्त्र है।

मंत्र- यद्वा अतिथिपतिरतिथीन्प्रतिपश्यतिं देवयजनं प्रेक्षते।।३।।

मंत्र- यदभिवदतिदीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यापः प्राणयति।।४।।

मंत्र- या एव यक्षः प्रणीयन्तेता एव ताः।।५।।

काव्यार्थ-

अतिथि को जिस क्षण गृहस्थ देखता प्रत्यक्ष है,
वह उसे उत्तम गुणों को प्राप्त करने समान है;
अतिथि से बातें उसे हैं दीक्षा की प्राप्ति सी,
उसको दिया जल, यज्ञ में ले जाये जल के समान है।

मंत्र- यत्तर्पणमाहरन्ति य एवाग्नीषोमीयः पशुर्बध्यते स एव सः।।६।।

मंत्र- यदावसथान्कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत्कल्पयन्ति।।७।।
मंत्र- यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत्।।८।।
मंत्र- यदुपरिशय नमाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकभव रून्द्धे।।६।।
काव्यार्थ-

जो पदार्थ गृहस्थ लाता है अतिथि की तृप्ति को,
उससे वह निज प्रेम डोरी से अतिथि को बांधता;
वह अतिथि जो ज्ञान अरू ऐश्वर्य हित समदर्शी है,
जो कि मर्यादा बंधा, सीमा न किंचित लांघता।
जिस जगह प्रबन्ध होता है अतिथि के वास का,
यज्ञशाला बीच मानो वह हवि स्थान है;
अतिथि के सुख को बिछाया जो बिछौना है वही,
यज्ञ के कुश के बने आसन समान महान् है।

दोहा

ऊँचे शयन स्थान जो होते यथावत प्राप्त।
वह मानो सुखदा प्रभु लभ, बन जाते आप्त।।

मंत्र- यत्कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते।।१०।।
मंत्र- यदांजनाभ्यंजनमाहरन्त्याज्यमेव तत्।।११।।
काव्यार्थ-

अतिथि हित चादर तकिया यज्ञ परिधि है जानिये,
मालिश का चन्दन तेल, यज्ञ हेतु घृत अनुमानिये।

मंत्र- यत्पुरा परिवेषात्खादमाहरन्ति पुराडाशावेव तौ।।१२।।
मंत्र- यदशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद्ध्वयन्ति।।१३।।
काव्यार्थ-

अतिथि को थोड़ा सा देते जो परोसने के प्रथम,
यज्ञ कर्म में उसको समझिये पुराडाश श्रेष्ठतम;
जो रसोइये को बुलाते भोजन बनाने के लिये,
वह है बुलावा यज्ञ-पटु को, हो न जिससे कोई भ्रम।

मंत्र- ये ब्रहयोयवा निरूप्यन्तेऽशव एव ते।।१४।।
मंत्र- यान्युलूखलूखलूलानि ग्रावाण एव ते।।१५।।

काव्यार्थ-

चावल व जौ जो बोये जाते हैं अतिथि सत्कार को,
सोम लता के खण्ड ही है, आप यह अनुमानिये;
ओखली मूसल कि जिनसे धान्य को है कूटते,
सोम रस की प्राप्ति हित पाषाण उसको जानिये।

मंत्र- शूर्पं पवित्रं तुषा़जीषाभिषवणीरापः।।१६।।

मंत्र- स्रुग्दर्विनेक्षणमायवनं द्रोणकलशाः कुम्भयोवाव्यानि पात्राणीयमेव कृष्णाजिनम्।।१७।।

काव्यार्थ-

अतिथि के हित छाज, ज्यों सामान पावन यज्ञ का,
भूसा समझिये सोम के अवशिष्ट तन्तु समान हैं;
अतिथि को जल, यज्ञ के जल के समान है, तथा-
कड़छी स्रुचा अरू डेगची द्रोण कलश समान है;
पकते समय अन्न हिलाना, यज्ञ की ईक्षण क्रिया,
अपर जोभी पात्र हैं वायव्य पात्र समान हैं;
अतिथि का भूतल समझियेगा कि यह है कृष्णाजिन,
सकल ही सत्कार उसको, यज्ञ कर्म समान हैं।

(कृष्णाजिन-कृष्णसार मृगकी मृगछाल)

सूक्त ६, द्वितीय पर्याय

मंत्र- यजमानब्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः कुरूते यदाहार्याणि प्रेक्षत इदं भूया३इदा३मिति।।१।।

काव्यार्थ-

"यह अधिक है, ठीक है" इस भांति जो कहता हुआ,
अतिथि को देय पदार्थों का निरीक्षण कर रहा;
अतिथि पालक वह गृहस्थ अपने इस व्यवहार से,
यजमान के ब्राह्मण की सब शुभताएं निज में भर रहा।

मंत्र- यदाह भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरूते।।२।।

मंत्र- उपहरतिहवीष्या सादयति।।३।।

काव्यार्थ-

तुम अधिक परोस भोजन अतिथि को देओ सदा,
ऐसा कह निज प्राण चिर स्थायी करता है गृहस्थ;

जब वह अन्नादि पदार्थ भेंट करता है उसे,
तब वह उसका और भी सामीप्य लभता है गृहस्थ।।

मंत्र- तेषामासन्नामतिथिरात्मञ्जुहोति।।४।।

मंत्र- स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण।।५।।

मंत्र- एते वै प्रियाश्चाप्रियश्चर्त्विजः स्वर्ग लोकं गमयन्ति यदतिथयः।।६।।

काव्यार्थ-

उस पास रक्खी विविध भांति भोज्य वस्तु भोग कर,
अतिथि निज में हवन की सम्पन्नता को पालता;
हाथ स्रुचा से प्राण रूपी यूप में भोजन क्रिया,
स्रुक् स्रुक् के वषट्कार से एक एक आहुति डालता;
प्रिय या अप्रिय हो अतिथि वह सब ऋतुओं में इस यज्ञ के,
यजमान को सुख लोक में रखना न किंचित टालता।

मंत्र- स य एवं विद्वान्न द्विषन्नश्नीयान्न द्विाषतोऽन्नमश्नीयान्न मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य।।७।।

काव्यार्थ-

जो अतिथि यह तत्व निज में जानता है, वह कभी-
मन द्वेष रखते, किसी का भोजन दिया खाये नहीं;
वह द्वेष करने वाले का अरू संशयित व्यवहार के-
कर्ता, व संदेहशील जन का अन्न भी खाये नहीं।
मंत्र- सर्वो वा एष जगधपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति।।८।।

मंत्र- सर्वो वा एषोऽजगधपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

खाते जिसके अन्न को अतिथि लोग निष्पाप।
उस गृहस्थ के पाप सब जल जाते हैं आप।।
जिसका अन्न न खाते हैं अतिथि लोग निष्पाप।
वैसे ही रहते सदा उस गृहस्थ के पाप।।

मंत्र- सर्वदा वा एषयुक्तग्रावार्द्रपवित्रो विततध्वर आहृतयज्ञक्रतुय 'उपहरति।।१०।।

काव्यार्थ-

अतिथि सेवा के लिए जो अन्न को है भेंटता,
वह ठीक सिल-बट्टा किये रहता, उसे चहता हुआ;

छलनी रहती आद्र उसकी, यज्ञ करता है सदा,
यज्ञ को समाप्त करते व्यक्ति सम रहता हुआ।

मंत्र- प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो य उपहरति।।११।।

मंत्र- प्रजापतेवां एष विक्रमाननुविक्रमते य उपहरति।।१२।।

काव्यार्थ-

अतिथि के प्रति समर्पित गृहस्थ ही प्रजापति-
प्रभुदेव-प्रापक-यज्ञ का विस्तार करना सीखता;
जो अतिथि को दान देता, वह प्रजापति ईश के,
विक्रम का पूर्ण अनुसरण करता हुआ है दीखता।

मंत्र- योऽतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो यस्मिन्पचन्ति स दक्षिाग्निः।।१३।।

काव्यार्थ-

अतिथि तन पाचक अग्नि, वह आह्वनीय अग्नि है,
घर में जो अग्नि वास करती, गार्हपत्य अग्नि है;
जठराग्नि जिसमें अन्न पकता, दणिाग्नि अग्नि है,
प्रभु में लगाती लौ प्रभु भक्ति ही सत्याग्नि है।

सूक्त ६, तृतीय पर्याय

मंत्र- इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति।।१।।

काव्यार्थ-

वह गृहस्थ घर के इष्ट, पूर्त को खाता स्वयं;
जो अतिथि से पूर्व खाकर पेट को भरता रहा।

मंत्र- यश्च वा एष रसं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽ तिथिरश्नाति।।२।।

काव्यार्थ-

वह गृहस्थ घर के दूध, रस को खाता है स्वयं,
जो अतिथि से पूर्व खाकर पेट को भरता रहा।

मत्र- ऊर्जां च वा एष स्मातिं च गृहाणामश्नाति यः पुर्वो ऽतिथेरश्नाति।।३।।

काव्यार्थ-

वह गृहस्थ घर-पराक्रम, वृद्धि को खाता स्वयं,
जो अतिथि से पूर्व खाकर पेट को भरता रहा।

मंत्र- प्रजां च वा एष पशूंश्च गृहाणामश्नाति मः पूर्वोऽतिथेरश्नाति।।४।।
काव्यार्थ-

वह गृहस्थ घर के पशु अरू प्रजा को खाता स्वयं,
जो अतिथि से पूर्व खाकर पेट को भरता रहा।

मंत्र- कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहाण्यामश्नाति यः पूर्वो तिथेरश्नाति।।५।।
काव्यार्थ-

वह गृहस्थ धर के यश अरू कीर्ति को खाता स्वयं
जो अतिथि से पूर्व खाकर पेट को भरता रहा।

मंत्र- श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथिरश्नाति।।६।।
काव्यार्थ-

वह गृहस्थ घर के वैभव, बुद्धि को खाता स्वयं,
जो अतिथि से पूर्व खाकर पेट को भरता रहा।

मंत्र- एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात्पूर्वो नाननीयात्।।७।।
काव्यार्थ-

यह अतिथि निश्चय से वेद का ज्ञाता अरू विद्वान बड़ा,
इस कारण इससे पहले मुझे भोजन करना उचित नहीं।

मंत्र- अशितावत्यतिथावश्नीयाद्यज्ञस्य सात्मत्वाय। यज्ञस्याविच्छेदाय तद्व्रतम्।।८।।
काव्यार्थ-

अतिथि भोजन कर चुके तब उस अतिथि के बाद ही,
संतुष्ट अरू प्रसन्न मन भोजन गृहस्थ किया करे;
यज्ञ की चैतन्यता अरू निरन्तरता हेतु यह-
नियम है, इसको निभाता वह सदैव जिया करे।

मंत्र- यतद्वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदैव नाश्नीयात्।।९।।
काव्यार्थ-

यहां वह जो अधिक स्वादु है कि अधिकृत उस ही जल,
दूध, बुद्धि वार्धिनी वस्तु अतिथि को दिया करे,
अतिथि जब खा लेवे वह सब भोज्य, तत् पश्चात ही-
गृहस्थभोजन कर आशीष निज अतिथि से लिया करें।

सूक्त ६, चतुर्थ पर्याय

मंत्र- स य एवांविद्वान्क्षीरमुपसिच्योपहरति।।१।।
मंत्र- यावदग्निष्टोमेनष्ट्वासुसमद्धेनावरून्द्धे तावदेनेनाव रून्द्धे।।२।।
मंत्र- स य एवं विद्वान्त्सर्पिरूपसिच्योपहरति।।३।।
मंत्र- यावदतिरात्रेणेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरून्द्धे तावदेनेनाव रून्द्धे।।४।।
मंत्र- स य एवं विद्वान्मधूपसिच्योपहरति।।५।।
मंत्र- यावत्सत्रसद्येनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरूद्धे तावदेनेनाव रून्द्धे।।६।।
मंत्र- स य एवं विद्वानुदकमुपसच्योपहरति।।७।।
मंत्र- यावद द्वादशाहेनेष्ट्वा, सुसमृद्धेनावरून्द्धे तावदेनेनाव रून्द्धे।।८।।
मंत्र- स य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति।।९।।
मंत्र- प्रजानां प्रजननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति।।१०।।

काव्यार्थ- गीत

गृहस्थ, जो ऐसा विद्वान।
अतिथि-सेवा बीच सदा ही, जिसका रहता रूझान।।
करके सिद्ध दूध को वह अतिथि को भेंटा करता,
इससे वह इतना फल निज झोली में समेटा करता;
जितना अग्निष्टोम यज्ञ के, फल का होत लदान।।१, २।।
घृत को करके सिद्ध उसे अतिथि को भेंटा करता,
इससे वह इतना फल निज झोली में समेटा करता,
जितना फल अतिरात यज्ञ का जाने सकल जहान।।३, ४।।
मधुरस करके सिद्ध स्वयं अतिथि को भेंटा करता,
इससे वह इतना फल निज झोली में समेटा करता;
जितना सत्र यज्ञ के फल का, जन में होत लदान।।५, ६।।
बुद्धि-वर्धक वस्तु सिद्ध कर वह अतिथि को देता,
इससे वह अपनी झोली में इतना फल भर लेता;
जितना द्वादशाह यज्ञ के फल का होत लदान।।७, ८।।
वह जल को कर सिद्ध अपने अति प्रिय अतिथि को लाता,
संतति प्रजनन में वह इससे दृढ़ स्थिरता पाता;
संतानों के बीच बने वह, अति प्रिय तथा महान्।।९, १०।।

नोट - अग्निष्टोम यज्ञ-वसन्त काल का उत्तम् समृद्ध सोम याग, अतिरातयज्ञ-रात्रि बिताकर किया जाने वाला होली दीपावली पर उत्तम समृद्ध सोम याग या अन्नेष्टि याग, सत्र यज्ञ-उत्तम समृद्ध सोम याग विशेष, द्वादशाह यज्ञ- बारह दिन वाला सोम याग।

सूक्त ६, पंचम पर्याय

मंत्र- तस्मा उषा हिङ्कृणोति सविता प्र स्तौति।।१।।

मंत्र- बृहस्पतिरूर्जयोद्गायति त्वष्टा पुष्ट्याप्रति हरति विश्वे देवा निधनम्।।२।।

मंत्र- निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद।।३।।

काव्यार्थ-

जो नर अतिथि सत्कार के व्रत को है जानता।
आनन्द का सन्देश उसे देती उषा है,
सूरज जगत् को उसकी बताता महानता;
अमृत वृहत् को रक्षता वायु सदा बहकर,
ऊर्जा के साथ उसके गुणों को बखानता।
मेघ उसे पुष्टि प्रदान करता है, तथा-
सब अन्य देव उसको सहारा दिया करते;
आश्रय स्थान होता वह वैभव व प्रजा का,
एवं पशु सब उसका ही आश्रय लिया करते।

मंत्र- तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ्कृणोति संगवः प्र स्तौति।।४।।

मंत्र- मध्यन्दिन उद्गायत्यपराह्णः प्रति हरत्यस्तंयन्निधनम्। निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद।।५।।

काव्यार्थ-

जो नर अतिथि सत्कार के व्रत को है जानता।
होता है उदित सूर्य उसे तृप्ति प्रदाता,
मध्याह्न पूर्व सूर्य किया करता स्तुति;
मध्याह्न-सूर्य वेद-गान करता है तथा-
अपराह्न- सूर्य देता उसे निधियों की द्युति।
आश्रय प्रदान करता हुआ अस्त-काल में,
जाता है सूर्य पश्च-दिशा पैरों को धरते;

आश्रय स्थान होता वह वैभव व प्रजा का,
एवं पशु सब उसका ही आश्रय लिया करते।

मंत्र- तस्मा अभ्रो भवन्हिङ्कृणोति स्तनयन्प्र स्तौति।।६।।

मंत्र- विद्योतमानः प्रति हरति वर्षन्नुद्गायत्युद्गृह्णन्निधनम्। निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद।।७।।

काव्यार्थ-

नर जो अतिथि सत्कार के व्रत को है जानता।
घिर घिर के मेघ देता है आनन्द सन्देशा,
एवं गरजता मेघ किया करता स्तुति;
नभ से बरसता मेघ अतुल निधियाँ थामता,
कल्याण हेतु प्राणियों के गाता है स्तुति।
विद्युत् से चमकता हुआ निधियाँ प्रदानता,
सब प्राणी मुदित होते हुए रहते सरसते;
आश्रय स्थान होता वह वैभव व प्रजा का,
एवं पशु सब उसका ही आश्रय लिया करते।

मंत्र- अतिथीन्प्रति पश्यति हिङ्कृणोत्यभि वदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद्गायति।।८।।

मंत्र- उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्टं निधनम्।।९।।

मंत्र- निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवंवेद।।१०।।

काव्यार्थ-

नर जो अतिथि सत्कार के व्रत को है जानता।
लखता अतिथियों ओर, जो लखता है तो मानो-
आनन्द शब्द करता, हृदय मोद से भरता;
करता है नमस्कार अतिथियों को जिस समय,
तब वह सराहना स्वयं के भाग्य की करता।
जल देता विनय से तो करता वेद गान है,
भोजन को भेंट दे, रहे उत्तम निधि लभता;
आश्रय स्थान होता वह वैभव व प्रजा का,
एवं पशु सब उसका ही आश्रय लिया करते।

सूक्त ६, षष्ठ पर्याय

मंत्र- यत्क्षत्तारं ह्यत्या श्रावयत्येव तत्।।१।।

मंत्र- यत्प्रतिशृणोति प्रत्याश्रावयत्येव तत्।।२।।

मंत्र- यत्परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे चापरेप्रपद्यन्ते चमसाध्वर्यव एव ते।।३।।

मंत्र- तेषा न कश्चनाहोता।।४।।

काव्यार्थ-

सद्-गृहस्थ पर-कष्ट निवारण से न कभी भी टरता है,
अतिथि परोपकार करने हित उसे बुलाया करता है।
वह उसको सद् मार्ग दिखाता, धर्मोपदेश करताहै,
अरू गृहस्थ तद् उपदेशों को सदा हृदय में धरता है।
पहले तथा बाद के भोजन परोसने वाले व्यक्ति,
हिंसा रहित कर्म पोषक जो, हिंसा से रखते त्यक्ति।
उस अतिथि को जिंवाने हेतु अति विनम्र हो आते हैं,
उनमें से हम कभी किसी को नहीं अदानी पाते हैं।

मंत्र- यद्वा अतिथिपतिरतिथीन्परिविष्य गृहानुपोदैत्यवभृथमेव तदुपावैति।।५।।

मंत्र- यत्सभागयति दक्षिपणाः सभागयति यदनुतिष्ठत उदवस्यत्येव तत्।।६।।

काव्यार्थ-

जब अतिथि को जिंवा गृहस्थ अपने घर को जाता है,
लगता यज्ञ बाद घर पर स्नान हेतु वह आता है।
वह गृहस्थ अन्नादि भेंट अतिथि समक्ष जब धरता है,
अतिथि वृद्धि क्रियाओं को तब जैसे बांटा करता है।
जब अतिथि-सेवक गृहस्थ शास्त्रोक्त कर्म को वरता है,
तब वह दृढ़ होकर अवश्य ही उसको पूरा करता है।

मंत्र- स उपहूतः पृथिव्यां भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन्यत्पृथिव्यां विश्वरूपम्।।७।।

मंत्र- स उपहूतोऽनतरिक्षे भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन्यदन्तरिक्षे विश्वरूपम्।।८।।

मंत्र- स उपहूतो देवेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन्देवेषुविश्वरूपम्।।१०।।
मंत्र- स उएपहूतो लोकेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन्यल्लोकेषु विष्वरूपम्।।११।।

काव्यार्थ-

आदर साथ गृहस्थी द्वारा लाया गया विज्ञ अतिथि,
पृथिवी पर अन्नादि वस्तुओं को जब जीम लिया करता,
इसके बाद अतिथि को सादर लाता जो गृहस्थ है, वह-
विविध रूप जो कुछ भू पर है, उसको भोग लिया करता।।७।।
आदर साथ गृहस्थी द्वारा लाया गया विज्ञ अतिथि,
जब नभस्थ वायु आदि नाना विधि भोग लिया करता,
इसके बाद अतिथि को सादर लाता जो गृहस्थ है, वहां-
नभ में वायु आदि जो जो है, उसको भोग लिया करता।।८।।
आदर साथ बुलाया अतिथि, जब सूर्य में निहित रहे-
आकर्षण, प्रकाश आदि गुण विधि से भोग लिया करता,
इसके बाद अतिथि को सादर लाता जो गृहस्थ है, वह-
सूर्य लोक में विविध रूप जो उनको भोग लिया करता।।६।।
आदर साथ गृहस्थी द्वारा लाया गया विज्ञ अतिथि,
जब विज्ञों में वर्तमान शुभ गुण को भोग लिया करता,
इसके बाद अतिथि को सादर लाता जो गृहस्थ है, वह-
विद्वानों में विविध रूप शुभ गुण को भोग लिया करता।।१०।।
आदर साथ गृहस्थी द्वारा लाया गया अतिथि जब-जब,
लोकों में सम्बन्ध परस्पर जो है, भोग लिया करता,
इसके बाद अतिथि को सादर लाता जो गृहस्थ है वह,
विविध रूप लोकों में स्थित वस्तु भोग लिया करता।।११।।

मंत्र- स उपहूत उपहूतः।।१२।।
मंत्र- आप्नोतीमं लोकमाप्नोत्यमुम्।।१३।।

काव्यार्थ-

जब गृहस्थ द्वारा आदर से अतिथि बुलाया जाता है,
तब उसका उस अतिथि द्वारा हृदय धुलाया जाता है,
वह अतिथि के ज्ञान-दान से तेजस्वी हो जाता है।
अरू लभता यह लोक, अपर के शाश्वत सुख को पाता है।

मंत्र- ज्योतिष्मतो लोकांजयति य एवं वेद।।१४।।

काव्यार्थ-

जो पूर्वोक्त प्रकार अतिथि-सेवा, सत्कार किया करता,
वह प्रकाशमय लोक सरलता पूर्वक जीत लिया करता।

सूक्त ७

मंत्र- प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम्।।१।।

मंत्र- सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरूत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दो प्रधान शक्तियाँ हैं, प्रजा पालने की, तथा-
सर्वशक्तिमत्ता जिन्हें परमेश धारता;
वह रच कर सिर के समान नभ-सूर्य,
अग्नि ललाट, वायु गले सम बिठारता।
शासक जल, चन्द्रमा को मस्तिष्क सम,
आकाश को ऊपर के जबड़े सा ढारता;
पृथिवी को नीचे रहे जबड़े समान बना,
अन्य अन्य रचना अनेक विस्तारता।।

मंत्र- विद्युज्जिह्वा मरूतो दन्ता रेवतीग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा घर्मो वहः।।३।।

मंत्र- विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सृष्टि में विद्युत है जिह्वा समान रही,
दोष-हर मरूत दमन-शील दांत है;
चलते जो नक्षत्र वह है गले समान,
छेदन-शील नक्षत्र कन्धे की भांत है।
प्रकाश, वाहक-सामर्थ्य के समान, अरू
व्यापन-सामर्थ्य शुभ वायु सम कांँत है;
कर्षण का वेग सुखदायी घर के समान,
धारणा की शक्ति पृष्ठ-वंश के समान है।।

मंत्र- श्येनः क्रोडो३न्तरिक्षं पाजस्यं१बृहस्पतिः ककुद् बृहतीः कीकसाः।।५।।

मंत्र- देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः।।६।।
मंत्र- मित्रश्च वरूणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू।।७।।
काव्यार्थ- कवित्त

सृष्टि में गति शील सूर्य गोद के समान,
अन्तरिक्ष हितकारी पेट के समान हैं;
बृहस्पति लोक जानियेगा शिखा के समान,
बृहत् दिशाएं बनीं हंसली समान हैं।
दिव्यगुणी अग्नि वायु आदि मोटी पसलियाँ हैं,
तन्मात्राएं सूक्ष्म पसलियों समान हैं,
प्राण औ अपान कन्धे, मेघ सूर्य भुजदण्ड,
स्तुति, विजय-काम भुजाओं समान हैं।

मंत्र- इन्द्राणी भसद्वायुः पृच्छं पवमानो बालाः।।८।।
मंत्र- ब्रंह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू।।६।।
मंत्र- धाता च सविता चाष्ठीवन्तौजंघ गन्धर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः।।१०।।
काव्यार्थ- कवित्त

सूरज की धूप कटि भाग, वायु पृष्ठ भाग,
पवमान बालों भरी चोटी के समान हैं,
तद् रीति ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व कूल्हों सम,
अरू बल दोनों जंघाओं के समान है।
धाता गुण, ऐश्वर्य गुण दोनों घुटनों सम,
पृथिवी धारण का गुण जंघाओं समान है;
प्राणियों में व्यापक गुण नख सम बाह्यअंग,
वेद-वाणी शान्ति व्यवहार के समान है।।

मंत्र- चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत्।।११।।
मंत्र- क्षुत्कुक्षिरिरा बनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः।।१२।।
मंत्र- क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः।।१३।।
मंत्र- नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः।।१४।।
काव्यार्थ- कवित्त

सृष्टि में चेतना हृदय समान, मेधा बुद्धि-
यकृत व व्रत क्षुद्र आंत के समान है,

भूख कोख के समान, अन्न बड़ी आंत सम,
गिरि आंत छोटी, क्रोध वृक्क के समान है।
उत्साह अण्डकोष सम, प्रजा जननेन्द्रिय,
नदी सूक्ष्म नाड़ी मेघ स्तन समान है।।
घनघोर मेघ वर्षालु जल धाराता जो,
दुग्ध परिपूर्ण तत् स्तन समान है।।

मंत्र- विश्वव्यचाश्चमौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम।।१५।।
मंत्र- देवजना गुदा मनुष्यान्त्राण्यत्रा उदरम्।।१६।।
मंत्र- रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम्।।१७।।
मंत्र- अभ्रं पीबो मज्जा निधनम्।।१८।।
काव्यार्थ-

फैला हुआ असीम ये आकाश चर्म सा,
बहु अन्न रोम, नखत रूप के समान हैं,
है देव जन गुदा व मनन शील आंत सम,
विज्ञानी मनन शील पेट के समान हैं।
राक्षस हैं नखत सम तथा पामर हैं कुचला अन्न,
अरू मेघ तन बसी हुई मेद समान हैं,
राशीकरण है अस्थि में मज्जा समान, इस-
सब सृष्टि की परमेश हाथ में कमान है।

मंत्र- अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना।।१९।।
मंत्र- इन्द्रः प्रत्यङ्तिष्ठन्दक्षिणा तिष्ठन्यमः।।२०।।
मंत्र- प्रत्यङ्गतिष्ठन्धातोदङ् तिष्ठन्तसविता।।२१।।
मंत्र- तृणानि प्राप्तः सोमो राजा।।२२।।
काव्यार्थ-

बैठा हुआ प्रजापति है अग्नि के समान,
अरू वह उठा हुआ है सूर्य चन्द्र के समान,
ठहरा हुआ सम्मुख हैं परम ऐश्वर्य मय,
दक्षिण में ठहरा न्यायकारी हाथ ले कमान।
पीछे की ओर ठहरा है धारण कर्म करता,
ठहरा जो बांधे उससे ही सभी चलायमान;

वह सृष्टि के तृण सम सभी पदार्थों में है,
वह जन्मदाता राजा है, सब उससे है नमान।

मंत्र- मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः।।२३।।

मंत्र- युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तःसर्वम्।।२४।।

मंत्र- एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम्।।२५।।

काव्यार्थ-

आनन्द स्वरूप, सर्वदर्शी वह परम प्रभू,
सबका ही मित्र बन के रहे सबके ही ठहे,
सबके ही द्वारा ध्यान किया जाता वह सदा,
सब विज्ञों का हितू छिपा समाधि में रहे।
वह विविध मुक्त स्वभाव, प्रजा का पालक,
परमेश्वर वह सर्वव्याप्त ब्रह्म है महे,
वह ही जगत को औ सभी को रूप है देता,
वह ही विशेष सुख को रूप देना भी चहे।

मंत्र- उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद।।२६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

व्यक्त अव्यक्त वाणी के सभी रूप, आकार।
प्राणी उसे हैं पूजते नमन करें शत बार।।
इस प्रकार जो जानता प्रेम भक्ति मन बोय।
सकल प्राणियों का वहीं एक प्रशासक होय।।

सूक्त ८

मंत्र- शीर्षक्ति शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सिर पीड़ा, सिर की व्यथा जो कि दुःखाते माथ।
कर्ण शूल रोग तेरा पाण्डु रोग के साथ।।
वह सिर के सब रोग जो करते तुझे निढाल।
हम विचारपूर्वक उन्हें बाहर देत निकाल।।

मंत्र- कर्णाभ्यां ते कङ्कूषेभ्यः कर्ण शूलं विसल्पकम्। सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तेरे कानों का तथा उसका भीतरी भाग।
जो दुःखता अति शूल दे जैसे तपती आग।।
अरू सिर के सब रोग जो करते तुझे निढाल।
हम विचारपूर्वक उनहें बाहर देत निकाल।।

मंत्र- यस्य हेतो प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः। सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! जिस कारण तेरा यक्षम रोग बिगडैल।
तेरे कानों से तथा मुख से जाता फैल।।
वह अरू सिर के रोग जो करते तुझे निढाल।
हम विचार पूर्वक उन्हें बाहर देत निकाल।।

मंत्र- यः कृणोति पमोतमन्धं कृणोति पुरूषम्। सर्व शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

कर्ण-रोग तव कान को जो बहरा कर देत।
तथा रोग जो आंख की ज्योति को हर लेत।।
वह सिर के सब रोग जो करते तुझे निढाल।
हम विचार पूर्वक उन्हें बाहर देत निकाल।।

मंत्र- अंगमेदमंगज्वं विश्वांग्य विसल्पकम्। सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निमिन्त्रयामहे।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मंत्र- यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पुरूषम्। तक्मानं विश्वशारदं बहिर्निर्मन्त्रयामहे।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वह मनुष्य का ज्वर कि जो रूप भयंकर लेत।
जो कि तपाता है तथा बहुत कंपकंपी देत।।
सिगरे तन ऊपर बहुत देत चकत्ते डाल।
हम विचारपूर्वक उसे बाहर देत निकाल।।

मंत्र- य अरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके। यक्ष्मं ते अनतरंगेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

राजरोग जंधाओं में जो कि रेंगता जाय।
तथा नाड़ियों तक तेरी बढ़ता हुआ लखाय।।
तेरा राजरोग कि जो करता तुझे निढाल।
हम विचारपूर्वक उसे बाहर देत निकाल।।

मंत्र- यदि कामादपकामाद् धृदयाज्जायते परि। हृदो बलासमंगेभ्यो बहि र्निर्मन्त्रयामहे।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यदि कामुकतावश हुआ वह बलघातक रोग।
या जनमा तव हृदय पर अन्य भांति, दे सोग।।
तेरे हृदय बल शत्रु, वह सन्निपात कफ आदि।
हम विचार कर दें भगा नष्ट करें तब व्याधि।।

मंत्र- हरिमाणं ते अंगेभ्योऽप्वामन्तरोदरात्। यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! तेरा कामला रक्त हीनता रोग।
तथा उदर पर जलोदर तुझको देता सोग।।
राजरोग की व्यथा जो बसी हुई तन बीच।
हम विचार, तन से सभी को लेते हैं खींच।।

मंत्र- आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत्। यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सन्निपात, कफ आदि जो तन के बल को लेय।
धनुष रोग जो धनुष सम अंग वक्र कर देय।।
उससे मूत्र सदैव ही पीर प्रदाता होय।
करता चिंतित चित्त को शांति न मिलती कोय।।
क्षय रोग का विष कि जो फैला है तन माह।
उसे पूर्णतः नष्ट मैं करता हूं उमगाह।।

मंत्र- बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहा बाहं तवोदरात्। यक्ष्माणां सर्वेषां विष निरवोच महं त्वत्।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तुझको खांसी-दा हुआ है जो फूटन रोग।
होय उदर से दूर वह करे न तन का भोग।।
क्षय रोग द्वारा जनित विष सम्पूर्ण सकाल।
मैं तव तन के बीच से बाहर देत निकाल।।

मंत्र- उदरात्ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि।यक्षमाणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्।।१२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

फुफ्फुस, नाभि, हृदय अरू पेट बीच क्षय रोग।
मैं तत् विष बाहर करूं रखूं न रहने जोग।।

मंत्र- याः सीमानं विरूजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षणीः। अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम्।।१३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

महापीर मस्तिष्क की जो बढ़ती है घोर।
मस्तक से चल खोपड़ी को जो देती फोड।।
पीड़ित कभी न कर सकें पीड़ाएं हैं जेत।
रोग रहित जाएं निकल फूटन रोग समेत।।

मंत्र- या हृदयमुपर्षन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः। अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम्।।१४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बड़ी-बड़ी पीड़ाएं जो घुसतीं हृदय बीच।
हंसली तक जो फैलती सुख को देत उलीच।।
रंच सताएं वह नहीं बनकर दुःखद निकेत।
रोग रहित जायें निकल फूटन रोग समेत।।

मंत्र- याः पार्श्वे उपर्षन्त्यनुत्वनित पृष्टीः। अहिंसन्तीरनामया निर्दवन्तु बहिर्बिलम्।।१५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मह पीड़ाएं करतीं जो दुहु पार्श्वों पर घात।
फैल पीठ पर, पसलियां जो कि चुभाती जात।।
रंच सताएं वह नहीं बनकर दुःखद निकेत।
रोग रहित जाएं निकल फूटन रोग समेत।।

मंत्र- यास्तिरश्चीरूपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते। अहिंसन्तीरनमया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम्।।१६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

महा महा पीड़ाएं जो तिरछा कर कर गात।
तव छाती के अवयवों में जो घुस घुस जात।।
रंच सताएं वह नहीं बनकर दुखद निकेत।
रोग रहित जाएं निकल फूटन रोग समेत।।

मंत्र- या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणिं मोहयन्ति च। अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम्।।१७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मह पीड़ाएं गुदा तक जो जाती हैं फैल।
नसों से आंतों में करें गड़बड़ाता का रैल।।
वह न सताएं व्यक्ति को बनकर दुःखद निकेत।
रोग रहित जाएं निकल फूटन रोग समेत।।

मंत्र- या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरूजन्ति च। अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम्।।१८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मह पीड़ाएं करती जो मज्जा रक्त हीन।
जोड़ों में जन वेदना उन्हें बनातीं छीन।।
वह न सताएं व्यक्ति को बनकर दुःखद निकेत।
रोग रहित जाएं निकल फूटनरोग समेत।।

मंत्र- ये अंगानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव। यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्।।२०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बहु विसर्प, गठिया तथा हृदय, नेत्र का रोग।
वह सम्पूर्ण रोग जो देते रहते सोग।।
इन सबका विष जो किया करता था बेहाल।
वह सब तव तन बीच से मैंने दिया निकाल।।

मंत्र- पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः। अनूकादर्षणीरूष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशम्।।२१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तेरे पैरों जानुओं कूल्हों गुह्य स्थान।
रीढ़, गुद्दी की नाड़ियों बसती पीर महान्।।
मैंने उनकी पीड़ा अरू सिर की पीड़ा समस्त।
अरू सब उगते कष्ट को शीघ्र कर दिया अस्त।।

मंत्र- सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः। उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः।।२२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

रोगी तेरे कपाल की होंय हड्डियाँ नीक।
तथा हृदय की व्याधि हो पूर्ण रूप से ठीक।।
हे तेजस्वी वैद्य! तव उदित सूर्य सम चाल।
तूने सिर रोग हने निज किरणों को डाल।।
रोगी-तन पर डालकर अपनी किरणें कान्त।
अंगों की पीड़ा सकल कर दी तूने शान्त।।

सूक्त ६

मंत्र- अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो सस्त्यश्नः। तृतीयोभ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्य विश्पतिं सप्तपुत्रम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

इस जग में विख्यात है सूरज पालन हार।
जगत् तपाता, तृप्तियाँ देता है बैठार।।
उसका विद्युत कहाता मध्यवर्ती भ्रात।
तथा तीसरा अग्नि है जगती शीत जरात।।
मैंने देखा है उसे जो सबसे बलवान।
अपनी शक्ति में रखे जो सूरज बलखान।।
सात इन्द्रियों को जो निज शुद्धि से नहलाय।
जो जगती में प्रजापति जगदीश्वर कहलाय।।

मंत्र- सप्त युंजनित रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा। त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

एक चक्र के रथ सरिस यह तन बना लखात।
जोत रहे जिसको कुशल इन्द्रिय घोड़े सात।।

सात नाम को धारजो जीवात्मा कहलाय।
एक अकेला वह इन्हें खोंच रहा हर्षाय।।
त्रिबन्धन युत, जीर्णता रहित चक्र बेटोक।
ले जाता उस प्रभु तक जहँ स्थित सब लोक।।

मंत्र- इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः। सप्त स्वसारो अभि सं नवन्त यत्र गवां निहिता सप्त नामा।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

इस तन-रथ ठहरे हुए हैं जो इन्द्रिय सात।
सात अश्व सम सदा ही वह गतिशील लखात।।
सात चक्र समान तन को वह लेकर जाय।
वह ही सात बहनों सम मिलती हैं हर्षाय।।
मिलते हैं वह वहां, जहं हृदयाकाश बीच।
सप्ताकर्षण निहित हैं रहते इन्द्रिय सींच।।

(सप्ताकर्षण-स्पर्श, शब्द, रूप, रस, गन्ध, मनन, ज्ञान)

मंत्र- को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति। भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत्।।४।।

काव्यार्थ- दोहा

बिन अस्थि के देह अरू देह अस्थि सम्पन्न।
किसने देखा प्रथम, इन को होते उत्पन्न।।
अशरीरी जीवात्मा जिसे रहा था धार।
जिस कारण करता रहा वह नाना व्यापार।।
मिट्टी अन्दर कहां था प्राण, रक्त, जीवात्म।
जगत् रचक सब वस्तुएं कहां मिलीं पर्याप्त।।
कौन पुरूष यह जानने की लेकर के आस।
जाता है किस मनीषी विद्वान के पास।।

मंत्र- इह ब्रवीतु य ईमंग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः। शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रवते गावो अस्य वव्रिं वसानां उदकं पदापुः।।५।।

काव्यार्थ- कवित्त

प्यारे जिज्ञासु जिसको तू चाहता है, उस-
ब्रह्म के विषय में तुझे वह बतलाएगा;

जोकि इस मनहर गतिशील पक्षी रूप-
सूरज के मारग का ज्ञाता बन जाएगा।
सूरज के मस्तक से किरणें जल दुहकर,
कैसे ओढ़ती है, यह भेद जान जाएगा,
उस जल को पिया उन्होंने निज पैर द्वारा,
अरू बरसाया भूमि पर, लख पाएगा।।

मंत्र- पाकः पृच्छामि मनसाविजानन्देवानामेना निहिता पदानि। वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्वि तत्नरे कवय ओतवा उ।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मैं अज्ञ, परिपक्वता पा लेने के हेतु।
विज्ञों से पथ पूछता वेद-विहित हैं जेतु।।
चले गये उन द्वारा जो गहन मनन के बाद।
जगत वास थल में लिखी शुभ कर्म्रों की गाथ।।
सात इन्द्रिय तन्तु को विविध भांति फैलाय।
अधिक अधिक शुभ कर्मों के कपड़े रहे बनाय।।

मंत्र- अचिकित्वांश्चिकितुषाश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि विद्वनों न विद्वान्। वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम्।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

एक विद्वान पूछता ज्यों दूजे से बात।
त्यों मैं अज्ञ, ज्ञानियों से करता हूं ज्ञात।।
जिसने थे थामे हुए यह छः नाना लोक।
उस अजन्मा में कौन सा ब्रह्म रहा बेटोक।।

मंत्र- माता पितरमृत आ बभाज धीयत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे। सा बीभत्सुर्गर्भरसा निबिद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सृष्टिकाल जल बीच में बनकर पिण्ड रूर।
मिले हुए थे परस्पर पृथिवी एवं सूर।।
पृथिवी मात ने सूर्य पितु प्रथम पृथक कर दीन।
सूर्य बन्धन की पुनः इच्छा उसने कीन।।
रखती थी निज गर्भ में जो उत्पादन भार।
दूर हटायी गयी वह, प्रभु नियमानुसार।।

सूर्याकर्षण धारते अपर लोक बन पिण्ड।
तद् रीति रख पृथकता जाने गये अनिन्द।।

मंत्र- युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठत् गर्भो वृजनीष्वन्तः। अभमेद्वत्सो अनु गामपश्चद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सृष्टि के प्रारम्भ में शीघ्र गति को प्राप्त।
माता पृथिवी कष्ट में बनी रही पर्याप्त।।
सूर्य हुआ स्थिर गुरूत् वाकर्षण को डाल।
मात उदर पकड़े रहे ज्यों गर्भस्थ वाल।।
अरू फैलाया किरणों को निज ऊष्मा से सींच।
ऊंचे, नीचे, मध्य के तीनों लोकों बीच।।
उन लोकों को गुरूत्वाकर्षण द्वारा बांध।
रोक दिया, चलती यदि कभी नाश की आंध।।

मंत्र- तिस्रो मा तृस्त्रीन्पितृन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्त। मंत्रयन्ते दिवो अनुष्य पृष्ठे विश्वविदो वाचमविश्वविन्नाम्।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

त्रिलोक, त्रिकाल अरू त्रिशक्ति को धार।
उन ऊपर स्थित हुआ ब्रह्म निर-आकार।।
उपरोक्त तीन उसे ग्लानि नहीं पहुंचाय।
सृष्टि विज्ञानी उसे ज्योतित सूर्य बताय।।
ज्योतित सूर्य सरिस वह सबको सहारा देय।
तत् वाणी को विज्ञ ही निज चिन्तन में लेय।।

(त्रिशक्ति-सत्व, रज, तम तीन निर्माण शक्तियाँ)

मंत्र- पंचारे चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा। तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न च्छिद्यते सनाभिः।।११।।

मंत्र- पंचपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिवआहुः परे अर्धे पुरीषिणम्। अथेमे अन्य उपरे विचक्षणे सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम्।।१२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

पांच तत्व रूप पांच अरे जिसमें है लगे,
ऐसे चक्र रूप जग में है एक जूटता,

सब लोक इसमें हैं, सृष्टि का बोझ भरा,
प्रा् रूप नाभि अरा, तपता न टूटता।
पालक प्रभु है पांच तत्वों का गति दाता,
बारह को रूप दे रहा है यश लूटता,
ऋषि हैं बताते प्रत्येक शुभ कर्म दिशा,
पूर्ति करता है वह, एक नहीं छूटता।।

(बारह- पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियां, मन बुद्धि)

दोहा

उस योगी में अन्य जन जड़ा बताते ईश।
जो नाना विधि देखता उसे, झुकाता शीश।।
बना विवेकी, विषयों में जो रखता वैराग।
सात द्वारा हो तृप्त जो प्रतिक्षण करता जाग।।
छः दिशाओं में गति करे करता पर उपकार।
अन्दर बाहर देखता प्रभु, जो पहरेदार।।

(सात-दो कान, दो नथने, दो आंखें, एक मुख)

मंत्र- द्वादशारं नहि तज्जराय बर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य। आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः।।१३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बारह मास रूपी अरों वाला काल चक्र।
जीर्ण ब्रह्म को करने हित नभ में घूमता वक्र।।
जग के सकल पदार्थ उस ने अपने वश कीन।
पर ब्रह्म को कभी भी कर न सका आधीन।।
हेविद्वन् इस चक्र में तत् दिन-रात रूप।
सुत सात सौ बीस हैं जगती बीच अनूप।।

मंत्र- सनेमि चक्रमंजर वि वावृत उत्तनायां दश युक्ता वहन्ति। सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं यस्मिन्नातस्थुर्भवनानि विश्वा।।१४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जिस ब्रह्म भीतर समस्त लोक ठहरे हैं,
उसी ब्रह्म बीच संवत्सर है पलता;
जो कि परिधि लिये शीघ्रगामी चक्र की,
सर्वदा विशेष रीति घूमता न टलता।

उसी ब्रह्म बीच सृष्टि में दस दिशा फैलीं,
जिनका बहाव मोद देता, नहीं टलता;
अरू उसमें ही सूर्य का नेत्र, जो कि सदा-
शुभ अन्तरिक्ष साथ फैला हुआ चलता।।

मंत्र- स्त्रियः सतीस्तां उ में पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः। कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत्।।१५।।

काव्यार्थ- दोहा

आत्मा पुरूष होता नहीं और न स्त्री होत।
जैसा तन होता जीव का वैसा भान उदोत।।
आंखा वाला ही देखता यह तत्व की बात।
वह अन्धा क्या जाने यह जिसको नहीं लखात।।
प्रभु में भी है नहीं यह स्त्री पुरूष चिन्ह।
तत्वदर्शी यह जानता और न जाने भिन्न।।
इन लिंगीय तत्वों को जान लेय जो कोय।
वह ज्ञानी बन पिता का भीउपदेशक होय।।

मंत्र- साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षडियमा ऋष्ज्ञयो देवजा इति। तेषामिष्टानि विहितानि धामशस्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः।।१६।।

काव्यार्थ- दोहा

दूरदर्शी बतलातें जो जन्मे एक साथ-
उनमें जीवात्मा रहा एक अकेला जात।।
पांच ज्ञानेन्द्रियां छठा मन इन ऋषियों की पॉत।
हुआ करती उत्पन्न है जीवात्मा के साथ।।
जीवात्मा हित इन्द्रियों के प्रभु-दत्त कर्म।
व्यक्त होते हर रूप में हर स्थान, हर धर्म।।

मंत्र- अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरूदम्थात्। सा कद्रीची कं स्विदर्धं परगात्क्व स्वित्सूते नहि यूथे अस्मिन।।१७।।

काव्यार्थ- गीत

विज्ञ नर! कर तू सदा विचार।
जीव रूप शक्ति का कर तू, चिन्तन विविध प्रकार।।
जीव रूप गतिशील शक्ति देही को धारण करती,

ऊंची से नीची, नीची से ऊंची को है वरती;
किस उत्तम मारग पर चलकर देती कलुष प्रजार।।
होती है उत्पन्न कहां पर, किसको जनक बनाती,
किस समृद्धशाली प्रभु को अपने विक्रम से जाती;
जनम न लेती देह धारी से, करती नहीं प्रसार।।

मंत्र- अवःपरेण पितरं यो अस्य वेदावः परेण पर एनावरेण। कवीयमानः क इह प्र वोचदेवं मनः कुतो अधि प्रजातम्।।१८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

इस नीचे से जो रही उच्च वर्तमान।
पालक आत्मा देह की बैठी हुई सुजान।।
अकर्मण्य इसे ऊंचे से नीचे को ले जाय।
ऊंचे मारग से इसे नीचे देत लगाय।।
बुद्धिमान सा अचरण करने वाला कौन?
उसे बताये इस विषय रहे सदा जो मौन।।
कहां से उसका दिव्य गुण युक्त मनन सामर्थ्य-
शुभ रीति उत्पन्न हो जो हो चुका अकर्थ्य।।

मंत्र- ये अर्वांचस्ताँ उ पराच आहुर्ये परांचस्ताँ उ अर्वाच आहुः। इन्द्रश्च या चक्रधुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति।।१६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

इस चक्र रूप संसार बीच वह लोक-
जिनको कि नीचे जाने वाले, विज्ञ कहते;
उन ही को कहते हैं ऊपर को जाने वाले,
ऊपर जो जाते, नीचे जाने वाले कहते।
हे अजन्मा जीव-आत्मा! हे परमात्म देव!
जो जो व्रत तुमने बनाये शुभ चहते;
वह व्रत जगत को आगे लिये चलते हैं,
जैसे जुते घोड़े रथ आगे लिये रहते।।

मंत्र- द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति।।२०।।

काव्यार्थ- **गीत**

जगत है एक वृक्ष फलदार।
परमात्मा अरू जीव, पक्षी दो बैठे इसकी डार।।
सुन्दर गुण रूपी पंखों को यह पक्षी गहते हैं,
आपस में है मित्र, सदा ही मिल जुल कर रहते हैं,
इसमें से एक मीठा फल खा, लभता मोद अपार।।
पक्षी दूसरा परमात्मा रूपी तद् भोग न करता,
जीव रूपी पक्षी के कर्म देखता और चमकता,
हे लोगों इसके रहस्य को अपने मन लो धार।।

मंत्र- यस्मिन्वृक्षे मध्यवदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे। तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद।।२१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रभु रूपी जिस वृक्ष में वेद-मधु को पाय।
प्राण, इन्द्रिय पक्षी सुधर सदा बैठने ऑय।।
उस वृक्ष में जो लगा फल मोक्ष-पद रूप।
ज्ञानी बतलाते कि है उसका स्वाद अनूप।।
वह मनुष्य इस मोक्ष-पद फल को कभी न पाय।
परम-पिता प्रभुवर को जो नहीं ध्यान में लाय।।

मंत्र- यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति। एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश।।२२।।

जहां ज्ञान संग प्राणी जो सुन्दर गति के जोग।
करते रहते प्राप्त हैं सतत मोक्ष-सुख भोग।।
जग-रक्षक सर्वज्ञ प्रभु इसी ज्ञान के साथ।
मुझ दृढ़-मना के देह के भीतर रहा विराज।।

सूक्त १०

मंत्र- यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरतक्षत। यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ब्रह्म, जिससे रक्षित रहें स्तुति-कर्ता लोग।
निज स्तुत्य गुण सहित उसका जग से योग।।

त्रिविधि पूजित ब्रह्म को ऋषियों ने कर ज्ञात।
त्रिविधि बांधे जग बीच में किया हुअ साक्षात्।।
जान लिया जिन्होंने वह श्रेष्ठ ब्रह्म जग-व्याप्त।
उन श्रद्धेयों ने किया है अमरत्व प्राप्त।।

(त्रिविधि पूजित-ज्ञान, कर्म, उपासनाद्वारा पूजित। त्रिविध बंधे सत्व, रज, तम द्वारा बंधे)

मंत्र- गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुमेन वाकम्। वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः।।२।।

काव्यार्थ- दोहा

शुभ गुण युत योगी करे ब्रह्म से विद्या प्राप्त।
अरू विद्या से प्राप्त वह करे ब्रह्म जग-व्याप्त।।
द्विपद चतुष्पद में रमा जो वेद-पति ईश।
वेद-वचनों से वह सदा करता नीक, अनीक।।
बंधी सात द्वारा रही जो योगी की वाणी।
वह प्रभु गुण कहे वेद से और सभी कुछ छांड़ि।।

मंत्र- जगता सिन्धु दिव्यऽस्कभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत। गायत्रस्य समिधस्त्रिस्र आहुस्ततो महना प्रररिचे महित्वा।।३।।

काव्यार्थ- दोहा

सब रमणीय पदार्थों को तराता जो द्यु-लोक।
उसमें जो सागर तथा गतिज सूर्य बेटोक।।
उसको उस ही ब्रह्म ने संसार के साथ।
थामा अरू सब ही दिशा देखी अपनी गाथ।।
स्तुति योग्य ब्रह्म की तीन प्रकाशक शक्ति।
ब्रह्मज्ञानी बखानते करते उसकी भक्ति।।
उन ही द्वारा ब्रह्म ने अपनी महिमा ठुक्त।
अरू सामर्थ्य से किये सकल लोक संयुक्त।।

(शक्ति-भूत, भविष्य वर्तमान सम्बन्धी)

मंत्र- उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहादेनाम्। श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्रवोचत्।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो शुभ रीति कामना पूर्ण करती हमार।
वह हितकारी विद्या मैं करता हूं स्वीकार।।
हस्त-क्रिया में चतुर जो विद्या लेते दोह।
वह इस विद्या को दुहें धारें नहीं विछोह।।
परमेश्वर जो रहता सब ऐश्वर्यों से युक्त।
वह हम सबके हित, जने शुभ ऐश्वर्य ठुक्त।।
ज्यों प्रभु ने हमको दिया वेदों का उपदेश।
त्यों तत् वाणी से करें जन-जन का उन्मेष।।

मंत्र- हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात।
दुहामश्विभ्यां पयो अध्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वृद्धि करती है जो, हमारा रक्षती है धन,
जो कि विज्ञान साथ नित रहती खड़े;
अत्यन्त श्रेष्ठ सत्कर्मी सज्जनों के बीच,
रहती जो उपदेशकों की चाह में पड़े।
ऐसी वेद-विद्या सदैव ही अहिंसक जो,
हमको अतीव शुभ ऐश्वर्य से मढ़े;
सर्वदा प्रवीण नर नारियों दुहू के लिये,
विज्ञान परिपूर्ण करती हुई बढ़े।।

मंत्र- गौरमीमेदभि वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ। सृक्वाणं
धर्ममभि वावशाना मिमाति मायु पयते पयोभिः।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ब्रह्म वाणी कल्याणी ने अपनी आंखें मीच।
वास थली संसार को फैलाया जग बीच।।
बन्धन रखता लोकों से जो रवि मस्तक रूप।
उसे बनाने हित किया तृप्ति कर्म अनूप।।
सृष्टि रचयिता प्रभु की लिये कामना हाथ।
ब्रह्मवाणी चली शब्द कर नाना बल के साथ।।

मंत्र- अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता। सा चित्तभिर्नि हि चकार मर्त्यान्विद्युत् भवन्ती प्रति वव्रिमौहत।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सब ओर से घिरी अरू ठहरी परिधि माह।
जिस परमेश्वर द्वारा भू रचती अपनी राह।।
वह परमेश्वर रहता है दूरस्थ हर काल।
तदपि गरजता सा बना समीपस्थ हर हाल।।
उस प्रभु-महिमा द्वारा ही मनुष्यादि तन माह।
व्यापक विद्युत व्यापती देती हुई उछाह।।
कर्म करने के हित हुई चेष्टाएं उत्पन्न।
निज कर्तव्य इन्द्रियां करने लगी सम्पन्न।।

मंत्र- अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम। जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यों मर्त्येना सयोनिः।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

देकर प्राण जीव को चेष्टाओं को बोय।
ब्रह्म शीघ्रगामी अचल घर घर जाकर सोय।।
जीवात्मा अमर्त्य, जो रहे मर्त्य तन बीच।
वह उसको निज शक्ति से रहता हर दम सींच।।
एक-स्थानी हो रहे जग के साथ सदैव।
अरू निज धारण शक्ति से विचरण करे तथैव।।

मंत्र- विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे युवानं सन्तं पलितोजगार। देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान।।९।।

काव्यार्थ-

संसार-सागर पीठ पर मौजूद कर्मशील-
वह वक्रगति युवा प्रभू के कोप को भया;
उस दिव्य गुणी ईश्वर के काव्य को देखो,
वह प्राणी जो कल जी रहा था, आज मर गया।

मंत्र- यईं चकार न सो अस्य वेद य ई ददर्श हिरूगिन्नु तस्मात्। स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश।।१०।।

काव्यार्थ-

परमेश्वर वह जिसने है यह प्राणी बनाया,
वह अपने इस परमेश्वर को जानता नहीं;
जिस प्राणी ने परमेश्वर यह देखा हुआ है,
परमेश्वर की उससे गोपनीयता रही।
नाना प्रजाओं वाले परमेशे ने प्रत्येक-
वस्तु के बीच में प्रवेश ऐसे किया है
जैसे कि माता-गर्भ बीच लिपटा शिशु हो,
माता के उदर को वह पकड़े रहते जिया है।

मंत्र- अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्। स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेश्वन्तः।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वाणी का रक्षक अचल वह प्रभु सर्वव्याप्त।
मैंने देखा ज्ञान से निकट, दूर भी प्राप्त।।
मिली परस्पर दिशाऐं ढकता वह परमेश।
नाना विधि रहती प्रजा का वह छत्र, हितेश।।
लोकों में शुभ रीति से प्रतिपल वर्तमान।
वह सब का ही है हितू सबका ही है प्राण।।

मंत्र- द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम्। उत्तानयोश्चम्बो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्।।१२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अपना जन्मदाता पिता सूर्य ज्योतिमान।
जहां उत्पत्ति मूल है नाभि वर्तमान।।
यह पृथिवी माता है अरू है बन्धु समान।
उत्पत्ति सामर्थ्य जल अतुलित बल की खान।।
उत्तमता से फैली दो सेनाओं समान।
सूर्य पृथिवी के बीच में है अवकाश प्रमान।।
इसमें पालक मेघ है जल के धारण अर्थ।
जो रस सेचक पृथिवी का उत्पत्ति सामर्थ।।

मंत्र- पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः।
पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं पृच्छामि वाचः परमं व्योम।।१३।।

मंत्र- इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः।
अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिर्बह्मायं वाचः परमं व्योम।।१४।।

काव्यार्थ- कवित्त

विज्ञ! तुझसे मैं पूछता हूं पृथिवी का छोर,
कौन महा-विक्रम है अश्व सम वीर का;
कौन इस संसार विस्तृत की नाभि रहा,
कौन पार-गन्ता है विद्या-रूपी क्षीर का।
बनी यह वेदी पृथिवी का छोर अंतिम है,
सोम महा-विक्रम है अश्व सम वीर का;
यह यज्ञ सब संसार का कहाता नाभि,
ब्रह्म पार गन्ता है विद्या रूपी क्षीर का।।

मंत्र- न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यःसंनद्धो मनसा चरामि। यदा
मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्या।।१५।।

काव्यार्थ- दोहा

मैं मूढ़ बुद्धि रहा भरा हुआ अज्ञान।
तन अरू आत्मा है अलग मुझे नहीं पहचान।।
मन से जकड़ा बद्ध मैं चलता जग से छीप।
प्रथम प्रवर्तक सत्य का प्रभु, मेरे समीप।।
सेवनीय इस वाणी का ब्रह्म लिया अब जान।
अरू शरीर आत्मा तथा प्रभू लिया पहचान।।

मंत्र- अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः। ता
शश्वन्ता विषूचीना वियन्तान्य१न्य चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्।।१६।।

काव्यार्थ- दोहा

अमर आत्मा स्वयं का धारणा-शक्ति धार।
मर्त्य शरीर के संग करे निज को एकाकार।।
एक-स्थानी हो, स्वयं के कर्मानुसार।
नीचे को जाता है, या ऊर्ध्व करे संचार।।

शाश्वत रहने वाले दुहु नित नित करते कर्म।
दोनों का है विविध गति औ विरूद्ध गति धर्म।।
इनमें से प्रत्येक को पूर्ण सुनिश्चित होय।
ज्ञानी जन हैं जानते मूढ़ न जाने कोय।।

मंत्र- सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि। ते धीतिभिर्मनस ते विपश्चितः। परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः।।१७।।

काव्यार्थ- कवित्त

समृद्ध गर्भ हेतु महत् तत्व, अहंकार तेज,
पृथिवी, नभ, जल, वायु परमाणु सात हैं;
जगती के मूल ये परमाणु प्रभु के नियम -
द्वारा नाना धारण-सामर्थ्य में ठहरात हैं।
सातों प्रभु की धारण-शक्तियों, मन से हो युक्त,
सब लोकों, शरीरों को घेरते लखात हैं,
ज्ञानी लोग इस ज्ञान द्वारा सर्वत्र बने-
होने के समान ज्ञान-वान हो सुहात हैं।।

मंत्र- ऋचो अक्षरे परमेश्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्ते अमी समासते।।१८।।

काव्यार्थ- दोहा

परम ब्रह्म आकाशवत् अविनाशी, बेटोक।
जिसमें स्थित ऋचाएं अरू सब दिव्य लोक।।
जो उसको नहीं जानता वह क्या ऋचा से पाय।
जो उसको जाने वही शोभा साथ रहाय।।

मंत्र- ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तोऽर्धर्चेन चाक्लृपुर्विश्वमेजत्। त्रिपाद् ब्रह्म पुरूरूपं वि तष्ठे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः।।१९।।

काव्यार्थ- दोहा

प्रापणीय जो ऋचा से ब्रह्म निराकार।
ऋषियों ने उस पर किया अति ही सूक्ष्म विचार।।
करा चेष्टा जगत् को समृद्ध वेद आधार।
उसे विचारा ऋषियों ने सकल ज्ञान आगार।।

अतुलनीय सौन्दर्य का धारी है वह ब्रह्म।
अरू तीनों ही कालों का एक अकेला खम्भ।।
तीनों लोकों में वही ठहरा भली प्रकार।
तथा उसी से जीवतीं बड़ी दिशाएं चार।।

मंत्र- सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम। अद्धि तृणमध्न्ये विश्वदानीं पिब सुद्धमुदकमाचरन्ती।।२०।।

काव्यार्थ- कवित्त

हे प्रजा! तू कर सुन्दर अन्न आदि भोग,
निज को बना तू बहु ऐश्वर्यवान् वर;
फिर हम लोग होवें बहु ऐश्वर्य वाले,
हिंसा न कर तू प्रजा, यह बात कान धर।
तू समस्त दानों की क्रिया का कर आचरण,
हिसां करती न कभी गाय पहचान कर;
थोड़े व्यय से ही रहे गाय का आहार, अरू-
व्यवहार शुद्ध अरू शुद्ध पेय पान कर।।

मंत्र- गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी। अष्टापदी नवपदी बभूवुशी सहस्राक्षरा भुवनस्य पक्ति स्तरस्याः समुद्रा अधि विक्षरन्ति।।२१।।

काव्यार्थ- कवित्त

जो अथाह ज्ञान धारती समुद्र जैसा, वह-
ब्रह्म वाणी की ऋचाएं शब्द को कहा करें;
वह एक ब्रह्म साथ व्याप्ति वाली, भूत औ-
भविष्य दोनों बीच गतिवान हो रहा करें।
धर्म, अर्थ काम, मोक्ष चारों पर अधिकार वाली,
आठों ऐश्वर्य प्राप्त कराती हहा करें;
इस ब्रह्मवाणी से समुद्र रूप सब लोक-
अधिक अधिक भांति भांति से बहा करें।।

दोहा

ब्रह्मवाणी नौ अंगों के द्वारा प्राप्ति योग्य।
व्याप्त सहस्रों पदार्थों में ऋषियों द्वारा भोग्य।।

(नौ अंग-बुद्धि, मन सहित दो कान, दो नथने, दो आंखें, एक मुख)

मंत्र- कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुपत्पतन्ति। त अवावत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीवि ऊदुः।।२२।।

काव्यार्थ- दोहा

रवि किरणें जो होती हैं अति उत्तम गतिशील।
अरू रहती रस खींचने में अत्यन्त हठील।।
पवन द्वारा जल ओढ़ जा गमन-थली आकाश।
रवि मण्डल अति ज्योतिमय पर जा चढ़ें सकाश।।
फिर आकर जल-सदन से वह नीचे को आय।
पृथिवी का सिंचन करें जल से, बहु उमगाय।।

मंत्र- अपादेति प्रथमा पद्यतीनां कस्तद्वा ।मित्रावरूणा चिकेत।गर्भो भारं भरत्या चिदस्या ऋतं पिपर्त्यनृतं नि पाति।।२३।।

काव्यार्थ- दोहा

जो क्रियाऐं हैं प्रशंसित विभागों से पूर।
वेद विद्या उनमें प्रथम जैसे नभ में तूर।।
वेद-विद्या को जानिये यह है बिना विभाग।
सब के लिये एक रस मधु से पूरित बाग।।
हे अध्यापक, शिष्य तुम रहते ज्ञान मंझार।
किसने वेद-विद्या को जाना भली प्रकार।।
जो विद्या प्रति हृदय ले व्याकुलता बैठार।
वेद-विद्या का भार वह शुभ रीति ले धार।।
वह नर करता पूर्ण है सदा सत्य व्यवहार।
अरू हर मिथ्या कर्म को नीचे देता डार।।

मंत्र- विराड्वागु विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः। विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे कृणोतु।।२४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह विराट् परमेश्वर विद्या स्वरूप,
पृथिवी विराट् के समान विस्तार में;
व्यापक विराट् अन्तरिक्ष के समान वह,
विराट् सूर्य जैसा प्रजापति संसार में।
वह विराट् प्रभु साधकों का है राजाधिराज,
दुष्टों को मृत्य, पतझार है बहार में;
भूत औ भविष्य उसके हैं वशीभूत वह
भूत औ भविष्य करे मेरे अधिकार में।।

मंत्र- शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण। उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।।२५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

कंपा देने वाला अति शक्तिशाली ईश।
व्याप्ति वाले जीव से जो उत्तम इक्कीस।।
वीरों ने तत् ज्ञान से निज आत्मा का तत्व।
सुदृढ़ बनाया अरू किया उसको अति परिपक्व।।
वह आत्मा जो करता है प्रभुवर का स्पर्श।
जो कि वृद्धि करता तथा करता प्रभु के दर्श।।
प्रभु ज्ञान से वीरों ने ब्रह्मचर्य आदि।
कर्मों में प्रवृत्त हो मेटी जग की व्याधि।।

मंत्र- त्रयःकोशिन ऋतुथा नि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्। विश्वमन्यो अभिष्टे शचीभिर्धाजिरेकस्य ददृशे रूपम।।२६।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभु ने अद्भुत महिमा कीन।
चलते हुए बताते अग्नि, सूर्य, वायु यह तीन।।
तीनों ऋतु अनुसार वर्ष में नाना रूप दिखाते,
अग्निदेव बहु अन्न तथा औषधियों को उपजाते;
क्षुधा मिटाने हेतु जीव है अन्न के ही आधीन।।

सूर्य अपने सभी गृहों को आकर्षण में बांधें,
उनके पथ की परिक्रमा भी है इन्हीं के कांधे;
वर्षा अरू प्रकाश दे हमको रंच न रखता दीन।।
वायु देव की हमको केवल गति ही देती दिखायी,
उनका रूप कभी भी आंखें नहीं देखने पायीं;
श्वास तथा प्रश्वास उन्हीं से, उनसे बने प्रवीण।।

मंत्र- चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।।२६।।

काव्यार्थ- दोहा

वाणी के परिमित चतुर ज्ञातव्य स्थान।
ब्रह्मज्ञानी ही जानते करते हैं पहचान।।
तीन स्थान हैं हृदय की गुप्त थली के बीच।
नही चलते, न ही निकलते रखते शक्ति खींच।।
साधारण जन बोलते हैं जो मुख से बोल।
उन्हें चतुर् स्थान से वाणी देती खोल।।

मंत्र- इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरूत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधावदन्त्यग्निं यमं मारिश्वान माहुः।।२७।।

काव्यार्थ- कवित्त

तत्वज्ञानी लोग, एक सत्ता जिसकी है, उस-
ब्रह्म को सदैव भांति-भांति कहा करते;
उस अग्निरूप सर्वव्यापक को महनीय-
ऐश्वर्यधारी, मित्र, श्रेष्ठ कह सरते।
नित्य दिव्य अरू शुभ पालन सामर्थ्य युक्त,
स्तुत्य, महत् आत्मा बताते चहा करते;
उस अग्निरूप को नियन्ता अरू नभ बीच-
व्यापक व सांस लेता हुआ महा करते।।

काण्ड १०

सूक्त १

मंत्र- या कल्पयन्ति वहतो वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः। सारा देवत्वप नुदाम एनाम्।।१।।

काव्यार्थ-

जैसे विवाह में वधू सजाते हैं, वैसे
जो हिंसा देखने में सुखद, भीतर से दुखद है;
जिस हिंसा को हिंसक स्व हाथों प्रजा में करते,
हम उसका कर प्रतिकार, हटा देते विपद है।

मंत्र- शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा। सारादेवत्वप नुदाम एनाम्।।२।।

काव्यार्थ-

हिंसक जो सिर, कान, नाक आदि की हिंसा-
करके प्रजा के सुख भरे दिवसों को छंटाते;
वह दूर चली जावे, नहीं ठहरे प्रजा में,
हम दुष्ट-दण्ड-दाता उसको दूर हटाते।

मंत्र- शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्माभिः कृता। जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्धवृच्छतु।।३।।

काव्यार्थ-

शूद्रों प्रति, ब्राह्मण व राजा स्त्रियों प्रति,
हिंसक-कर्म, हिंसक जो किया करता है जारी;
बन्धन समान वह उसी पर लौटकर जाये,
कर देता है पति दूर ज्यों व्यभिचारिणी नारी।

यंत्र- अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्। यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरूषेषु।।४।।

काव्यार्थ-

हिंसाएं जिन्हें खेतों में, गौओं में, या जिन्हें-
तेरी प्रजा में उन रहे दुष्टों ने था किया;
इस औषधि स्वरूप तुझ राजा के साथ मिल,
मैंने सभी हिंसाओं को खण्डित है कर दिया।

मंत्र- अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते। प्रत्यक्प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत्।।५।।

काव्यार्थ-

बुराई, बुराई करने वाले को तथा,
हम शाप, शापकर्ता को देवें यथा-नीति;
उस दुष्ट को पीछे की ओर हम हटा देवें,
दुष्कर्म उसी को जला देवें, लभे भीति।

मंत्र- प्रतीचीन अंगिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः। प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून्कृत्याकृतो जहि।।६।।

काव्यार्थ-

प्रत्यक्ष चलने वाला, वेद-ज्ञानी हमारा-
अध्यक्ष, पुरोहित सदैव अग्रगामी हो;
हिंसाओं को वह सर्वथा प्रतिकूल गति करे,
अरू हिंसकों को मार डालने में नामी हो।

मंत्र- यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम्। तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छोअनागसः।।७।।

काव्यार्थ-

हे हिंसा! जिस भी दुष्ट ने तुझसे है यह कहा-
"शुभ मार्ग रहे अग्रगामियों को नष्ट कर";
तू उस ही दुष्ट ओर लौट,उसको नष्ट कर,
निर्दोषियों को मारने का मत न कष्ट कर।

मंत्र- यस्ते परूंषि सन्दधौ रथस्येवभुर्धिया। तं गच्छ तत्र ते यनमज्ञातस्तेऽयं जनः।।८।।

काव्यार्थ-

हे हिंसा-कर्म जिस भी हिंसाकर्मी ने तेरे-
हिंसा के विविध साधनों को जोड़ा हुआ था;
रथ अवयवों को चतुर शिल्पी जोड़ता, वैसे-
तूने कहीं कोई भी नहीं छोड़ा हुआ था,
वापिस तू लौट, अब उसी हिंसक के पास जा,
जिसके लिये तू कर्मशील घोड़ा हुआ था;
वह ही है तेरा घर, तू जान ले कि यह व्यक्ति
तेरे से था अनजान, न निचोड़ा हुआ था।

मंत्र- ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला व्यभिचारिणः। शम्वी३ दं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनः संर तेन त्वा स्नपयामसि।।६।।

काव्यार्थ-

हे हिंसा! जिन कुकर्मियों ने तुझको बनाया;
जो तेरे द्वारा निज कुकर्म-कोष को भरते;
हम सब सुधारकों का यह हिंसा विनाश उन-
को है सुमार्ग ज्ञान, इससे कर्म सुधरते;
इससे कुकर्म उनका छुड़ाते हैं हम, तथा-
इससे तुझे स्नान करा शुद्ध हैं करते।

मंत्र- यद्दुर्भगां प्रसनपितां मृतवत्सामुपेयिम। अपैतु सर्व मत्पायं द्रविणं मोप तिष्ठतु।।१०।।

काव्यार्थ-

दुर्भाग्य वाली अथवा शुद्ध आचरण वाली,
अथवा मरे बच्चे की शोक-ग्रस्त हो नारी;
इनमें से किसी पास यदि कभी गया हूं मैं,
तो मैं यथावत् दण्ड की भोगा करूं पारी;
दुष्कर्म के सब पाप मुझसे दूर हटें, औ-
सत्कर्म करूं, फिर से बनूं अतुल बल धारी।

मंत्र- यत्ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः। सन्देश्या३त्सर्वस्मात्पापादिमा मुंचन्तु त्वाषधीः।।११।।

काव्यार्थ-

यदि यज्ञ में सत्पुरूषों के दानादि कर्म पर,
ईर्ष्यालु लोगों ने लगाया तुझ पर दोष है;
तब तुझको दोष-मुक्त करे विज्ञ समीक्षक,
विद्वान् यह सब दुःख हर-औषधि का कोश है।

मंत्र- देवैनसात्पित्र्यान्नामग्राहात्संदेश्यादभिनिष्कृतात्। मुंचन्तु त्वा वीरधो वीर्यण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम्।।१२।।

काव्यार्थ-

औषधि समान नित्य ही उपकारी लोग यह,
तेरे किये उस देव-जन सम्बन्धी पाप से;
सत्पुरूषों के प्रति तूने जो भी पाप है किया,
अरू निन्दनीय नाम, अशुभ वचन पाप से;
अपमान करने रूप जो भी पाप है हुआ,
पीड़ित रहा जो दुष्ट स्वभाव के ताप से;
तुझको बचाये निज सामर्थ्य तप के द्वारा वह,
ऋषियों के ज्ञान द्वारा, वेदवाणी जाप से।

मंत्र- यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम्। एवा मत्सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति।।१३।।

काव्यार्थ-

ज्यों वायु भूमि से उड़ाता धूलि को, तथा-
नभ बीच बसा मेघ उड़ाता है सूर को;
वैसे ही दुष्ट-भाव सभी मेरे हृदय के
शुभ ज्ञान से हो जांय निवारित व दूर हों।

मंत्र- अपक्राम नानदती विनद्धा गदीीव। कर्तृन्नक्षस्वोतो नुत्ता ब्रह्मणा वीयर्सावता।।१४।।

काव्यार्थ-

हे हिंसा! बन्ध छूटी हुई गर्दभी समान,
हो दूर तू वाणी पे कटुक भीत राग ला;
बलवान ब्रह्मचारी से निकाल दी गयी,
यहां से अपने हिंसकों के पास भाग जा।

मंत्र- अय पन्थाः कृत्य इति त्वा नयामोऽभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः
तेनाभि याहि भज्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी।।१५।।

काव्यार्थ-

हे हिंसा! यह मारग है, हम सब इसी मार्ग से,
ले जाते तुझको दूर, तुझसे कुछ नहीं लेना,
उस दुष्ट द्वारा हम पर तू है फेंक दी गयी,
वापिस तुझें हम फेंकते, उस ही को है देना;
उस पर तू टूटती चढ़ाई कर, ज्यों रथों युत्-
हो शब्द भयंकर उचारती हुई सेना।

मंत्र- पराक्ते ज्योतिरपथंते अर्वाग्न्यत्रास्मदयना कृणुष्व। परेणेहि नवतिं
नाव्या३अति दुर्गाःस्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि।।१६।।

काव्यार्थ-

वापिस यहाँ से जा तेरे आगे प्रकाश है,
इस ओर आने हेतु कोई राह है नहीं;
तू हमको छोड़ और किसी बाँह को पकड़,
तू जा यहां से, बैठ किसी और की ठँही;
घायल न कर हमें तू, नौका से नदी दुर्गम-
नब्बे को पार कर, त्वरित ही भाग जा कहीं।

मंत्र- बातइव वृक्षान्नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम्।
कर्तृन्निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय।।१७।।

काव्यार्थ-

सेनापति! तू हिंसकों को हन, उखाड़ दे,
जैसे कि वायु वृक्ष गिराता, उखाड़ता;

मत छोड़ इनकी गायों, घोड़ो और पुरूषों को,
इनकी प्रजा-हानि को जगा तू दहाड़ता।

मंत्र- यां ते ब र्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः। अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरूः पाकं सन्तंधीरतरा अनागसम्।।१८।।

काव्यार्थ-

सुन हे मनुष्य! धीरों को दबाने वाले रिपु,
जिस जिस भी हिंसक कर्म को प्रतिपल किया करते;
या गुप्त कर्म को तेरे जल, खेत या मरघट-
के बीच सदा करते हैं, छिपकर जिया करते,
अथवा गार्हपत्य-अग्नि में विपरीत आचरण-
करते हैं, तुझ पवित्र को निर्बल किया करते;
हम ऐसे दुष्ट, हिंस्र औ पथ भ्रष्ट हुओं को
सत्-मार्ग दिखाते, उन्हें निर्मल किया करते।

मंत्र- उपाहृत मनु बुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कत्रम्। तदेतु यत आभृतं तात्राश्वइव वि वर्ततां हनतु कृत्याकृतः प्रजाम्।।१९।।

काव्यार्थ-

उस लाये हुए, जाने हुए औ सुरंगादि
के बीच विनाशक जो ज़खीरे हैं बिठारे;
हम खोजियों ने उनको खोज ढूंढ लिया है,
आया वह जहां से वहां आसन नहीं धारे;
आये हुए घोड़ों सा शीघ्र लौट जाये वह,
हिंसक बने जन की कभी सन्तान न मारे।

मंत्र- स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विध्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि। उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि।।२०।।

काव्यार्थ-

तेरे विनाश हेतु श्रेष्ठ लोहे की बनी-
तलवारें हम सभी के घरों बीच रखी है,

हे शत्रु की हिंसक क्रिया हमको भली विधि-
तेरे हैं सभी जोड़ ज्ञात, जिनसे छकी है,
हे हमको अपरिचित! यहां से दूर चली जा,
क्या चाहती है तू? यहां तू किसकी सखी है?

मंत्र- ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव। इन्द्राग्नी अस्मान्नक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती।।२१।।

काव्यार्थ-

हे दुराचार! यहां से तू भाग जा त्वरित,
गरदन तेरी पांवों के साथ काट मैं दूंगा,
राजा व मंत्री अग्नि वायु सम करें रक्षा,
उनको प्रजा में प्रजावती माता मैं कहूंगा।

मंत्र- सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु।।२२।।

काव्यार्थ-

ऐश्वर्यवान् राजा, अधिक पालता सबको
सुख देता सदा ही, नहीं हमको दुःखी करे;
संसार को शुभ रीति से जो पालते सदा,
उनसे है प्रार्थना, सदा हमको सुखी करें।

मंत्र- भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते। दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम्।।२३।।

काव्यार्थ-

सुख देते, दुख मिटाते राजा मंत्री दोनों,
दुष्कर्मी, हिंसकों व पापियों को मिटावे;
वह उन सभी का पूर्ण नाश करने को, उन पर-
विघ्नों के वज्र आग्नेय शस्त्र गिरावें।

मंत्र- यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा। सेतो३ष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने।।२४।।

काव्यार्थ-

हिंसक से सधी, नाना रूप वाली, हे हिंसा!
स्त्री व पुरूष दोनों समूहों में गति तेरी;

चारों ही आश्रमों में तू पद वाली हो, आठों-
दिशाओं में समायी हुई, आयी थली मेरी;
ऐसी अतीव दुष्टगति की धारिणी वृत्ती,
इस थल से लौट दूर जा, न रंच कर देरी।

मंत्र- अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि। जानीहि कृत्ये कर्तारंदुहितेव पितरं स्वम्।।२५।।

काव्यार्थ-

बहु तेल लगायी व बनायी गयी चिकनी,
शुभ रीति सजायी, हरेक संकट को धारती;
हे हिंसा! यहां से हो दूर, जान निज पिता,
ज्यों पुत्री पिता को है जानी, पुकारती।।

मंत्र- परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय। मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति।।२६।।

काव्यार्थ-

घायल हुए शिकार के रूधिर के चिन्ह से,
जैसे शिकारी पहुंच ही जाता शिकार तक;
वैसे ही हे हिंसा! यहां न ठहर दूर जा,
अरू शीघ्र अपनी मूल जगह पर पहुंच अथक।

❖

हिंसा-विकार तेरा पतन कर नहीं सकता,
भयभीत खड़ा तुझको विलोकेगा एक टक;
उसको समझ वह हिरन के समान है निबल,
तू शूर व्याध्र के समान हैं, नहीं बहक।

मंत्र- उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादामापर इष्वा। उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति।।२७।।

काव्यार्थ-

शुभ वीर सजग शत्रु की चोट से पहले,
शत्रु को पकड़ वाण से घायल बदन करें;

वह श्रेष्ठ वीर वैरी की चोट से बचकर,
बदले में फुर्ती से सदा उसका हनन करे।

मंत्र- एतद्धि शृणु में वचोऽथेहि यत एयथ। यस्त्वा चकार तं प्रति।।२८।।

काव्यार्थ-

हे हिंसा! मेरा निर्णय भरा बोल सुन प्रथम,
फिर तू जहां से आयी है, उस ठौर चली जा;
घातक प्रयोग धारे हुए अपने हाथ में,
जिसने तुझे बनाया है, तू उसकी गली जा।

मंत्र- अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरूषं वधीः। यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लधीयसी भव।।२६।।

काव्यार्थ-

निर्दोषी की हत्या सदैव ही है भयंकर,
तू अश्व, गौ, पुरूष को नहीं मार हमारे;
जहं-जहं सताने हेतु तू छिपायी गयी है,
हम तुझको वहां से उठा, करते हैं किनारे;
हे हिंसा-क्रिया! पत्ते से भी हल्की तू होजा,
जिससे हर एक फूंक मार तुझको उड़ा दे।

मंत्र- यदि स्थ समसावृता जालेनाभिहिताइव। सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि।।३०।।

काव्यार्थ-

हे हिंसा-वृत्ति तुझको अंधकार से आवृत-
कर देने वाले जाल से बंधी है देखाते;
इस हेतु तुझसे हिंसा-क्रियाओं को काट कर,
फिर से बनाने वाले के ढिंग तुझको भेजते।

मंत्र- कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजामा्। मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून्कृत्याकृतो जहि।।३१।।

काव्यार्थ-

कर्तव्य कुशल हे हमारी सेना! जो हिंसक-
करते हों छिपे कर्म, हो विरूद्ध यत्न के;
उन हिंसकों का नाश कर, जीवित न छोड़ तू,
उनकी प्रजा को मार, न हों पुत्र-रत्न के।

मंत्र- यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रि जहात्युषसश्च केतून्। एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्मं कृत्याकृता कृत हस्ततीरव रजोद ुरितं जहामि।।३२।।

काव्यार्थ-

जैसे कि सूर्य अन्धकार में से छूटकर,
रात्रि तथा उषा के चिन्ह त्यागता भाता;
वैसे ही निन्दनीय, पाप-लिप्त कुकर्मी,
हिंसक के दुष्ट कर्म से मैं पार हूं पाता;
होता हूं वैसे ही मुदित प्रकाशमान मैं,
हाथी कठिन स्थानों के ज्यों पार है जाता।

सूक्त २

मंत्र- केन पार्ष्णी आभृते पुरूषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ। केनाङ्गुली पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लंखौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम्।।१।।

काव्यार्थ-

यह एडियां मनुष्य की किसने हैं बनायीं,
किसने है मांस भर दिया इसके शरीर में;
किसने बनाये इन्द्रियों के छिद्र हैं, तथा-
किसने बनाये टखने, अंगुलियां आखीर में;
है कौन चतुर शिल्पी हितैषी बना, जिसने,
तलवे हैं रचे पांव में मानव शरीर के;
अरू कौन जो कि उसके पांव रखने के लिये,
आधार देता पृथिवी लोक सी जागीर में।

मंत्र- कस्मान्नु गुल्फावधारा वकृण्वन्न ष्ठीवन्तावुत्तरौं पुरूषस्य। जंघे निर्ऋत्य न्यदधु क्व स्विज्जानुनोः सन्धी क उ तच्चिकेत।।२।।

काव्यार्थ-

मनुष्य के शरीर के नीचे के दो टखने,
ऊपर के दोनों घुटनों के किसने है बनाया;
दोनों ही जाँघों को अलग-अलग बना, जमा,
दुहु जानुओं की संधि का ढांचा है तनाया।

मंत्र- चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम्। श्रोणी यदूरू क उ तज्जनान याभ्यां कुसिन्धं सुदृढ़ं बभूव।।३।।

काव्यार्थ-

चार प्रकार से सटे हुए सिरों वाले,
एक शिथिल धड़ ने कूल्हों पर आश्रय लिया हुआ;
कूल्हों तथा जांघों के साथ चिपचिपे धड़ को,
नस नाड़ियों से कस के बड़ा दृढ़ किया हुआ;
उत्पन्न किया किसने जांघो और कूल्हों को,
किसने रूधिर, जल आदि रस इसमें दिया हुआ।

मंत्र- कति देवाः कतमे त आसन्य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पुरूषस्य। कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोड़ौ कति स्कन्धान्कति पृष्टीचरिन्वन्।।४।।

काव्यार्थ-

वह कौन से और कितने दिव्य गुण थे जिन्होंने-
मनुष्य में छाती, गला एकत्र किया था;
कितनों ने स्तनों व कुहनियों को बनाया,
कितनों ने कन्धों पसलियों को जोड़ दिया था।

मंत्र- को अस्य बाहू समभरद्वीर्यं कर वादिति। अंसौ को अस्य तद्देवः कुसिन्धे अध्यादधौ।।५।।

काव्यार्थ-

कर्ता प्रभु ने इस मनुष्य की भुजाओं को,
दृढ़ता से पराक्रम के हेतु पुष्ट किया है;

अरू इस ही हेतु ज्योतिमान प्रभु ने कन्धों को,
ऐश्वर्य साथ धन से जोड़ सुष्ट किया है।

मंत्र- कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्। येषां पुरूत्रा विजयस्य मह्मानि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम्।।६।।

काव्यार्थ-

किसने दो कान, नथने दो, दो आंख, एक मुख,
मस्तक में सात गोलकों को खोद दिया है;
जिनके विजय की महिमा में द्विपद चतुष्पदों,
ने अपना अपना गमन पथ समोद लिया है।

मंत्र- हिन्वोर्हि जिह्वामदधात्पुरूचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम्। स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ तच्चिकेत।।७।।

काव्यार्थ-

कर्ता प्रभु ने ही दोनों जबड़ों के बीच में,
धारण कराया जीभ जो चलती बहुत रही;
आश्रित किया उसमें प्रभावशाली वाणी को,
जो बोलती रहती सदैव बात मन चहीं;
वह लोकों के भीतर सभी दिशि घूमता रहता,
आकाश ढकते, किसने है जाना उसे सही?

मंत्र- मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं ककाटिकां प्रथमो यः कपालम्। चित्वा चित्यं हन्वोः पुरूषस्य दिवं रूरोह कतमः स देवः।।८।।

काव्यार्थ-

मस्तिष्क व मस्तक तथा जो पश्च है सिर का,
एवं कपाल, जबड़ों का संचयादि जौन है;
जिनको कि सबसे पहले नियन्ता ने बनाया,
अरू जा चढ़ा द्यु-लोक वह स्तुत्य कौन है?

मंत्र- प्रियप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्रयः। आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद्वहति पुरूषः।।६।।

काव्यार्थ-

निद्रा तथा बाधा, तथा आलस्य, थकावट,
प्रिय औ अप्रिय रहे अनेक कर्मों का धारण;
आनन्द और हर्ष तथा दुःख विषाद,
इनको प्रचण्ड यह मनुष्य पाता किस कारण?

मंत्र- अर्तिरवतिनिर्ऋृतिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः। राद्धि समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरूदितयः कुतः।।१०।।

काव्यार्थ-

मनुष्य में पीड़ा, दरिद्रता, महामारी,
एवं कुमति की भावना आती है कहां से;
सम्पत्ति, पूर्णता, अन्यूनता तथा बुद्धि,
एवं उदय प्रवृत्ति यह होती है कहां से?

मंत्र- कोअस्मिन्नापोव्यदधाद्विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः। तीव्रा अरूणा लोहिनीस्ताम्र धूम्रा उर्ध्वा अवाचीः पुरुषेतिरश्चीः।।११।।

काव्यार्थ-

इस नर के तन में नाना भांति बहुत घूमते,
जिनको नदी समान बहने हेतु जनाया;
जो शीध्रगामी, लाल वर्ण, लौह कण लिये,
तांबे समान धुएं सा बना के तनाया;
ऊपर तथा नीचे व तिरछे बहते जो रहते,
ऐसे रूधिर प्रवाहों को किसने है बनाया?

मंत्र- को अस्मिन्नूपमदधात्को मह्नानं च नाम च। गातुं को अस्मिसन्कः केतुं कश्चरित्राणि पुरूषे।।१२।।

काव्यार्थ-

किसने है रूप को रखा हुआ मनुष्य में,
इसमें महत्व और नाम किसने है रखा;

इसको गति, विज्ञान को प्रदान कर, किसने-
इसके लिये बनाये विविध आचरण सखा।

मंत्र- को अस्मिन्प्राणमवयत्को अपानं व्यामनु। समानमस्मिन्को देवोऽधि शिश्राय पुरूषे।।१३।।

काव्यार्थ-

किसने है प्राण वायु चलाया मनुष्य में,
किसने अपान वायु, व्यान वायु को बुना;
किसने सदा मनुष्य में हृदयस्थ रहने को;
समान वायु स्तुति के योग्य को चुना।

मंत्र- को अस्मिन्यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरूषे। को अस्मिन्त्सत्यं कोऽनृतं कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम्।।१४।।

काव्यार्थ-

किस एक ही सदैव स्तुति के योग्य ने,
पुनीत यज्ञ रखा दिया मनुष्य मन महां,
अरू रख दिया इस बीच किसने सत्यविधि को,
किसने है बताया इसे निषेध का जहां;
किसने कहा कि मृत्यु यह होता है कहां से,
किसने कहा कि मृत्यु यह होता है कहां से,
किसने कहा मनुष्य से, अमरत्व है कहां।

मंत्र- को अस्मै वासः पर्यदधात्को अस्यायुरकल्पयत्। बलं को अस्मै प्रायच्छत्को अस्याक्लपयज्ज्वम्।।१५।।

काव्यार्थ-

शरीर रूपी वस्त्र इसे किसने पहनाये,
इसके लिए आयु को किया संकलित किसने;
किसने दिया शरीर बल व आत्म बल इसको,
वह कौन है तत् वेग को निश्चित किया जिसने।

मंत्र- केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद्रुचे। उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे।।१६।।

काव्यार्थ-

किसने फैलाया जल लिये विस्तार को, तथा
दिन को बनाया किसने है प्रकाश के लिये;
चमका दिया है किसने उषा को प्रभात में,
सायं का काल आया किस समर्थ के किये।

मंत्र- को अस्मिन् रेतो न्यऽदधात्तन्तुरा तायामिति। मेधां को अस्मिन्नध्यौहत्को बाणं को नृतो दधौ।।१७।।

काव्यार्थ-

चलता प्रजा तंतु रहे, चारो दिशा फैले,
इस हेतु वीर्य किसने रखा है मनुष्य में;
किसने रखी वाणी तथा बुद्धि रखी लाकर,
नृत्य के भाव को रखा है किस अदृश्य ने।

मंत्र- कनमां भूमिमौर्णोत्केन पर्यभवद्दिवम्। केनाभि महना पर्वतान्केन कर्माणि पूरूषः।।१८।।

काव्यार्थ-

भूमि ढकी गयी बताओ किस बली द्वारा
द्यु-लोक को घेरा हुआ है किस सशक्त ने;
निज महिमा से किसने ढके हुए पहाड़ हैं,
मिलती है कर्म प्रेरणाएं किस अव्यक्त से।

मंत्र- केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम्। केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन्निहितं मनः।।१९।।

काव्यार्थ-

किससे मनुष्य पाता मेघ सींचने वाला,
किससे मिला करता उसे अमृत का सुरक्षण;

किसे वह प्राप्त करता है श्रद्धा तथा यज्ञ,
किसे मिला तन माह मन, अत्यन्त विलक्षण।

मंत्र- केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम्। विराम केनेममग्निं पूरूषः केन संवत्सरं ममे।।२०।।

काव्यार्थ-

किससे मनुष्य पाता है ज्ञानी को बताओ,
परमात्मा को प्राप्त किया करता है किससे;
वह किसके द्वारा अग्नि को कर लेता प्राप्त है,
अरू कौन सा साधन है, काल मापता जिससे।

मंत्र- ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम्। ब्रह्मेममाग्निं पुरूषो ब्रह्म संवत्सरे ममे।।२१।।

काव्यार्थ-

ज्ञानी को प्राप्त करता व्यक्ति ज्ञान के द्वारा,
वह ज्ञान के द्वारा ही परमात्मा लभे;
अग्नि भी प्राप्त करता है वह ज्ञान ही द्वारा,
अरू ज्ञान के द्वारा ही काल मापता फबे।

मंत्र- केन देवां अनु, क्षियति केन दैवजनीर्विशः। केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत्क्षत्रमुच्यते।।२२।।

काव्यार्थ-

नर किसके द्वारा पूर्व-जन्म के हुए अर्जित-
कर्मों से जन्म पाये मनुष्यों में है रहता;
अरू किसके द्वारा स्तुति के योग्य गुणों में-
रहता हुआ, जग बीच अतुल कीर्तियां लहता;
यह सत्य धर्म राज्य किसके द्वारा कहाता,
अरू किसके द्वारा भिन्न अराज्य सदा दहता।

मंत्र- ब्रह्मा देवां अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः। ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत्क्षत्रमुच्यते।।२३।।

काव्यार्थ-

नर प्रभु के द्वारा पूर्व जन्म के हुए अर्जित-
कर्मों से जन्म पाये मनुष्यों में है रहता;
प्रभु द्वारा ही वह स्तुति के योग्य गुणों में-
रहता हुआ जग बीच अतुल कीर्तियाँ लहता;
यह सत्य धर्म राज्य प्रभु द्वारा ही कहाता,
उस द्वारा अपर भिन्न अराज्य सदा दहता।

मंत्र- केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरूत्तरा हिता। केनेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचो हितम्।।२४।।

काव्यार्थ-

किस शक्तिमान द्वारा यह अत्यन्त ही विस्तृत-
भूमि रखी गयी है, एक विशेष रीति से;
किसने यह द्यु ऊपर रखा, किसने यह अन्तरिक्ष-
तिरछा व फैलाकर रखा विशेष नीति से।

मंत्र- ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरूत्तरा हिता। ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचो हितम्।।२५।।

काव्यार्थ-

यह भूमि ब्रह्म ने विशेष रीति से रखी,
अरू द्यु भी उसी ब्रह्म ने ऊपर दिशा रखा;
उस ब्रह्म ने ही इस अन्तरिक्ष को ऊंपर,
तिरछा व विस्तार में फैला हुआ रखा।

मंत्र- मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्। मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत्पवमानोऽधिशीर्षतः।।२६।।

काव्यार्थ-

उस शुद्ध-रूप निश्छल प्रभु ने मनुष्य का-
सिर और हृदय पहले तो आपस में सिल दिया;
फिर उस अनादि ने उसे विवेक शक्ति दे,
उसकी समझ से बाहर अपना ठिया किया।

मंत्र- तद्वाअथर्वणः शिरोदेवकोशः समुब्जितः। तत्प्राणों अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः।।२७।।

काव्यार्थ-

सिर है मनुष्य का रहा एक कोश सुरक्षित,
जिसमें प्रभु के गुण भरे रहते, नहीं क्षरते;
जिसमें है ब्रह्म-रन्ध्र प्रभु-ध्यान को, सिर की-
प्राण, अन्न और मन सदा रक्षा किया करते।

मंत्र- ऊर्ध्वो नुसृष्टा३ःस्तिर्यङ्नुसृष्टा३सर्वा दिशः पुरूष आबभूवाँ। पुरंयोब्रह्मणोवेदयस्याः पुरूष उच्यते।।२८।।

काव्यार्थ-

क्या ऊंचा उत्पन्न, क्या तिरछा हुआ पैदा,
वह ब्रह्म-ज्ञानी सब दिशाओं बीच व्यापता;
जो ब्रह्मज्ञानी पूर्णता उस ब्रह्म की जाना,
जिस पूर्णता से ब्रह्म परिपूर्ण ज्ञापता।

मंत्र- यो वै तां ब्रह्मणों वेदामृतेनावृतां पुरम्। तस्मै ब्रह्म च ब्रह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजा ददुः।।२९।।

काव्यार्थ-

आच्छादती रही जो मोक्ष-सुख से ब्रह्म के,
उस पूर्णता को निश्चय से जो भी जानता;
वह ब्रह्म और तत्संबंधी बोध से,
प्राण व दृष्टि, प्रजा की पाता महानता।

मंत्र- न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा। पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरूष उच्यते।।३०।।

काव्यार्थ-

जो ब्रह्म की उन पूर्तियों को जान गया है,
जिससे कि वह ब्रह्म है परिपूर्ण कहाता;
उसको जरा से पूर्व चक्षु नहीं छोड़ता,
अरू न ही प्राण छोड़ कर के उसको ढहाता।

मंत्र- अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पुरयोध्या। तस्या हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।३१।।

मंत्र- तस्मिन्हिरण्ये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते। तस्मिन्युद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः।।३२।।

काव्यार्थ-

योग के आठ अंगों के कर्मों को सहेजे,
नव द्वार वाली देह, दिव्य गुणों को नगरी;
इसमें प्रभु-उन्मुख, बली है आत्मा, जैसे-
ज्योति-स्वरूप ब्रह्म से आवृत हुई गगरी।

❖

उस ही अनेक बलों युक्त, औ स्थान, नाम-
जनम में गतिवान, रखे मान तीन में;
उस जीव-आत्मा के बाहर तथा भीतर,
वह ब्रह्म जो महीन है अति ही महीन में,
उसका ही ब्रह्मज्ञानी करते साक्षात हैं,
होते बड़े धनी हैं, वह, सब ही धनीन में।

(नोट - योग के आठ अंग- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि। नवद्वार-सात मस्तक के छिद्र, मन और बुद्धि। रखे मान तीन में-ज्ञान, कर्म और उपासना में)

मंत्र- प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्। पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम्।।३३।।

काव्यार्थ-

जो है बड़ी प्रकाशमान, दुखों को हरती,
यज्ञ से है परिपूर्ण, बहु बलों को धारती;
होती न पराजित है जो, वहआत्मा पुरी,
अपने में वास हेतु, ब्रह्म को बिठारती।

सूक्त ३

नोट- इस सूक्त का देवता वरण-मणि है। यह औषध विशेष है। साथ ही इसका दूसरा अर्थ वरणीय मणि समान वेद-ज्ञान भी है। इस सूक्त के मंत्रों का अर्थ दोनों प्रकार से किया जा सकता है।

मंत्र- अयं में वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृष। तेना रभस्व त्वं शत्रून्प्रमृणीहि दुरस्यतः।।१।।

काव्यार्थ-

वरणीय मणि समान वेद-ज्ञान! तू मेरे-
शत्रु बने दोषों के नाश में समर्थ है;
हे प्राणी! वेद-ज्ञान से तू दोष रूपी वह,
शत्रु ले बांध, मार, जो करते अनर्थ हैं।

मंत्र- प्रैणाञ्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात्। अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः।।२।।

काव्यार्थ-

हे विज्ञ! तू इन आत्मिक दोषों को पकड़ ले,
इनको तू कुचल डाल, वह मृत्यु को लहें;
वरणीय मणि समान वेद-ज्ञान तेरा पथ,
दिखलाने वाले विज्ञ सदा अग्रसर रहें;
जैसा कि पहले दिव्य लोगों ने भी दोष रूप-
विपरीत आचरण भरे खल, मृत्यु दे, दहे।

मंत्र- अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः। स ते शत्रूधरान्पादयाति पूर्वस्तान्दम्नुहि ये त्वा द्विषन्ति।।३।।

काव्यार्थ-

वरणीय मणिसमान वेद-ज्ञान! तू सभी-
भय जीतने वाला है, सिंह समान तेज का;
तू नर के आत्मिक दोष रूपी शत्रुओं-
को नीचे गिरा दे, रहे परलोक भेजता;

पहला प्रहार कर्ता बन के, तू उन्हें दबा,
जो तुझसे वैर रखते हैं, दिखा न खेदता।

मंत्र- अयं ते कृत्यां विततां पौरूषेयादयं भयात्। अयं त्वा सर्वस्मात्पापाद्वरणो वारयित्यते।।४।।

काव्यार्थ-

यह ही वरण के योग्य मणि समान वेद ज्ञान,
रोकेगा वह हिंसा जो तेरे चारों ओर है;
यह ही वरण के योग्य मणि समान वेद ज्ञान,
हर लेगा मानवीय भय जिनका कि जोर है;
यह ही वरण के योग्य मणि समान वेद ज्ञान,
काटेगा तेरे पाप वह जिनका न छोर है।

मंत्र- वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन्।।५।।

काव्यार्थ-

यह दिव्य गुणी, सेवनीय गुणों का रक्षक,
जो वेद-ज्ञान ऋषियों से बताया गया है;
इस व्यक्ति का यह राज रोग शीघ्र हटा दे,
जिस द्वारा निज निवास तन बनाया गया है;
पूर्वज रहे भेषज प्रवीण विज्ञों के द्वारा
भी इस ही भांति रोग यह हटाया गया है।

मंत्र- स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम्। परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणों वापरयिष्यते।।६।।

काव्यार्थ-

हे व्यक्ति! तू सोते समय, लेते हुए सपना,
यदि पाप भरे दृश्य को लखते हुए रोता,
यदि मृग अप्रिय मार्ग से है दौड़ता, शकुनि-
फुंकारता, कटु बोल तुझे, पीर-दा होता;

तब यह वरण के योग्य मणि समान वेद-ज्ञान,
तेरे निवार देगा वह कष्ट जो ढोता।

मंत्र- आरत्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात्। मृत्योरोजीयसो वध ाद्वरणो वारयिष्यते।।७।।

काव्यार्थ-

वरणीय वेद-ज्ञान, तुझे ज्ञानी बली कर,
रोकेगा, भयों से ब आचरण अभद्र से;
कंजूसी, महामारी तथा मृत्यु से, तथा-
अत्यन्त ही बलवान व्यक्ति के वज्र से।

मंत्र- यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च में स्वा यदेनश्चकृमा वयम्। ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः।।८।।

काव्यार्थ-

जो पाप मम माता, पिता, भ्राताओं ने किया,
मेरे स्वजाति वालों ने अरू हमने है किया;
उससे बचायेगा यह वरणीय गुण रक्षक
यह वेद-ज्ञान दिव्य औषध जो है लिया।

मंत्र- वरणेन प्रव्यधिता भ्रातृव्या मे सम्बन्धवः। असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः।।६।।

काव्यार्थ-

पीड़ित हुए इस वेद-ज्ञान औषध द्वारा,
मम वैरी लोग अपने बन्धुओं सहित जायें-
उन लोकों को, जो अन्धकार पूर्ण हैं धूमिल,
वे लोग अति निकृष्ट अन्धकार को पाये।

मंत्र- अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरूषः। तं मायं वरणो मणिः परि पातु दिशोदशिः।।१०।।

काव्यार्थ-

अविनाशी विद्या वाला मैं अविनाशी, दीर्घ आयु,
मैं युक्त हूं समस्त ही पुरूषार्थी जनों से;

मुझ ऐसे को, वरणीय मणि समान वेद ज्ञान-
औषध, सकल दिशा में रक्षे शत्रु फनों से।

मंत्र- अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः। स मे शत्रून्वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान्।।११।।

काव्यार्थ-

मेरे हृदय में दिव्य गुणधारी तथा वरणीय-
वेदज्ञान रूपी राजा है विराजता;
वह सेवनीय गुणों का रक्षक प्रसिद्ध है,
वह मेरे शत्रु को हटा रहे विनाशता;
जैसे महत् ऐश्वर्यधारी पुरूष सदा ही,
असुरों व डाकुओं को हटाता है साजता।

मंत्र- इमं बिभर्मि वरणमायुष्मांछतशारदः। स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत्।।१२।।

काव्यार्थ-

वरणीय वेद-ज्ञान-मणि धारक हूं, यह मुझे-
दीर्घायु, शतायु करे, न रूष्ट किया करे;
यह मेरे राष्ट्र, क्षत्रिय-दल और पशुओं को,
अरू ओज को मेरे लिये पुष्ट किया करे।

मंत्र- यथा वातो वनस्पतीन्वृक्षान्मनक्त्योजसा। एवा सपत्नान्मे भङ्ग्धि पूर्वांजातां उतापरान्वरणस्त्वाभि रक्षतु।।१३।।

काव्यार्थ-

ज्यों वायु स्वबल द्वारा वृक्षों औ वनस्पतियों-
को तोड़कर उनकी सदा कक्षा लिया करें;
वैसे ही मेरे पहले बने और बाद में,
सब शत्रु तोड़दे, नहीं बख्शा किया करे,
वरणीय वेद-ज्ञान रूपी यह हितू मणि,
तेरी सभी दिशाओं से रक्षा किया करे।

मंत्र- यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान्प्सातो वनस्पतीन्। एवा सपत्नान्मे प्साहि पूर्वांजाता उतापरान्वरणस्त्वाभि रक्षतु।।१४।।

काव्यार्थ-

ज्यों वायु अग्नि मिल के वृक्षों औ वनस्पतियों-
को नष्ट करते हैं, व विवक्षा किया करें,
वैसे ही .....

(शेष मंत्र १३ के काव्यार्थ- के अनुसार)

मंत्र- यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः। एवा सपत्नांस्त्वं मम प्राक्षिणीहि न्यर्पय पूर्वांज्जातां उतापरान्वरणस्त्वाभि रक्षतु।।१५।।

ज्यों वायु से गिराये हुए क्षीण रहे वृक्ष,
भूमि पर लेटते, न विवक्षा किया करें;
वैसे ही .....

(शेष मंत्र १३ के काव्यार्थ- के अनुसार)

मंत्र- तास्त्वं प्र च्छिन्धि वरण पुरा दिष्टात्पुरायुवः। य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्टदिप्सवः।।१६।।

काव्यार्थ--

वरणीय मणि समान वेद-ज्ञान, इस नर के-
पशुओं तथा तत् राष्ट्र-घातकों को तू झर दे;
उन शत्रुओं को सुनिश्चित समय से पहले औं-
आयु के क्षय से पूर्व छिन्न-भिन्न तू कर दे।

मंत्र- यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन्तेज अहितम्। एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा।।१७।।

जैसे यह सूर्य प्रकाशित होता है गगन में,
जैसे यह अपने बीच में बहु तेज को धरे;
वैसे ही सद्‌गुणों को धारता यह वेद-ज्ञान,
झोली में मेरी यश तथा बहु कीर्तियां भरे,

संयुक्त करे तेज से मुझको सदैव ही,
यश को प्रदान करता यशस्वती मुझे करे।

मंत्र- यथा यश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि। एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा।।१८।।

काव्यार्थ-

यश जैसा धारता है गगन बीच चन्द्रमा,
जिस भांति का यश दर्शनीय सूर्य से झरे;
वैसे ही .....

(शेष मंत्र १७ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिज्जातवेदसि। एवा में वरणो मणिः कीर्ति भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा।।१९।।

काव्यार्थ-

यश जैसा पृथिवी धारती स्वयं में है, तथा-
उत्पन्न सब पदार्थ अपने बीच में धरें;
वैसे ही .....

(शेष मंत्र १७ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे। एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा।।२०।।

काव्यार्थ-

यश जैसा कन्याओं के बीच रहता है, तथा-
युद्ध के लिए सिद्ध हुआ कोई रथ भरे;
वैसे ही .....

(शेष मंत्र १७ के काव्यार्थ- काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः। एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा।।२१।।

यश जैसा मिलता सोमरस के पान से, तथा-
मधु-पर्क जैसा यश स्वयं के बीच में भरे;
वैसे ही .....

(शेष मंत्र १७ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- यथा शाोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः। एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा।।२२।।

काव्यार्थ-

यश जैसा अग्निहोत्र द्वारा मिलता है, तथा-
यश जैसा वषट्कार दान आदि से झरे;
वैसे ही .....

(शेष मंत्र १७ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- यथा यशो यजमाने यथास्मिन्यज्ञ आहितम्। एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा।।२३।।

काव्यार्थ-

यश जैसा यजमान में विराजता, तथा-
यश जैसा यह यज्ञ-कर्म विश्व में भरे;
वैसे ही .....

(शेष मंत्र १७ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन्परमेष्ठिनि। एवा में वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा।।२४।।

काव्यार्थ-

यश जैसा प्रजापालक राजा में है तथा-
सर्वोच्च स्थिति का प्रभु स्वयं में धरे;
वैसे ही .....

(शेष मंत्र १७ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम्। एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूतिं वि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा।।२५।।

काव्यार्थ-

सुन्दर वरण के योग्य मणि समान वेद-ज्ञान,
मम हेतु कीर्ति औ विभूति को सुदृढ़ करे;
विजयोच्छुकों में अमरपन अरू सत्य है जैसे,
वैसे ही तेज युत् करे अरू यश सुघर धरे।

सूक्त ४

मंत्र- इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरूणस्य तृतीय इति। अहीनाभपमा रथ स्थाणुमारदथार्षत्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

महनीय ऐश्वर्य का धारी है जो भूप।
तत् प्रयत्न का प्रथम रथ है शुभकार अनूप।।
शूर मंत्रियों का यत्न रथ द्वितीय लो जान।
श्रेष्ठ वैद्य का यत्न है रथ तृतीय गुणवान।।
इनके यत्न से सभी सांपों की गति जाय।
तथा शुष्क पेड़ सदृश हो जांय निरूपाय।।

मंत्र- दर्भः शोचिस्तरूपणकमश्वस्य वारः परूषस्य वारः। रथस्य बन्धुरम्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बड़ी कुशा का सिरा अरू गतिमय रथ की नाभि।
तप्त आग, यह सर्प का विष रखते हैं दाबि।।
घोड़े की नव पूंछ जो कोमल बालों पूर।
तथा कुशा यह सर्प का विष करते हैं दूर।।

मंत्र- अव श्वेत पढ़ा जहि पूर्वेण चापरेण च। उदलुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारूग्रम्।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे श्वेत औषध तू नित अगले पद को धार।
अरू पिछले से सर्प का विष करती है खार।।
जल में बहती लकड़ी, गल सारहीन हो जाय।
वैसे तुझसे सर्प का विष नीरसता पाय।।

मंत्र- अरंधुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत्। उदप्लुतमिन दार्वहीनामरसं विषं वारूग्रम्।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

निमज्जन अरू उमज्जन करके जल के बीच।
अरंघुष औषध ने दिये मुख से वचन उलीच।।
"जल में वह बिन सार के होती लकड़ी समान।
मुझ को लख कर विष भगे करके बन्द दुकान।।"

मंत्र- पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वःश्वित्रमुतासितम्। पैद्वो रथव्ययाः शिरः सं बिभेद पृदाक्वाः।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

श्वेत श्याम द्रुतगामी जो छिपा कुमार्ग-झार।
उस सर्प को वैद्य शुभ तत्क्षण देता मार।।
वह शीघ्र चलती हुई फूत्कारों को छोड़।
तथा दौड़ती सर्पिणी का सिर देता फोड़।।

मंत्र- पैद्व प्रेहि प्रथर्मोनु त्वा वयमेमसि। अहीन्व्यस्यतात्पथो येन स्मा वयमेमसि।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे द्रुतगामी चल प्रथम तू आगे की ओर।
पीछे-पीछे हम सभी आते तेरे जोर।।
जिन मार्गों से जायेंगे मिलकर हम सब शूर।
उन मार्गों से सांपों को हम कर देंगे दूर।।

मंत्र- इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम्। इमान्य र्वतः। वाजिनीवतः।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यह शीघ्रगामी पुरूष प्रकट हुआ इस मार्ग।
यह मार्ग है बन गया इसका विक्रम मार्ग।।
इस पथ पर पदचिन्ह हैं जो ऐसा बलवान।
महा हिंस्र सांपों के जो तत्क्षण लेता प्राण।।

मंत्र- संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत्। अस्मिन्क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमाश्च तावुभावरसा।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बन्द हुआ मुख सर्प का रंच न खुलने पाय।
खुला हुआ मुख है तो वह खुला हुआ रह जाय।।
इस खेत दो सर्प है एक मादा, नर एक।
सारहीन हो जायं द्रुत इनमें से प्रत्येक।।

मंत्र- अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दमरके। घनेन हन्मि वृश्चिकमहि दण्डेनागतम्।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो सांप है दूरी पर तथा पास इस ठाँय।
महा हिंस्र वह सांप सब सार-हीन हो जांय।।
डंक मारता बिच्छू जो आता है इस मांह।
मार हथौड़े से उसे पहुंचाता यम राह।।
इस थल आता सांप है जो भी, उसको घेर।
उसे दण्ड से मारता रंच न करता देर।।

मंत्र- अधाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च। इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत्।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

लिपट जाते जो सर्प अरू जो फैलाते कष्ट।
यह औषधि उन दोनों को कर देती है नष्ट।।
शीघ्रगामी वैभवमयी वह व्यक्ति मम हेत।
महा हिंस्र उस सर्प को मार, मृत्यु को देत।।

मंत्र- पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः। इसे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

थिर स्वभाव थिर तेज का यह व्यक्ति हितकार।
इसका हम सब स्मरण करते हैं हर बार।।
सर्प जो क्रीड़ा करते रह करते हैं फुंकार।
उनको खोज निकाल यह द्रुत ही देता मार।।

मंत्र- नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा। जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम्।।१२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जिन सर्पों के प्राण अरू विष हो गये अदृष्ट।
जिन्हें वज्रधर वीर ने मार किया था नष्ट।।
उनकी अग जग में रही वैभव शाली गाथ।
हमने भी मारा उन्हें उस व्यक्ति के साथ।।

मंत्र- हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः। दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वासितं जहि।।१३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तिरछी रेखा वाले सब सांप दिये हैं मार।
अरू फुंकारते सांपों को दिया मृत्यु मुख डार।।
दर्वि, श्वेत अरू करिष्कृत जन जीवन पर भार।
अरू काले रंग सांप भी दिया राभ में मार।।

मंत्र- कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम्। हिरण्यमयीभिरभ्रिमिर्गिरीणामुप सानुषु।।१४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वह चिरायता तथा वह क्वारपाठा गुण पूर।
दोनों ही शुभ वनस्पति विष को करती दूर।।
तेजोमय खुरपियों को ले ज्ञानी जन निज हाथ।
गिरि शिखरों पर खोदकर इन्हें, हृदय उमगात।।

मंत्र- आयमगन्युवा भिषक्प्रशिनहापराजितः। स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च।।१५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यह अपराजित वैद्य अब आया है इस ठौर।
तरूण सर्प विनाश का है यह मस्तक खौर।।
डंक मारे जो बिच्छू, जो लिपटे सांप सकाश।
निःसन्देह इन दोनों का यह कर देता नाश।।

मंत्र- इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरूणश्च। वातपर्जन्यो३भा।।१६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वायु, मेघ अरू सूर्य, जल के समरूप अभेद्य।
सर्प-विनाशक गुणों का धारक यह सद् वैद्य।।
महनीय ऐश्वर्य का धारक है बलकार।
इसने मम रक्षार्थ यह सर्प दिया है मार।।

मंत्र- इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत्पृदाकुं च पृदाक्वम्। स्कजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम।।१७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वैभवधारी पुरूष ने मेरे प्राण रक्षार्थ
मार दिये हैं सर्प, ले मारक विविध पदार्थ।।
तिरछी धारीवाला जो सर्प लपेटे देय।
अरू वह जो कि काटकर प्राणों को हर लेय।।
सांप लेता फुंकार जो सांपिन भरती फुंकार।
बुरे मार्ग में छिपों को मार दिया हुंकार।।

मंत्र- इन्द्रोजघान प्रथम जनितारमहे तव। तेमामु तृह्यमाणानां कः स्वित्तेषा मसद्रसः।।१८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे सर्प! उस पुरूष ने, जो है वैभव का कोष।
तेरा जन्म-दाता प्रथम मार दिया भर रोष।।
छिदे हुए उन बीच क्या रस रहता है व्याप्त।
पूर्ण रूप से वह सभी होते मृत्यु को प्राप्त।।

मंत्र- सं हि शीर्षाण्याग्रभं पौञ्जिष्ठइव कर्वरम। सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजम हेर्विषम्।।१६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

महनीय ओजस्वी नर पकड़ लेता ज्यों बाघ।
त्यो सर्पों के सिरों को पकड़ लेता मैं घाघ।।
नदी बीच में दूर जा गहरे जल बैठाल।
मनुज विनाशक सर्प विष धो देता तत्काल।।

मंत्र- अहीनां सर्वेषां विष परा वहन्तु विन्धवः। हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः।।२०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

उपकारक नदियां बहें नित जल ले भरपूर।
वह सर्पों का विष बहा ले जायें अति दूर।।
सांप जो थे फुंकारते तिरछी धारी निशान।।
मार दिया उनको तथा कुचल किया बेजान।।

मंत्र- औषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया। नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम्।।२१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मैं उपजाऊ भूमि में धान उगाने भांत।
औषधियां पा लेता हूं बड़ी सरलता साथ।।
मैं उनको आदर सहित लेता अपने हाथ।
विदुषी नारियों को यथा लोग झुकाते माथ।।

मंत्र- यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत्। कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम्।।२२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो विष भू, सूर्य, अगनि अरू औषधियों बीच।
वनस्पतियों, कन्दों को जो रहा कुरस में सींच।।
निकल आये उनसे तेरा विष हे घातक सांप।
कोई तुझको देखकर किंचित चले न कांप।।

मंत्र- ये अग्निजा ओषधिजा अहींनां ये अप्सुजा विद्युत आबभूवः। येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम।।२३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो औषधियों में तथाअग्नि में प्रच्छन्न।
अरू विद्युत सम सर्वदिशि जल में हो उत्पन्न।।
जिन सांपों की जातियां बहुत बहुत दिखलाय।
ऐसो को हम वज्र से अपने वश में लॉय।।

मंत्र- तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि। अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम।।२४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

क्वारपाठा शुभनाम की हे औषधि विख्यात।
तू बलवर्द्धक कामना योग्य सभी को भात।।
घृत समान रस प्रेषिणी नामक तू कहलाय।
रोग रहित, होवें मुदित सब जन तुझको पाय।।
तव नीचे का भाग जो विष को करे समाप्त।
उस साथ जड़ को तेरी मैं करता हूं प्राप्त।।

मंत्र- अंगात् अंगात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय। अधा विषस्य यत्तेजो अवाचीनं तदेतु ते।।२५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे औषधि! अंग अंग से विष को कर दे दूर।
तथा हृदय भी विष रहित कर दे तू भरपूर।।

तव शरीर से औषधि जब संपर्क होय।
विष-प्रचण्डता अधो दिशि जाकर निज को खोय।।

मंत्र- आरे अभूद्विषमरौद्विषे विषमप्रागपि। अग्निर्विषमहेर्निरधात्सोमो निरणयीत।।२६।।

काव्यार्थ-

सद्वैद्य ने तैयार कर विष औषधि उसे-
रोगी के तन के बीच फैले विष में मिलाया;
पहले सा विष रहित हुआ इससे दुःखी रोगी,
विष दूर हुआ उसका, उसके तन को खिलाया।
ऐश्वर्यवान्, अग्नि से उस ज्ञानी वैद्य ने-
उस सर्प के विष को निकाल, कर दिया बाहर;
उस सांप में विष पहुंचा, तो वह सांप मर गया,
भयभीत जो था व्यक्ति, अब है बन गया नाहर।

सूक्त ५

मंत्र- इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि।।१।।

काव्यार्थ-

हे विज्ञ जन हमारे! आत्मा केओज तुम हो,
आत्मा के हो पुरूषारथ, वैभव-सरोज तुम हो;
तुम आत्मा के बल हो, आत्मा के हो पराक्रम,
तुम आत्मा के बोध, उसको प्रमोद तुम हो।
कठिनाइयों में दृढ़ता से विजय प्राप्ति के हित,
ज्ञान के साधनों संग, तुमको मैं जोड़ता हूं।।

मंत्र- इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१ स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि।।२।।

काव्यार्थ--

(प्रथम मंत्र के काव्यार्थ- की प्रथम पांच पंक्तियों के बाद निम्न पंक्ति)

शुभ क्षात्र बल के साथ तुमको मैं जोड़ता हूं।।

मंत्र- इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थिेन्द्रस्य वीर्यं१स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि।।३।।

काव्यार्थ-- (प्रथम मंत्र के काव्यार्थ- की प्रथम पांच पंक्तियों के बाद निम्न पंक्ति) आत्मा की शक्तियों संग तुमको मैं जोड़ता हूं।।

मंत्र- इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सहस्थेन्द्रसह बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि।।४।।

काव्यार्थ-- (प्रथम मंत्र के काव्यार्थ- की प्रथम पांच पंक्तियों के बाद निम्न पंक्ति) सोम आदि शक्तियों संग तुमको मैं जोड़ता हूं।।

मंत्र- इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्यसह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि।।५।।

काव्यार्थ-- (प्रथम मंत्र के काव्यार्थ- की प्रथम पांच पंक्तियों के बाद निम्न पंक्ति) प्राण की शक्तियों संग तुमको मैं जोड़ता हूं।।

मंत्र- इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्यसह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णने योगाय विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता म आपस्थ।।६।।

काव्यार्थ-

हे विज्ञ जन हमारे! आत्मा के ओज तुम हो,
आत्मा के हो पुरूषारथ, वैभव-सरोज तुम हो;
तुम आत्मा के बल हो, आत्मा के हो पराक्रम,
तुम आत्मा के बोध,उसके प्रमोद तुम हो।
हे सर्वसत्य विद्याओं के ज्ञानी हे विद्वानों,
तुम मेरे लिये योगाभ्यासी पुरूष होओ,
अरू विजय प्राप्त करने के कार्य में सहायक,
उत्पन्न सब पदारथ मेरे निकट में ढोओ।

मंत्र- अग्नेभागस्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चों अस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये।।७।।

काव्यार्थ-

अग्नि समान तुम हे विद्वानों तेज धारी,
जन-जन के बीच अपने तेज की छाप छापो;
उत्तम गुणों से पूरित शुभ-कर्मी हे प्रजाओं,
तुम विज्ञों बीच हममें वीरत्व, तेज थापो;
तुमको जगत् में उपकार हित नियुक्त करता,
प्रभु के नियम से निज को, सब प्राणियों को ढापो।

मंत्र- इन्द्रस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये।।८।।

काव्यार्थ-

सूर्य समान तुम हो विद्वानों अति प्रतापी,
अपने प्रताप की तुम सबमें ही छाप छापो,
उत्तम गुणो....

(शेष मंत्र ७ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- सोमस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये।।६।।

काव्यार्थ-

हे विज्ञों! शांत स्वभाव तुम हो चन्द्र जैसे,
तुम अपनी शांति की जन-जन में छाप छापो;
उत्तम गुणो....

(शेष मंत्र ७ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- वरूणस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वचो अस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये।।१०।।

काव्यार्थ-

जल के समान गंभीर है समस्त विज्ञों!
तुम स्व गंभीरता की जन-जन में छाप छापो,
उत्तम गुणो....
(शेष मंत्र ७ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- मित्रावरूणयोर्भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चोअस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये।।११।।

काव्यार्थ-

प्राण अरू अपान जैसे विज्ञों! महाबली तुम,
अपने अतीव बल की जन-जन में छाप छापो;
उत्तम गुणो....
(शेष मंत्र ७ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- यमस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासुधत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये।।१२।।

काव्यार्थ-

हे विज्ञों! न्यायकर्ता से महान्यायकारी,
तुम अपने न्या कर्मों की जन में छाप छापो;
उत्तम गुणो....
(शेष मंत्र ७ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- पितृणां भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वचोअस्मासु धत्त प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये।।१३।।

काव्यार्थ-

हे विज्ञों महापालक हो तुम पितर जनों से,
तुम अपने महत् पालन की सबमें छाप छापो,
उत्तम गुणो....
(शेष मंत्र ७ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- देवस्य सवितुर्भागस्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादयो।।१४।।

काव्यार्थ-

हे विज्ञों! ज्योतिमान प्रभु बीच व्याप्त तुम हो,
इस व्याप्ति की सदा ही जन-जन में छाप छापो;
उत्तम गुणो....
(शेष मंत्र ७ के काव्यार्थ- की भांति)

मंत्र- यो व आपोऽपां भागो३प्स्व१न्तयजुष्यो देवयजनः। इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि। तेन तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान्द्वेष्टियं वयं द्विष्मः। तं विधेय तं स्तृषीययानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या।।१५।।

काव्यार्थ-

विद्वत् जनों का तुम हो एक अंश विद्वानों,
तत् संगति के योग्य, अरू पूजनीय उनमें;
वह अंश तुम्हारा हम, सादर हैं सिद्ध करते,
उस अंश से हराते हम शत्रुओं के कुनबे,
वह अंश ना विनाशें, उस अंश के ही द्वारा,
विद्वेषियों को नष्ट करने की रहें, धुन में;
वध शत्रु का करें हम, इस वेद-ज्ञान द्वारा,
इस कर्म वज्र द्वारा जो अद्वितीय गुण में।

मंत्र- यो व आपोऽपामूर्मिरप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः। इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि। तेन तमभ्यतिसृजामो या३स्मान्द्वेष्टियं वयं द्विष्मः। तं विधेय तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या।।१६।।

काव्यार्थ-

विद्वतूजनों का तुम हो एक वेग विद्वानों,
तत् संगति के योग्य, अरू पूजनीय उनमें;
वह वेग तुम्हारा हम सादर हैं सिद्ध करते,

उस वेग से हराते, हम शत्रुओं के कुनबे;
वह वेग ना विनाशें, उस वेग के ही द्वारा-
विद्वेषियों को.....
(शेष मंत्र १५ के काव्यार्थ- के अनुसार)

मंत्र- यो व आपोऽपां वत्सो३प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः इदं तमंति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि। तेन तमभ्यति सृजामो यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। तं विधेय तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या।।१७।।

काव्यार्थ-

विद्वत जनों का तुम हो निवास है विद्वानों,
तत् संगति के योग्य, अरू पूजनीय उनमें;
निवास वह तुम्हारा, सादर हैं सिद्ध करते,
उस वास से हराते हम शत्रुओं के कुनबे;
वह वास ना विनाशे, उस वास के ही द्वारा-
विद्वेषियों को.....
(शेष मंत्र १५ के काव्यार्थ- के अनुसार)

मंत्र- यो व आपोऽपां वृषभो३प्स्व१न्त्यजुष्यो देवयजनः इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि। तेन तमभ्यतिसृजामो यो ३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। तं विधेय तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या।।१८।।

काव्यार्थ-

विद्वानों का वृषभ सम स्वभाव रखते विज्ञों,
तत् संगति के योग्य अरू पूजनीय उनमें;
स्वभाव तुम्हारा हम सादर हैं सिद्ध करते,
उस द्वारा हम हराते हैं, शत्रुओं के कुनबे;
स्वभाव वह न नाशें, स्वभाव उसी द्वारा-
विद्वेषियों को.....
(शेष मंत्र १५ के काव्यार्थ- के अनुसार)

मंत्र- यो व आपोऽपां हिरण्यगर्भो३प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः। इदं तमति सृजाभि तं माभ्यवनिक्षि। तेन तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। तं विधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या।।१६।।

काव्यार्थ-

विज्ञों के स्वर्ग जैसे सतेज भाग विज्ञों,
तत् संगति के योग्य अरू पूजनीय उनमें;
वह भाग तुम्हारा हम, सादर हैं सिद्ध करते,
उस भाग से हराते हम शत्रुओं के कुनबे,
वह भाग न विनाशें, उस भाग के ही द्वारा-
विद्वेषियों को.....

(शेष मंत्र १५ के काव्यार्थ- के अनुसार)

मंत्र- यो व आपोऽपामश्मा पृश्निर्दिव्यो३प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः। इदं तमति सृजामि तं माप्यवनिक्षि। तेन तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विरूमः। तं विधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या।।२०।।

काव्यार्थ-

विज्ञों का सूर्य सम दिव्य गुण रखे विद्वानों,
तत संगति के योग्य अरू पूजनीय उनमें;
उस गुण को तुम्हारे हम सादर हैं सिद्ध करते,
उस गुण से हराते हैं हम शत्रुओं के कुनबे;
वह गुण न विनाशें हम, उस गुण विशिष्ट से ही,
विद्वेषियों को.....

(शेष मंत्र १५ के काव्यार्थ- के अनुसार)

मंत्र- यो न आपोऽपामग्नयोऽप्स्व१न्तर्यजुष्या देवयजनाः। इदं तानति सृजामि तान्माभ्यवनिक्षि। तैस्तभ्यतिसृजामो यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। तं विधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणा नया मेन्या।।२१।।

काव्यार्थ-

विज्ञों! विद्वानों बीच तुम ज्ञान-अग्नि धारी,
जो संगति के योग्य अरू पूज्य है सबुन में;
ज्ञानाग्नि वह तुम्हारी सादर मैं सिद्ध करता,
उसको न नष्ट करता, रहती है वह अपुन में;
उस शत्रु को हराते उस ज्ञान-अग्नि से हम,
जो हमसे द्वेष करता, अति नीच जो पशुन में;
वध शत्रु का करें हम इस वेद ज्ञान द्वारा,
इस कर्म, वज्र द्वारा जो अद्वितीय गुण में।

मंत्र- यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम। आपो मा तस्तात्सर्वस्माद्दुरितात्पात्वं हसः।।२२।।

काव्यार्थ-

प्रभु-वर के ज्ञान, कर्म, उपासना को तज कर,
जो कुछ असत्य भाषण हम लोगों ने किया है,
उसको बचायें हमको विद्वान, जो हितैषी,
जिन्होंने पूत-जल-सा जीवन सदा जिया है।

मंत्र- समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन। अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत्।।२३।।

काव्यार्थ-

विज्ञों! समुद्र जैसे, परमात्मा को ओर-
तुमको मैं भेजता हूं, जाकर के भक्ति बोओ;
हे अपराजेय, सब ओर गति लिये विद्वानों,
तुम अपने श्रेष्ठ उद्गम-थल प्रभु को प्राप्त होओ;
कोई भी इस जगत् में दुःख को न प्राप्त होवे,
प्रभुवर सुखों के सागर तट जा दुखों को धोओ।

मंत्र- अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्यत्। प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुःष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु।।२४।।

काव्यार्थ-

निर्दोष जल सभी के दोषों को दूर कर दे,
दुःस्वप्न, मल बहाकर अत्यन्त दूर धर दे;
सर्वत्र व्याप्त जल जो शुभ रूप धारता, वह-
पाप और मल सभी के अन्दर से दूर कर दे।

मंत्र- विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः। पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु।।२५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह मैं कि जिसको पराक्रम प्रभु ने दिया,
जिससे कि मैं हूं दुष्ट शत्रु संहारता;
अग्नि के द्वारा तेजवान मैं बनाया गया,
पृथिवी के द्वारा तीक्षणता को संचारता।
इन्हीं से पृथिवी पर करता पराक्रम हूं,
आततायी शत्रुओं को दूर कर डारता;
जीवित न रहता है कोई धूर्त द्वेष भरा,
तत् प्राण छोड़ता उसे है धिक्कारता।।

मंत्र- विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः। अन्तरिक्षमनु विक्रमो हमन्तरिक्षात्तं निर्भजामो यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु।।२६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह मैं कि जिसको पराक्रम प्रभु ने दिया,
जिससे कि मैं हूं दुष्ट शत्रु संहारता;
प्राण वायु द्वारा तेजवान मैं बनाया गया,
अन्तरिक्ष द्वारा तीक्षणता को संचारता।
इन ही से अन्तरिक्ष बीच में पराक्रम को,
कर, आततायी शत्रु दूर कर डारता;

जीवित न रहता है कोई धूर्त द्वेष भरा,
तत् प्राण छोड़ता उसे है धिक्कारता।।

मंत्र- विष्णोःक्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः। दिवमनु विक्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो यो३स्मायोष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु।।२७।।

काव्यार्थ- कवित्त

वह मैं कि जिसको पराक्रम प्रभु ने दिया,
जिससे कि मैं हूं दुष्ट शत्रु संहारता;
सूर्य द्वारा तेजवान मुझको बनाया गया,
द्यु-लोक द्वारा तीक्षणता को संचारता।
इन ही से पराक्रम करता आकाश बीच,
आततायी शत्रुओं को दूर कर डारता;
जीवित न रहता है काई धूर्त द्वेष भरा,
तत् प्राण छोड़ता उसे है धिक्कारता।।

मंत्र- विष्णोःक्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः। दिशोऽनु विक्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु।।२८।।

काव्यार्थ- कवित्त

वह मैं कि जिसको पराक्रम प्रभु ने दिया,
जिससे कि मैं हूं दुष्ट शत्रु संहारता;
मन द्वारा तेजवान मुझको बनाया गया,
दिशाओं के द्वारा तीक्ष्णता को संचारता।
इनसे दिशाओं बीच करता पराक्रम हूं,
आततायी शत्रुओं को दूर कर डारता;
जीवित न रहता है कोई धूर्त द्वेष भरा,
तत् प्राण छोड़ता उसे है धिक्कारता।।

मंत्र- विष्णोःक्रमोऽसपत्नहाशासंशितो वाततेजाः। आशा अनु विक्रमेऽमाशाभ्यस्तं निर्भजामो यो३स्मान्द्वेष्टिं यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु।।२६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह मैं कि जिसको पराक्रम प्रभु ने दिया,
जिससे कि मैं हूं दुष्ट शत्रु संहारता;
पवन से तेजवान मुझको बनाया गया,
मध्य दिशाओं द्वारा तीक्ष्णता को संचारता।
इन ही से तत् बीच करता पराक्रम हूं,
आततायी शत्रुओं को दूर कर डारता;
जीवित न रहता है कोई धूर्त द्वेष भरा,
तत् प्राण छोड़ता उसे है धिक्कारता।।

मंत्र- विष्णोःक्रमोसि सपत्नहा ऋक्संशितः सामतेजाः। ऋचोऽनु विक्रमेऽहमृभ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु।।३०।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह मैं कि जिसको पराक्रम प्रभू ने दिया,
जिससे कि मैं हूं दुष्ट शत्रु संहारता;
मोक्ष ज्ञान द्वारा तेजवान मैं बनाया गया,
वेद-वाणियों से तीक्ष्णता को संचारता।
वेद-वाणियों से किया करता पराक्रम हूं,
आततायी शत्रुओं को दूर कर डारता;
जीवित न रहता है कोई धूर्त द्वेष भरा,
तत् प्राण छोड़ता उसे है, धिक्कारता।।

मंत्र- विष्णोःक्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः। यज्ञमनु विक्रमेऽहं यज्ञात्तं निर्भजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु।।३१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह मैं कि जिसको पराक्रम प्रभु ने दिया,
जिससे कि मैं हूं दुष्ट शत्रु संहारता;

ब्रह्मज्ञान द्वारा तेजवान मैं बनाया गया,
शुभ-कर्म द्वारा तीक्ष्णता को संचारता।
शुभ-कर्म द्वारा किया करता पराक्रम हूं,
आततायी शत्रुओं को दूर कर डारता;
जीवित न रहता है कोई धूर्त द्वेष भरा,
तत् प्राण छोड़ता उसे है, धिक्कारता।।

मंत्र- विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधी संशितः सोमतेजाः। औषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजायो यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु।।३२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह मैं कि जिसको पराक्रम प्रभु ने दिया,
जिससे कि मैं हूं दुष्ट शत्रु सहारता;
सोमरस द्वारा तेजवान मैं बनाया गया,
औषधियों द्वारा तीक्ष्णता को संचारता।
उन ही के द्वारा किया करता पराक्रम हूं,
आततायी शत्रुओं को दूर कर डारता;
जीवित न रहता है कोई धूर्त द्वेष भरा,
तत् प्राण छोड़ता उसे है, धिक्कारता।।

मंत्र- विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽप्सुसंशितो वरूणतेजाः। अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्यस्तं निर्भजायो यो३ स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु।।३३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह मैं कि जिसको पराक्रम प्रभु ने दिया,
जिससे कि मैं हूं दुष्ट शत्रु संहारता;
मेघ द्वारा तेजवान मुझको बनाया गया,
जलों द्वारा नित्य तीक्षणता को संचारता।
इन ही जलों के द्वारा करता पराक्रम हूं,
आततायी शत्रुओं को दूर कर डारता;

जीवित न रहता है कोई धूर्त द्वेष भरा,
तत् प्राण छोड़ता उसे है, धिक्कारता।।

मंत्र- विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः। कृषिमनु वि क्रमेऽहं कृष्यास्तं निर्भजामो यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु।।३४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह मैं कि जिसको पराक्रम प्रभु ने दिया,
जिससे कि मैं हूं दुष्ट शत्रु संहारता;
अन्न द्वारा तेजवान मुझको बनाया गया,
कृषि- कर्म द्वारा तीक्ष्णता को संचारता।
खेती द्वारा मैं विभिन्न करता पराक्रम हूं,
आततायी शत्रुओं को दूर कर डारता;
जीवित न रहता है कोई धूर्त द्वेष भरा,
तत् प्राण छोड़ता उसे है, धिक्कारता।।

मंत्र- विष्णोःक्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरूषतेजाः। प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात्तं निर्भजामो यो३ स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु।।३५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह मैं कि जिसको पराक्रम प्रभु ने दिया,
जिससे कि मैं हूं दुष्ट शत्रु संहारता;
आत्मा से तेजवान मुझको बनाया गया,
प्राण द्वारा तीक्ष्णता को मैं हूं संचारता।
प्राण ही से नाना विधि करता पराक्रम हूं,
आततायी शत्रुओं को दूर कर डारता;
जीवित न रहता है कोई धूर्त द्वेष भरा,
तत् प्राण छोड़ता उसे है, धिक्कारता।।

मंत्र- जितनमस्माकमुद् भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः। इदमहमामुष्याणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधरांच पादयामि।।३६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

है प्रभाव अपना, खड़ी विजय-श्री ले थाल।
शत्रु सेना अरू शत्रु सब हार गये इस काल।।
इस मां बाप के पुत्र का प्राण, यश, तेज, नवीन।
जीवन पूर्णतः किया मैंने निज आधीन।।

मंत्र- सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम्। सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणावर्चसम्।।३७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

रवि जाता दक्षिण दिशा मैं उसके अनुरूप।
अपनाकर प्रभु के नियम जीवन लभूं अनूप।।
यह परिपाटी मुझे दे बल, ज्ञान अरू तेज।
ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हित जीवन रखू सहेज।।

मंत्र- दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते। ता मे द्रविणं यच्द्धनतु ता में ब्राह्मणवर्चसम्।।३८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तेजपूर्ण दिशाओं प्रति मैं कर रहा प्रयाण।
मुझे करे यह ज्ञान, बल एवं तेज प्रदान।।

मंत्र- सप्तऋषीनभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मवर्चसम्।।३९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सप्त ऋषियों अनुकूल मैं नर, कर रहा प्रयाण।
मुझे करें यह ज्ञान, बल एवं तेज प्रदान।।

(सप्त ऋषि - सात इन्द्रियां)

मंत्र- ब्रह्माभ्यावर्ते। तन्मे द्रविणं यच्छतन्मे ब्राह्मणवर्चसम्।।४०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

परमेश्वर की ओर मैं नर कर रहा प्रयाण।
मुझे करें वह ज्ञान बल एवं तेज प्रदान।।

मंत्र- ब्राह्मणां अभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम्।।४१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ब्रह्मज्ञानियों ओर मैं नर कर रहा प्रयाण।
मुझे करें यह ज्ञान बल एवं तेज प्रदान।।

मंत्र- यं वयं मृगेयामहे तं वधै स्तृणवामहै। व्यात्ते परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम।।४२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जिस अरि को ढूंढे, उसे करें वज्र से नष्ट।
राजा को सौंपें, पकड़ ज्ञान-योग से भ्रष्ट।।

मंत्र- वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि। इयं तं प्सात्वाहुतिः समिद्देवी सहीयसी।।४३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रजा हितैषी राजा के जन-रक्षण अरि-नाश।
दो दाढ़ों के वज्र नित रहते उसके पास।।
वज्र नष्ट करते, पकड़ कर शत्रु मति-मन्ध।
यज्ञ-समिधा गुणबल लिये खाती ज्यों दुर्गन्ध।।

मंत्र- राज्ञो वरूणस्य बन्धोऽसि। सो३ऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमनने प्राणेबधान।।४४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सेनापति राजा के, तू बन्धन शत्रु हेतु।
अमुक पुरूष यदि पाप मय उसे दण्ड तू देतु।।
अमुंक पिता या मात-सुत यदि कुपथ को लेतु।
अन्न, वायु तत् रोक तू उसे बन्द कर देतु।।

मंत्र- यत्ते अन्नं भुवस्यत आक्षियति पृथिवीमनु। तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते।।४५।।

काव्यार्थ- दोहा

पृथिवीपति! जो अन्न की तव पृथिवी पर खान।
प्रजापति! वह अन्न तू हमें किया कर दान।।

मंत्र- अपो दिव्या अचामिषं रसेन समपृक्ष्महि। पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा।।४६।।

काव्यार्थ- दोहा

अति ही स्तुति योग्य वह दिव्य गुणी प्रबुद्ध।
जो जल के सम दूसरों को कर देते शुद्ध।।
मैं उसको पूजूं कि जो करते दुर्गुण दूर।
अरू तद् विक्रम से स्वयं को कर लेता पूर।।
तेंरे पास आया हूं मैं सक्रिता को धार।
अब हे विज्ञ! तू मुझे तेज निकट बैठार।।

मंत्र- सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा। विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः।।४७।।

काव्यार्थ- दोहा

हे विद्वान! कर मुझे तेजपूर्ण शुभ रीति।
संतति युत शुभ रीति से जीवन धारे प्रीति।।
मैं विद्वान लोगों में प्राप्त करूँ सम्मान।
गुरू जन, ऋषिगण शरण से मेरी हो पहचान।।

मंत्र- यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः। मन्योर्मनसः शरव्या३जायते य तथा विध्य हृदये यातुधानान्।।४८।।

काव्यार्थ-

अग्नि समान भूप! दो हिंसक मनुष्य जो-
सज्जन जनों से बोलते कुबोल आज हैं;

आक्रोश भरे शत्रु वह कठोर वाणी का-
करते प्रकाश, रंच न करते लिहाज है,
तत् दुष्ट भावों चली वाण-झड़ी से उनके-
हृदयों को भेदकर तुझे करना इलाज है।

मंत्र- परा शृणीहि तपसा यातुधानान्पराऽग्ने रक्षो हरसा शृणीहि।
परार्चिषा मूरदेवां शृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि।।४६।।

काव्यार्थ-

तेजस्वी हे राजन्। तू अपने तप से, कष्ट दा-
पापी जनों को शीघ्र कुचल करके चूर कर;
मूढों को अपनेतेज से कर दे विनष्ट, औ-
निज बल से दुराचारियों का तू गरूर हर;
अत्यन्त ज्योतिमान दूसरों के प्राण ले-
जो तृप्त हुआ करते, उन्हें चूर-चूर कर।

मंत्र- अपामस्मै वज्रं प्र हरामि चतुर्भृष्टि शीर्षभिद्याय विद्वान्। सो
अस्याङ्गानि प्र शृणातु सर्वा तन्मे देवा अनु जानन्तु विश्वे।।५०।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

यह, सज्जनों को जो कि दुःख करता प्रदान,
रहता जो नित्य ही अशुद्धियों को साथ ले;
तत् सिर को तोड़ने को मैं समर्थ विद्वान्,
चलता सदैव ही पगों में वेद-पाथ ले।
मैं मारता चारों दिशा मारक जलों की मार,
वारूणेय अस्त्र रूप वज्र अपने हाथ ले;
सब विद्वान् लोग अनुकूलता के साथ,
मेरे इस कर्म को सदैव निज माथ लें।।

सूक्त ६

मंत्र- अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः। अपि वृश्चाम्योजसा।।१।।

काव्यार्थ-

रखाता न रंच मात्र भी जो भ्रातृभावना,
अपने हृदय में स्वार्थ भाव ही बिठारता;
जो दुष्ट-हृदय वाला तथा द्वेषी रहा, उस-
शत्रु के सिर को मैं सवेग काट डालता।।

मंत्र- वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जतः करिष्यतिः। पूर्णो मन्थेन मागमद्रसेन सह वर्चसा।।२।।

काव्यार्थ-

परमेश्वर प्रणीत,फल के ईश्वर, मणि-
समान यह वैदिक नियम मम हेतु कवच है;
मन्थन सामर्थ्य रस से पूर्ण, वर्चस सहित,
अति ही सुदृढ़ मिला मुझे, इसमें नहीं लच है।

मंत्र- यत्त्वा शिक्वः पराऽवधीत्तक्षा हस्तेन वास्या। आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम्।।३।।

काव्यार्थ-

शत्रु तुझे दुर्बल बनाने छीलने वाला,
यदि तेरे वध को हाथ ले कुल्हाड़ी तनाए;
तव शुद्ध भाव का तथा जीवन का प्रदात-
विद्वान् तुझ पवित्र को पवित्र बनाए।

मंत्र- हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत्। गृहे वसतु नोऽतिथिः।।४।।

काव्यार्थ-

बहु तेज को उपजाता एक मणि समान यह-
वैदिक नियम महनीयता हमारे चित धरे;
श्रद्धा व श्रेष्ठ कर्म को देता हमारे घर,
अति पूजनीय के समान वास नित करे।

मंत्र- तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे। स नः पितेव पुत्रेभ्य श्रेयः श्रेयश्चिकित्सतु भूयोभूयः श्वः श्वो देवेभ्यो मणिरेत्य।।५।।

काव्यार्थ-

मधु, ऐश्वर्य, तेज, अन्न बार बार उस-
वैदिक नियम के हेतु बांटते जिया करें;
वैदिक नियम विद्वत् जनों के पास से आकर,
इस काल औ भविष्य तक भला किया करे,
जैसे पिता निज पुत्र को सम्पत्तियां देता,
वैसे ही स्वस्ति बाद स्वस्तियां दिया करें।

मंत्र- यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तमग्नि प्रत्यमुंचत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयःश्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।६।।

काव्यार्थ-

परमात्मा ने फल के स्वामी ज्योतिदायी जिस-
वैदिक नियम बली को ओज हेतु बनाया;
हे व्यक्ति! उस नियम के द्वारा तू सदैव ही,
उन वैरियों को मार जिन्होंने है सताया,
तेजस्वी पुरूष ने किया स्वीकार वह नियम,
वह नियम इस पुरूष पर करे दान की साया;
देवे बहुत बहुत ही पाने योग्य पदारथ,
आगामी कालों तक मिले सब कुछ ही मन भाया।

मंत्र- यमबध्नाद्बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतयुग्रं खारिदमोजसे। तमिन्द्रः प्रत्यमुंचतौजसे वीर्याय कम्। सो अस्मै बलमिद्दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।७।।

काव्यार्थ-

(मंत्र ६ के काव्यार्थ- की प्रथम चार पंक्तियों के बाद)

उपकारी पुरूष ने भी पराक्रम व ओज हित,
सुख पूर्वक उसी नियम को ढाल बनाया;

यह नियम इस पुरूष को बहुत ही, बहुत बल ही बल,
आगामी कालों तक प्रदाने शुद्ध छनाया।

मंत्र- यमबध्नाद बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तं सोमः प्रत्यमुंचत महे श्रोत्राय चक्षसे। सो अस्मै वर्च इद्दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।८।।

काव्यार्थ-

(मंत्र ६ के काव्यार्थ- की प्रथम चार पंक्तियों के बाद)

स्वीकार करके यह नियम नर सोमधारी ने,
महनीयता, दर्शन-श्रवण-सामर्थ्य कमाया;
इस नियम से आगमी सभी कालों तक सबको,
मिलता रहे वह अत्यधिक तेज से नहाया।

मंत्र- यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तं सूर्य प्रत्यमुंचत तेनेमाअजद्दिशः। सो असमै भूतिमुद्दुहे भूयोभूयः श्व श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।९।।

काव्यार्थ-

(मंत्र ६ के काव्यार्थ- की प्रथम चार पंक्तियों के बाद)

सूर्य समान वीर ने स्वीकार वह नियम,
जीता सभी दिशाओं को, विजयी है कहाया;
वह नियम वर्तमान काल औं भविष्य तक,
नाना प्रकार का इसे धन देवे मन भाया।

मंत्र- यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद्दानवानां हिरण्यमयीः। सो अस्मै श्रियमि दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।१०।।

काव्यार्थ-

परमात्मा ने फल के स्वामी ज्योतिदायी जिस,
वैदिक नियम बली को ओज हेतु बनाया;
स्थिर गुणों से उक्त उस ही मणि समान से
तू शत्रुओं को मार जिन्होंने है सताया;

इस ही मणि से चन्द्र सम वीर, खलों की,
स्वर्ण नगरियों को सदैव जीतता आया;
नाना गुणों से पूर्ण इसी शुभ मणि द्वारा
पाता रहा है वह अतुल सम्पत्ति का साया।

मंत्र- यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।११।।

काव्यार्थ-

वैदिक नियम मणि के समान, जिसको प्रभु ने,
उस गमनशील भोक्ता नर हेतु बनाया;
वैदिक नियम मणि के समान वह, बहुत-बहुत
आगामी कालों तक उसे बल देवें मनभाया;
वैदिक नियम उस ही से, अति वीर पुरूष तू,
उन शत्रुओं को मार, जिन्होंने है सताया।

मंत्र- यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तेनेमां कृषिमश्विनावभि रक्षतः। स भिषग्भ्यां महोदुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।१२।।

काव्यार्थ-

वैदिक नियम मणि के समान, जिसका से प्रभु ने,
उस गमनशील भोक्ता नर हेतु बनाया;
वह ही नियम स्त्री पुरूष के कृषि कर्मों में,
रक्षक बना उस पर किया करता सदा छाया;
स्थिर गुणों से युक्त उसी मणि समान से,
हे नर! अरि को मार, जिन्होंने हे सताया।

मंत्र- यमबध्नाद बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तं ब्रिभ्रत्सविता मणिं तनेदमजयत्सवः। सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयःश्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।१३।।

वैदिक नियम मणि के समान, जिसको प्रभु ने,
उस गमनशील भोक्ता नर हेतु बनाया;
वह नर, समस्त कामनाएं पूर्ण करती जो,
उस ऐसी मणि से सभी सुख जीत कर लाया;
वह मणि इसे बहुत बहुत प्रिय सत्य वाणी दे,
आनन्द दे सबको जो सुनाने को सुनाया;
इस ही मणि के द्वारा अति वीर पुरूष तू,
उन शत्रुओं को मार, जिन्होंने है सताया।।

मंत्र- यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः। स आभ्योऽमृतमिद्दुहे भूयोभूयःश्व श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।१४।।

काव्यार्थ-

वैदिक नियम मणि के समान, जिसको प्रभु ने,
उस गमशील भोक्ता नर हेतु बनाया;
उस मणि को धार प्रजा ने अक्षीण हो, निज को,
तीव्र गति से उन्नति के शृंग बिठाया;
आगामी कालों वह इन्हें अमृत का दान दे,
हे नर! तू मणि से दुष्ट हन, जिसने है सताया।

मंत्र- यमबध्नाद बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तं राजा वरूणो मणिं प्रत्यमुंचते शंभुवम्। सो अस्मै सत्यमिद्दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।१५।।

काव्यार्थ-

वैदिक नियम मणि के समान, जिसको प्रभु ने,
उस गमनशील भोक्ता नर हेतु बनाया;
उस शान्ति प्रदाता मणि को राजा ने लिया,
जो श्रेष्ठ गुणों में रहा करता है अगाया;
आगामी कालों तक मणि उसे सत्य प्रदाने,
हे नर! मणि से मार शत्रु, जिसने सताया।

मंत्र- यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वाल्लोकान्युधाजयन्। स एभ्यो जितिमिद्धुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।१६।।

काव्यार्थ-

वैदिक नियम मणि के समान, जिसको प्रभु ने,
नित गमनशील भोक्त नर हेतु बनाया;
विजयी जनों ने उस नियम के द्वारा युद्ध में,
सब लोक लिये जीत तथा हर्ष मनाया;
इनको अनेक आगामी कालों तक यह नियम,
विजय प्रदान करता, करे कृपा की छाया;
इस ही नियम के द्वारा अति वीर पुरूष तू,
उन शत्रुओं को मार, जिन्होंने है तुझको सताया।

मंत्र- यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुंचन्त शंभुवम्। स आभ्यो विश्वमिछुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।१७।।

काव्यार्थ-

वैदिक नियम मणि के समान, जिसको प्रभु ने,
नित गमनशील भोक्ता नर हेतु बनाया;
उस शान्तिदायी श्लाघनीय श्रेष्ठ नियम को,
देवों ने कर स्वीकार हृदय बीच बिठाया;
इनको अनेक आगामी कालों तक यह नियम,
प्रत्येक ही पदार्थ बहुत देवें मन-भाया;
इस ही नियम के द्वारा हे नर! देवतास्वरूप,
उन शत्रुओं को मार, जिन्होंने है सताया।

मंत्र- ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत। संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति।।१८।।

काव्यार्थ-

वैदिक नियम मणि के समान श्रेष्ठ, ऋतुओं ने-
उपभोक्ता मनुष्य के हितार्थ है बांधा;
ऋतुओं के अवयवों ने है बांधा उसे, तथा-
माना सदैव ही उसे, न रंच भी फांदा;
वैदिक नियम संवत्सर है बांधता तथा-
सारे जगत को पालता, देता उसे कांधा।

मंत्र- अन्तर्दशा अबध्नत प्रतिशस्तमबध्नत। प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधरां अकः।।१९।।

काव्यार्थ-

वैदिक नियम को बांधा है अंतर्दिशाओं ने,
उसको सभी दिशाओं के द्वारा गया बांधा;
प्रजापति प्रभु के बने वैदिक नियम ने सब,
मम वैरियों को अधोमुख किया तथा रांधा।

मंत्र- अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत। तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।२०।।

काव्यार्थ-

बांधा है अथर्वाओं ने वैदिक नियम तथा-
ज्ञानी विवेकियों ने भी उसको सदा बांधा;
उन बुद्धिमान ऋषियों ने उन ज्ञानियों के संग,
दस्यु नगरियां तोड़कर, उनको बहुत रांधा;
हे नर! तू भी वैदिक नियम के द्वारा किया कर,
निज वैरियों को मारने का पुण्य-दा धांधा।

मंत्र- तं धाता प्रत्यमुंचत स भूतं व्यकल्पयत्। तेन त्वं द्विषतो जहि।।२१।।

काव्यार्थ-

वैदिक नियम अति श्रेष्ठतम, मणि के समान को,
धारण-कर्ता राजा ने स्वीकार किया है;

उसने जगत् संभाला है, इस ही नियम पर चल,
निज वैरियों को मार, उनको तोड़ दिया है।

मंत्र- ममबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्। स मायं मणिरागमद्रसेन सह वर्चसा।।२२।।

काव्यार्थ-

जो असुर विनाशक नियम वैदिक जगत् रक्षक-
प्रभु ने विजयी लोगों के कारण है बनाया;
वह ही मणि समान शुभ वैदिक नियम मुझे,
विक्रम तथा वर्चस दिला, मुझ पर करे छाया।

मंत्र- यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्। स मायं मणिरागमत्सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह।।२३।।

काव्यार्थ-

(मंत्र २२ के काव्यार्थ- की प्रथम तीन पंक्तियों के बाद)

बहु-बहु पदार्थ दे सदा करता रहे छाया;
देवे अतुल गौएं तथा बहु भेड़ बकरियां,
अन्न और प्रजा द्वारा रखे मुझको अगाया।।

मंत्र- यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्। स मायं मणिरागमत्सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह।।२४।।

काव्यार्थ-

(मंत्र २२ के काव्यार्थ- की प्रथम तीन पंक्तियों के बाद)

बहु-बहु पदार्थ दे सदा करता रहे छाया,
चावल तथा यव आदि से भण्डार भरे हों,
मैंने बड़ाई और विभूति धन हो कमाया।

मंत्र- यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्। स मायं मणिरागमन्मधोधृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह।।२५।।

काव्यार्थ-

(मंत्र २२ के काव्यार्थ- की प्रथम तीन पंक्तियों के बाद)

बहु-बहु पदार्थ दे सदा करते रहे छाया;
मधु-रस तथा घृत धारा से भरपूर घर रहे,
अच्छे पके अन्न से वह हो सबसे अगाया।

मंत्र- यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्। स मायं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह।।२६।।

काव्यार्थ-

(मंत्र २२ के काव्यार्थ- की प्रथम तीन पंक्तियों के बाद)

बहु-बहु पदार्थ दे सदा करता रहे छाया;
मुझको प्रदान करता हुआ ज्ञान पराक्रम,
धन और श्री अपार दे, कर देवे अगाया।

मंत्र- यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्। स मायं मणिरागमत्तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या सह।।२७।।

काव्यार्थ-

(मंत्र २२ के काव्यार्थ- की प्रथम तीन पंक्तियों के बाद)

बहु-बहु पदार्थ दे सदा करता रहे छाया;
मुझको प्रदान करता हुआ तेज औं शोभा,
यश और कीर्ति दे मुझे कर देवे अगाया।

मंत्र- यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्। स मायं मणिरागमत्सर्वाभिर्भूतिभिः सह।।२८।।

काव्यार्थ-

(मंत्र २२ के काव्यार्थ- की प्रथम तीन पंक्तियों के बाद)

बहु-बहु पदाथ दे सदा करता रहे छाया;
सब भांति की सम्पत्तियां देता हुआ मुझको,
ऐश्वर्य धारी लोगों में कर देवे अगाया।

मंत्र- तमिमं देवता मणि मह्यं ददतु पुष्टये। अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भवं मणिम्।।२६।।

काव्यार्थ-

विद्वान् ज्ञानवान, तेरी पुष्टि वृद्धि को,
वैदिक नियम तुझको प्रदान कर कृपा करें;
वैंदिक नियम मणि के समान वैरी दबाता,
राज्य को बढ़ाता तथा अरि को ग्रसा करे।

मंत्र- ब्रह्मणा तेजसा सहं प्रति मुंचामि मे शिवम्। असपत्नः सपत्नहा सपत्नान्मेऽधरां अकः।।३०।।

काव्यार्थ-

अपने विकास को मैं ज्योति वेद से पाकर,
स्वीकार हूं सबका भला करते ईश को;
उस शत्रु रहित, शत्रु विनाशक ने मम शत्रु-
को नीचे कर दिया है, झुकवाया है शीश को।

मंत्र- उत्तरं द्विषतो मामयं मणिः कृणोतु देवजाः। यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते। स मायमधि रोहतु मणिः श्रेष्ठ्यायै मूर्धतः।।३१।।

काव्यार्थ-

परमात्म देव से जनित वैदिक नियम मुझे,
मम शत्रु से अधिक अवस्था श्रेष्ठ में रखे;
वैदिक नियम जिसके कि पूर्ण ज्ञान को तीनो-
ही लोक प्राप्त करते न किंचित कभी थके;
वैदिक नियम वही मुझे संसार में प्रथम-
पद प्राप्ति के लिये अवस्था श्रेष्ठ में रखे।

मंत्र- यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा। स मायमधि रोहतु मणिः श्रेष्ठ्याय मूर्धतः।।३२।।

काव्यार्थ-

सब देव, पितर जन तथा सामान्य सभी, जिस-
वैदिक नियम आधीन सदा रहते आए हैं;
संसार में प्रधान पद पाने को वह मुझे-
प्रदान करें उन्नति के जितने साए हैं।

मंत्र- यथाबीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति। एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु।।३३।।

काव्यार्थ-

जैसे कि हल में लगे हुए फाल से जुती,
उपजाऊ भूमि में सदा उपजता बीज है;
वैसे ही मेरे पास में सन्तान, पशु, अनाज-
हों अत्यधिक सदैव ही जितनी भी चीज हैं।

मंत्र- यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम्। तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात्।।३४।।

काव्यार्थ-

वैदिक नियम मणि के समान, यज्ञ के वर्धक!
तू सैकड़ों ही वृद्धियों के द्वारा है मढ़ा;
मुझ स्वस्ति-दा को जिसके लिये धारा है मैंने,
उस नर को श्रेष्ठ पद के लिए आगे को बढ़ा।

मंत्र- एतमध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः। तस्मिन्विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा।।३५।।

काव्यार्थ-

अग्नि समान तेजवान हे पुरूष तू उस,
ध्यात प्रभु से सर्वदा ही प्रेम किया कर;
ज्योति स्वरूप प्रभु में तन व आत्मा दोनों-
के आत्म समर्पण से मुदित होकर ठिया कर।

❖

रख करके ध्यान वेद-ज्ञान द्वारा प्रकाशित-
प्रभु में, जो सब उत्पन्न पदार्थों को जानता;
हम स्वस्ति, सुमति तथा सन्तान, दृष्टि औ-
पशुओं को करें प्राप्त, वही सब प्रदानता।

सूक्त ७

मंत्र- कस्मिन् अंगे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन् अंगे ऋत मस्याध याहितम्। क्व ब्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन् अंगे सत्यस्य प्रतिष्ठितम्।।१।।

काव्यार्थ-

इस ब्रह्म के किस अंग में तप वास कर रहा,
किस अंग में स्थित हुआ ऋत, आप बताओ;
व्रत है कहां स्थित तथा श्रद्धा कहां पर है,
किस अंग में ठहरा हुआ है सत्य बताओ।

मंत्र- कस्मात् अंगात् दीप्यते अग्निरस्य कस्मात् अंगात् पवते मातरिश्वा। कस्मात् अंगात् वि मिमीतेधि चन्द्रमा मह स्कम्भस्य मिमानो अंगम्।।२।।

काव्यार्थ-

इस ब्रह्म के किस अंग में अग्नि है चमकता,
आकाश-गामी वायु कहां ले रहा झोंके;
धारक महत् के ईश का स्वरूप मापता,
किस अंग से चलता हुआ नभ-चन्द्र विलोके।

मंत्र- कस्मिन् अंगे तिष्ठति भूमिरस्य कास्मिन् अंगे तिष्ठन्तरिक्षम्। कस्मिन अंगे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन् अंगे तिष्ठत्युत्तरं दिवः।।३।।

काव्यार्थ-

इस ब्रह्म के किस अंग में भूमि है ठहरती,
वित्तीर्ण अंतरिक्ष भी ठहरा है कहां पर;

जिसको रखा गया, कहां ठहरा है वह सूरज,
सूरज से भी जो ऊंचा वह ठहरा है कहां पर।

मंत्र.-क्वंप्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्वः प्रेप्सन् पवते मातरिश्वा।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतःस्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।।४।।

काव्यार्थ-

पाने की इच्छा करता हुआ, ऊर्ध्वगति-धारक-
अग्नि चमकता है कहां, यह हमको बताओ;
पाने की इच्दा करता हुआ, गगन पर चलता,
झोंके कहां लेता है वायु हमको बताओ।
वह कौन सा रहा जहां पाने की कामना-
करती हुई आवृत्तियां सब ओर से मिलती;
इन सबको धारता है प्रभु, उसको जान तू,
उसके ही हिलाए सभी की डोर है हिलती।

मंत्र- क्वार्धमासा क्व यन्ति मातसाः संवत्सरेण सह संविदानाः। यत्र
यन्त्यृतपवो यत्रार्तवाःस्कम्भं तं ब्रूहि कतमूः स्विदेव सः।।५।।

काव्यार्थ-

किस थल सदैव अर्ध-मास और महीने,
वर्ष के साथ मिलकर परस्पर गमन करें;
जाती है कहां ऋतुएं तथा ऋतुओं के अवयव
तू उसको प्रभु जान, सब उसमें रमन करें।

मंत्र- क्वंप्रेप्सन्ती युवती विरूपेअहोरात्रे द्रवतः संविदाने। यत्र
प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भं तं बूंहि कतमः स्विदेव सः।।६।।

काव्यार्थ-

रहती है जिसमें शक्तियां दो, जो कि परस्पर-
मिलती, अलग होतीं व इच्छा पाने की करती;
दिन-रात जिसमें दौड़ते, विरूद्ध रूप जो,
आपस में मिले, करते सदा काल को भरती।

मिलने की इच्छा करती, आती सब दिशाओं से-
सब ही प्रजाओं की जो एक मात्र टेक है,
निश्चय से वह कौन है, तू उसको जान ले,
वह सबको धारता हुआ प्रभु-देव एक है;

मंत्र- यस्मिन्त्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वां अधारयत्। स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।।७।।

काव्यार्थ-

निश्चय से वह कौन है, जिसमें कि गगन ने,
धारे हैं सभी लोक उसी के प्रभाव से;
उत्तर में तू परमेश्वर उसको बता कि जो-
धारण सभी को कर रहा अपने स्वभाव से।

मंत्र- यत् परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम्। कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यन्न प्राविशत् कियत् तद् वभूव।।८।।

काव्यार्थ-

अत्यन्त ऊंचा, नीचा औ अत्यन्त ही मध्यम,
जो कुछ भी नाना रूप जगत् प्रभु ने रचा;
पालक प्रभु का उसमें था प्रवेश कहां तक,
उसके प्रवेश से कहो कितना जगत् बचा।

मंत्र- कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियत् भविष्यदन्वाशयेऽस्य। एक यदंगं अकृणोत्सहस्रधाकियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र।।६।।

काव्यार्थ-

परमेश्वर ने कितने अंश भूतकाल में-
जग में प्रवेश था किया, यह बात बताओ;
होगा प्रविष्ट कितने अंश वह भविष्य में-
उत्पन्न होने वाले जगत् बीच बताओ।
अरू जो भी रचा उसने सहस्रों प्रकार से,
उस वर्तमान जग में वह प्रविष्ट कहां तक;

उत्तर में तू यह जान कि वह पूर्णतः रमा,
जग बीच में जिसका कि है विस्तार जहां तक।

मंत्र- यत्र लोकाश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः। असच्च यत्र सच्चान्त स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।।१०।।

काव्यार्थ-

विद्वानों ने जिस ब्रह्म में समस्त लोकों औ-
समस्त ही कोशों को वर्तमान कहा है;
जिसमें है वर्तमान सत् असत्, वह कौन है,
कह तू वह परमात्म जगत् प्राण रहा है।

मंत्र- यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम्! ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिता, स्काम्भं तं बूंहि कलमः स्विदेव सः।।११।।

काव्यार्थ-

वह कौन? तप व श्रेष्ठ व्रत, विक्रम जहाँ स्थित,
स्थित जहाँ प्रारम्भ से ऋत, श्रद्धा, सब प्रजा;
जिसके आधार से सभी पदार्थ हैं ठहरे,
उसको तू जगत-धाता परमात्मा बता।

मंत्र- यस्मिन्भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता। यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं बूंहि कतमः स्विदेव सः।।१२।।

काव्यार्थ-

वह कौन? अन्तरिक्ष, द्यु अरू भू जहाँ स्थित,
गतिशील वायु जिसमें ठहर देती है पता;
अग्नि व चन्द्र, सूर्य जहाँ दृढ़ता से ठहरे,
उसको तू जगत्-धाता परमात्मा बता।

मंत्र- यस्य त्रयस्त्रिंदेवा अंगे सर्वे समाहिताः। स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।।१३।।

काव्यार्थ-

जिसके विभिन्न अंग-अंग बीच समाहित,
तैंतीस सभी दिव्य पदारथ की है लाता;
निश्चय से वह कौन हैं? उत्तर में है ज्ञानी,
उसको तू जगत्-धाता परमात्मा बता।

मंत्र- यत्र ऋषियः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही। एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं बूंहि कतमः स्विदेव सः।।१४।।

काव्यार्थ-

जिसमें प्रथम वेदार्थ-दृष्टा और वेद हैं,
स्थिर जहाँ समदर्शी स्वभाव की एकता;
निश्चय से वह कौन है? उत्तर में है ज्ञानी,
उसको तू जगत्-धाता परमात्मा बता!

मंत्र- यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुोऽधि समाहिते। समुद्रो यस्य नाड्य१ःपुरुषेऽधि समाहिताःस्कम्भं तं बूंहि कतमःस्विदेव सः।।१५।।

काव्यार्थ-

नर हेतु जिसमें मृत्यु और अमरत्व समाहित,
तत् नाड़ियों समान अन्तरिक्ष का पता;
निश्चय से वह कौन है? उत्तर में है ज्ञानी,
उसको तू जगत्-धाता परमात्मा बता।

मंत्र- यस्य चतस्त्रः प्रदिशो नाड्य१स्तिष्ठन्ति प्रथमाः। यज्ञो यत्र पराक्रान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।।१६।।

काव्यार्थ-

चारों दिशाएं जिसकी मुख्य नाड़ियाँ, जो हर-
याज्ञिक को जगत् बीच दिया करता यश सदा;
निश्चय से वह कौन है? उत्तर में है ज्ञानी,
उसको तू जगत्-धाता परमात्मा बता।

मंत्र- **ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठितम्। यो वेद परमेष्ठिनम् यश्च वेद प्रजापतिम्। ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः।।१७।।**

काव्यार्थ-

जो जानते परमात्मा मनुष्यों में रहता,
वह ही परम पिता को भली भाँति जानते;
वह भी हैं जानते जो उसे सर्वोपरि तथा,
सब प्राणियों को रक्षता कह कर बखानते;
परमात्मा को पूर्ण रूप जानते वह भी,
जो उसको सर्व-श्रेष्ठ वेद-ज्ञाता मानते।

मंत्र- **यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुः अंगिरसोऽभवत्। अंगानि यस्य यातवःस्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।।१८।।**

काव्यार्थ-

सिर जिसका नरों हेतु हितकारी गुण, तथा-
बहु ज्ञान नेत्र औ प्रयत्न अंग हैं सदा;
निश्चय से वह कौन है? उत्तर में है ज्ञानी,
उसको तू जगत्-धाता परमात्मा बता।

मंत्र- **यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत। विराजमूधे यस्याहु स्कम्भं तं बूंहि कतमः स्विदेव सः।।१६।।**

काव्यार्थ-

ऋषि जिसका मुख ब्रह्माण्ड, जिह्वा वेदवाणी, औ-
दूध भरा स्तन प्रकृति को कह रहे सदा;
निश्चय से वह कौन है? उत्तर में है ज्ञानी,
उसको तू जगत्-धाता परमात्मा बता।

मंत्र- **यस्मात् ऋचो अपाताक्षन्यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वा आंगिरसो मुखं स्कम्भं तं बूंहि कतमः स्विदेव सः।।२०।।**

काव्यार्थ-

ऋषियों ने जिससे ऋग् को पाया, सूक्ष्म किया था,
जिससे यजु को प्राप्त कर कसौटी पर रखा;
जिसके कि रोम के समान सोम मंत्र हैं,
अरू शुभ अथर्व मंत्र मुख का दे रहे पता;
निश्चय से वह कौन है? उत्तर में है ज्ञानी,
उसको तू जगत्-धाता परमात्मा बता।

मंत्र- असच्छारवां प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदुः। उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शाखामुपासते।।२१।।

काव्यार्थ-

अज्ञानी जन अनित्य कार्य रूप जगत् की,
फैली हुई व्याप्ति को सर्वोत्कृष्ट मानते;
पर नित्य जो कारण है इसका, खोज कर ज्ञानी,
परमपिता की व्यप्ति में मन बुद्धि सानते।

मंत्र- यत्रादित्याश्च रूद्राश्च वसवश्च समाहिताः। भूतं च यत्र भव्यं च सर्वेलोकाः प्रतिष्ठिताः स्कम्भं तं बूंहि कतमः स्विदेव सः।।२२।।

काव्यार्थ-

जिसमें आदित्य, वायु, सभी प्राणी हैं रते,
भूत, भविष्य, सकल लोक ठहरे हैं सदा-
निश्चय से वह कौन हैं? उत्तर में है ज्ञानी,
उसको तू जगत्-धाता परमात्मा बता।

मंत्र- यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा। निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ।।२३।।

काव्यार्थ-

जिसकी निधि सुरक्षते तैंतीस देवता,
हे देवों! जिसकी तुमसेभी रक्षा हुआ करें,
व्यवहार सिद्ध होते जिससे, उसके ज्ञान की,
अब कौन अपने मन में सद्-इच्छा बुआ करे।

(तैंतीस देवता-तैंतीस दिव्य पदार्थ)

मंत्र- यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्याष्ठमुपासते। यो वै तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स ब्रह्म वेदिता स्यात्।।२४।।

काव्यार्थ-

ब्रह्म को जान लेने वाले देव-जन जहाँ,
अति श्रेष्ठ ज्येष्ठ ब्रह्म को उपासते सदा;
निश्चय से जो उन ब्रह्म-ज्ञानियों को जानेगा,
वह तत्व-दर्शीजान लेगा ब्रह्म का पता।

मंत्र- बृहन्तो नाम ते देवा येऽसतः परि जज्ञिरे। एकं तत् अंगम् स्कम्भस्यासदाहुः परोजनाः।।२५।।

काव्यार्थ-

दिव्य-पदार्थ-धारी-जगत् कारण रूप जो,
वह कार्य-रूप जग से है अवश्य ही बड़ा;
जो कि प्रकट हुआ है जगत् कार्य रूप से,
यह सत्य ब्रह्मज्ञानियों की बुद्धि में जड़ा;
वह कहते कारण रूप से परे जग कार्य रूप,
धाता प्रभु के एक अंग से हुआ खड़ा।

मंत्र- यत्र स्कम्भः प्रजनयन्पुराणं व्यवर्तयत्। एकं तत् अंगम् स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः।।२६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

कार्य रूप जगत् से कारण रूप पदार्थ।
बहुत पुरातन है, कहें वेद, मनुज हितार्थ।।
कारण रूप पदार्थ को बहु विधि चक्राकार।
देकर गति प्रभु ने रचा यह सारा संसार।।
प्रभुवर ने जिस अंग से रचा जगत् बेदाग।
वह उसके सामर्थ्य का है छोटा सा भाग।।

मंत्र- यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे गात्रा विभेजिरे। तान्वै त्रयस्त्रिंशद्देवाने के ब्रह्मविदो विदुः।।२७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तैंतीस देव विभक्त हो जो रहते प्रभु-गात।
तथा पालते पोसते जीवों को दिन-रात।।
वह तैंतीस देव नित नर के मल को धोंय।
ब्रह्म-ज्ञानी जाने उन्हें और न जाने कोय।

(तैंतीस देव-आठ वसु, ग्यारह रूद्र, बारह आदित्य, एक इन्द्र, एक प्रजापति)

मंत्र- हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः। स्कम्भस्तदग्रे प्रासिंचाद्धिरण्यं लोके अन्तरा।।२८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जन कहते प्रभु-तेज का आधार, अदृष्ट।
अकथनीय है वह तथा सबसे ही उत्कृष्ट।।
आदि सृष्टि में वह जो है जगधाता सुख सेज।
उसने जग में सींचा है अपना वह ही तेज।।

मंत्र- स्कम्भे लोकाःस्कम्भे तपः स्कम्भे अधि ऋतं आहितम्। स्कम्भं त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम्।।२९।।

काव्यार्थ-

जग धारक परमेश्वर में है सब ही लोक।
स्थापित है उसी में सब तप का आलोक।।
स्कम्भ कहते उसे धाता वही महान्।
ऋत स्थापित यथावत् उसमें ही, लो जान।।
प्रत्यक्ष मैं जानता तुझको सर्वाधार।
सब जग तुझमें, तुझमें है परमैश्वर्य अपार।।

मंत्र- इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम्। इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम्।।३०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

परमैश्वर्यवान् प्रभु में हैं सब ही लोक।
स्थापित है उसी में सब तप का आलोक।।
इन्द्र कहाता वह, उसी में ऐश्वर्य महान्।
ऋतं स्थापित यथावत् उस में ही, लो जान।।
मैं प्रत्यक्ष जानता तू ऐश्वर्य-वान्।।
सब जग तुझमें समाया, हे स्कम्भ महान्।।

मंत्र- नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात्पुरोषसः। यदजःप्रथमं संबभूव स ह तत्स्वराज्यमियाया यस्मान्नान्यत्परमस्ति भूतम्।।३१।।

काव्यार्थ-

परमेश्वर वह, जो कि अजन्मा प्रसिद्ध है,
सब ही से प्रथम वह ही शक्तिमान रहा था;
अनन्य जनित सृष्टि का शासक वही रहा,
अति शक्ति में उसका प्रथम स्थान रहा था,
बढ़कर के उससे दूसरा द्रव्य है कुछ नहीं,
इस ही से हर मनुष्य उसी को पुकारता;
प्रभु काल-अवयवों उषा व सूर्य आदि से-
पहले प्रलय में भी उपस्थिति न टारता;
इससे वह भक्त, एक परमेश्वर नाम,
अरू दूसरा अज, इन्द्र आदि है उचारता।

मंत्र- यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्। दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।३२।।

मंत्र- यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः। अग्निं यश्चक्रआस्यं१तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणपे नमः।।३३।।

मंत्र- यस्य वातः प्राणापानापै चक्षुः अंगिरसोऽभवन्। दिशो यश्चक्रेप्रज्ञानीस्तस्मैंज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।३४।।

मंत्र- स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वऽन्तरिक्षम्। स्कम्भोदाधार प्रदिशःष्ड्डुर्वीस्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश।।३५।।

मंत्र- यः श्रमात्तपसो जातोलोकान्त्सर्वान्त्समानशे। सोमं यश्चक्रके केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।३६।।

काव्यार्थ- **गीत**

उस श्रेष्ठ ब्रह्म हेतु, मैं कर रहा नमन हूँ।।
जिसकी धरा है उसके एक पैर के समान,
अरू अन्तरिक्ष जिसका, उसके उदर समान;
जिसने चमकते द्यु को सिर अपना बनाया है,
उस श्रेष्ठ ब्रह्म हेतु, मैं कर रहा नमन हूँ।।
जिसके नयन हैं, सूरज अरू चन्द्रमा गगन का,
जो नित नवीन रूप धर कर लगे मगन सा;
जिसने ज्वलित अगनि को मुख अपना बनाया है,
उस श्रेष्ठ ब्रह्म हेतु, मैं कर रहा नमन हूँ।।
व्यान और अपान अपना है वायु को बनाया,
फैली दसों दिशाएं रच, कान को तनाया;
अरू आँख अंगिरस भी जिसने कि है जनाया,
उस श्रेष्ठ ब्रह्म हेतु, मैं कर रहा नमन हूँ।।
जो इस सकल जगत् में प्रविष्ट हो रहा है,
जो छः बड़ी दिशाओं का भार ढो रहा है;
जिस सर्वाधार ने है त्रैलोक को तनाया,
उस श्रेष्ठ ब्रह्म हेतु, मैं कर रहा नमन हूँ।।
जो तप के परिश्रम से, नित प्राप्त हो रहा है;
उससे ही सकल लोकों में व्याप्त हो रहा है;

जिसने कि मात्र सोम औषधि को है बनाया,
उस श्रेष्ठ ब्रह्म हेतु, मैं कर रहा नमन हूँ।।

मंत्र- कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः। किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदाचन।।३६।।

काव्यार्थ- दोहा

क्यों न वायु थिरता, गहे नित चलता उमगाह।
सोती क्यों न प्रजाएं हैं सत्य हेतु कर चाह।।
मन कैसे नहीं ठहरता दूर-दूर तक जात।
इसका उत्तर है, इन्हें क्योंकि प्रभु चलात।।

मंत्र- महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे। तस्मिन्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परितइव शाखाः।।३८।।

काव्यार्थ- दोहा

जग में केवल एक ही है महनीय ब्रह्म।
जो निज विक्रम से बना अतुल पराक्रम खम्भ।।
ब्रह्म न होकर के किसी शक्ति के आधीन।
अन्तरिक्ष की पीठ पर सदा रहे आसीन।।
ब्रह्म में स्थित रहें सिगरे दिव्यलोक।
जैसे तरू स्कन्ध से शाख लगे बेटोक।।

मंत्र- यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा। यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽतेमितं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।।३६।।

काव्यार्थ- दोहा

हाथ, पैर, वाणी तथा आंख, कान के द्वार।
विद्वान् जन ने जिसे देखा विविध प्रकार।।
कौन? जिसे जग बीच वह देते अति सम्मान।
कह तू "वह है जगत् का धाता प्रभु महान्।।"

मंत्र- अप तस्य हंत तमोव्यावृतः स पाप्मना। सर्वाणि तस्मिन् ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ।।४०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सभी ज्योतियाँ है उसी जग-धाता के बीच।
पाप रहित वह, अंध को रखे पूर्णतः भींच।।
योग, वियोग, स्थिति उसकी महिमा गाँय।
तत् सत्, रज, तम द्वारा यह जग स्थित कहलाय।।

मंत्र- यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तसलिले वेद। स वै गुह्यः प्रजापति।।४१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अन्तरिक्ष में जो बुना तेजोमय संसार।
गुप्त प्रजापति है कि जो जाने भली प्रकार।।

मंत्र- तन्भ्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम्। प्राया तन्तूस्तिरते धत्ते अन्या नाम पंजाते न गमातो अन्तम्।।४२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अकेली अकेली जो, स्वभाव विपरीत रखें,
करतीं वियोग, कभी अपने को जोड़तीं;
ऐसी दिन-रात रूपी स्त्रियाँ युवा दो, जो कि-
काल रूपी जाल बुनतीं कभी न तोड़तीं।
कोई एक ज्योति रूप तन्तु विस्तारती है,
एक दूसरी उन्हें सिमेटती, मरोड़ती;
वह दोनों ऐसी हैं विचित्र, उन हेतु वह-
न तो अंत तक जाती, और न ही छोड़तीं।।

मंत्र- त्योरह परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरां परस्तात्। पुमानेनद्वयत्युद्गृणत्ति पुमानेनाद्वि जभाराधिनाके।।४३।।

काव्यार्थ- **दिवा**

दिवा-रात्रि दो स्त्रियाँ गति करतीं अविराम।
लगताजैसे कर रही हों नृत्य अभिराम।।
काल-चक्र में हैं रही दोनों ही मशहूर।
किन्तु नहीं मैं जानता किससे कौन दूर।।
एक अजन्मा पुरूष ने आदि सृष्टि के काल।
अन्तरिक्ष भीतर इसी का फैलाया जाल।।

मंत्र- इमे मयूरवा उप तस्तमुर्दिवं सामानि चक्रुस्तसराणि वावते।।४४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

इन प्रभु-ज्ञान प्रकाशों ने धारा था ब्रह्माण्ड।
विस्तारों हित रच दिया मोक्ष ज्ञान प्रकाण्ड।।४७।।

दानदाताओं की सूची

१.	श्री सौरभ कुमार आर्य, वैशाली, गाज़ियाबाद	११०००
२.	श्रीमती सुशीला देवी, देहरादून	११०००
३.	गुप्त दान	२१००
४.	श्री आनन्द प्रिय चावला, देहरादून	११००
५.	आर्यसमाज, लक्ष्मण चौक, देहरादून	११००
६.	श्रीमती प्रेमलता पुण्डीर, देहरादून	१०००
७.	स्त्री आर्य समाज, लक्ष्मण चौक, देहरादून	५००
८.	गुप्त दान	५००
९.	श्रीमती रतन सक्सैना, मुरादाबाद	५००
१०.	श्री डॉ विश्व अवतार जैमिनी, मुरादाबाद	५००